हिन्दी निर्गुण-काव्य का प्रारम्भ और नामदेव की हिन्दी कविता

पुणे विद्यापीठ की पी एच्० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

हिन्दी निर्गुण-काव्य का प्रारम्भ
और
नामदेव की हिन्दी कविता

डॉ० शं० के० आडकर

•

रचना प्रकाशन
४५ ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद-१

प्रथम संस्करण १९७२

●

प्रकाशक

जीत मल्होत्रा

रचना प्रकाशन

४५-ए, खुल्दाबाद

इलाहाबाद-१

●

मुद्रक

इलाहाबाद प्रेस

३७०, रानी मण्डी

इलाहाबाद-३

मूल्य : पचीस रुपये

अपनी बात

हिन्दी संत साहित्य की महत्ता और उसकी व्यापकता इसी से प्रमाणित है कि उसका अध्ययन और मनन झोपड़ियों से लेकर उच्च विद्या संस्थानों तक हो रहा है। यह एक प्रकार का लोक-काव्य है जो सहज जीवन से उद्भूत हुआ है। शास्त्रीय परंपरा और रूढ़ि के विरोध में इसका उद्भव हुआ और अपनी तेजस्विता और प्रखरता के कारण उसका विकास होता रहा है। संत काव्य उस समाज का प्रतिबिंब है जो शास्त्रीयता और रूढ़ि के खिलाफ निरंतर संघर्ष करता रहा है। एक विशिष्ट वर्ग से सम्बद्ध होने के कारण इस काव्य धारा का अध्ययन बहुत सीमित रहा किन्तु, पिछले कुछ दिनों से विद्वानों का ध्यान इधर गया है। और अनेक दृष्टियों से इसका अध्ययन हो रहा है।

निर्गुण काव्य का प्रारंभ संत कबीर से माना जाता है। यद्यपि लगभग सभी विद्वानों ने इस बात की ओर संकेत किया है कि कबीर से सौ वर्ष पूर्व नामदेव हुए थे जिनकी रचनाओं में निर्गुण काव्य धारा के बीज वर्तमान है। फिर भी इन विद्वानों ने नामदेव को इस धारा का प्रवर्तक नहीं माना। इसका प्रमुख कारण यह है कि नामदेव की रचना मुख्यतः मराठी में है जिसका हिंदी निर्गुण धारा से कोई संबंध नहीं। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में संग्रहीत केवल ६१ पद ही नामदेव के मिलते थे जिनके आधार पर विद्वानों ने ऊपर का संकेत दिया है। किन्तु कुछ वर्ष पहले पूना विश्वविद्यालय ने नामदेव की हिंदी रचनाओं को प्रकाशित करके विद्वानों के संकोच को दूर कर दिया है और अब प्रमाण के साथ यह कहा जा सकता है कि नामदेव की हिंदी रचनाओं में निर्गुण काव्य धारा की सभी प्रवृत्तियाँ वर्तमान हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यह विवेचित किया गया है कि नामदेव की हिंदी रचनाओं में निर्गुण काव्य धारा की कौन-कौन-सी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं और किस प्रकार वे संपूर्ण संत साहित्य को प्रभावित करती हैं। इस शोध प्रबध का शीर्षक 'हिंदी निर्गुण

काव्य का प्रारंभ और नामदेव की हिंदी कविता' है जिसकी अपनी सीमा है। इस शीर्षक के अन्तर्गत केवल यही बताया गया है कि हिंदी निर्गुण काव्य का प्रारंभ नामदेव की हिंदी रचनाओं से होता है, यद्यपि यह निर्गुण भावना अध्यात्म और साहित्य के क्षेत्र में शताब्दियों पूर्व चली आ रही थी। लेकिन हिंदी में इसका प्रादुर्भाव नामदेव से ही होता है। इस बात को दृढता के साथ कहने के लिये ही इस शोध प्रबन्ध का प्रणयन हुआ है।

जब से हिंदी निर्गुण काव्य धारा का अध्ययन और अध्यापन प्रारंभ हुआ है लगभग तभी से उस धारा के प्रवर्तक संत कबीर माने गये हैं। कबीर के साथ उस का ऐसा अविच्छिन्न संबंध स्थापित हो गया है कि नामदेव को इस धारा का प्रवर्तक कहने में सभी को संकोच होता रहा है। अतः इस बात की आवश्यकता थी कि प्रमाणों सहित यह सिद्ध किया जाय कि कबीर से पूर्व होने वाले नामदेव इस धारा के प्रवर्तक और प्रारम्भ-कर्त्ता हैं। एक ऐतिहासिक तथ्य को, जो सामग्री के अभाव में दब गया था, उद्घाटित करने के लिए इस प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ी।

मराठी साहित्य में नामदेव की चर्चा बड़ी श्रद्धा के साथ की जाती है। उनके हिंदुस्तानी पदों का भी उल्लेख किया जाता है किन्तु उन पदों का कथ्य और विषय-सामग्री क्या है इसकी चर्चा बिलकुल ही नहीं की गई है। मराठी में किसी ने भी इसका अध्ययन नहीं किया कि उनकी हिंदी रचनाओं का भाव क्या है और वे मराठी रचनाओं के भाव से कहाँ तक मेल खाती हैं। यही कारण है कि मराठी के विद्वानों ने हिंदी पदों के रचयिता नामदेव को कभी ठीक से नहीं समझा। हिन्दी में सर्वप्रथम प्रयत्न आचार्य विनय मोहन शर्मा का है जिससे नामदेव की हिंदी रचनाओं के अध्ययन के लिए द्वार खुले हैं।

आचार्य विनय मोहन शर्मा जी ने अपने ग्रन्थ हिंदी को मराठी संतों की देन में अन्य मराठी संतों की हिंदी रचनाओं के साथ नामदेव की भी चर्चा की और यह आग्रह किया कि नामदेव को हिंदी निर्गुण काव्य धारा का प्रारम्भकर्त्ता मानना चाहिये। वस्तुतः आचार्य शर्मा जी के इस आग्रह से ही नामदेव की हिंदी रचनाओं का अध्ययन करने के लिये मुझे प्रेरणा मिली। किन्तु उनकी हिंदी रचनाओं के अभाव में यह कार्य संभव नहीं हो पाया। पुणे विद्यापीठ के हिंदी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० भगीरथ मिश्र तथा डॉ० राजनारायण मौर्य ने बहुत परिश्रम करके संत नामदेव की हिंदी पदावली का प्रकाशन किया। इस पदावली के उपलब्ध होने पर यह कार्य सरल हो गया। इस पदावली के संपादकों ने भी यह कहा है कि संत नामदेव निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक हैं किन्तु उन्होंने इस धारा की परम्परा और नामदेव की रचनाओं से उदाहरण नहीं दिये। वस्तुतः उक्त पदावली में यह अपेक्षित भी नहीं है। वास्तविक रूप से देखा जाय तो आचार्य विनय मोहन शर्मा और डॉ० भगीरथ मिश्र ही नामदेव

सम्बन्धी इस अध्ययन के प्रेरणा-स्रोत है। पुणे विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित 'संत नामदेव की हिंदी पदावली' में पहली बार संत नामदेव के समस्त हिंदी पद संग्रहीत हुए हैं और इस पदावली के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि हिंदी निर्गुण काव्य के प्रारंभ-कर्त्ता नामदेव ही हैं। प्रस्तुत प्रबंध में बड़ी स्पष्टता और प्रामाणिकता के साथ इस तथ्य को उद्घाटित किया गया है।

यह शोध प्रबन्ध कुल सात अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में हिंदी निर्गुण काव्य धारा की पृष्ठभूमि बतलाई गई है जिसमें ब्रह्म के अस्तित्व, विकास तथा उसके निर्गुण सगुण रूप का विवेचन किया गया है। किस प्रकार उत्तरी भारत में निर्गुण रूप को प्रधानता मिल गई और संतों ने किस प्रकार निर्गुण भक्ति को अभिव्यक्ति को प्रधानता दी इसका उल्लेख आगे किया गया है। इस तरह हिंदी के निर्गुण काव्य का प्रारंभ सूचित किया गया है।

दूसरे अध्याय में संत नामदेव की जीवनी, उनका व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं के संबंध में लिखा गया है। अंत साक्ष्य तथा बहि साक्ष्य दोनों के आधार पर उपलब्ध उनकी जीवनी प्रस्तुत की गई है। इस संबंध में अभी तक कोई निर्णयात्मक बात नहीं कही गई थी। प्रस्तुत अध्याय में समस्त उपलब्ध तथ्यों का विश्लेषण कर उनकी जीवनी और रचनाओं के संबंध में निर्णायक बात कही गई है।

तीसरे अध्याय में हिंदी निर्गुण काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय दिया गया है। और इस बात का विवेचन प्रस्तुत किया गया है कि नामदेव की रचनाओं में उनका प्रतिफलन किस प्रकार हुआ है। निर्गुण काव्य आध्यात्मिक प्रेरणा का काव्य है जिसे अद्वैतवाद, सूफी मत, नाथ पंथ, वैष्णव धर्म आदि ने मिलकर एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। तत्पश्चात् निर्गुण काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया गया है।

चौथे अध्याय में नामदेव की दार्शनिक विचार धारा प्रस्तुत की गई है। भारतीय दर्शन की मूल विचारधारा ने नामदेव को किस प्रकार प्रभावित किया और कैसे उन्होंने सगुण निर्गुण को क्रम से अपनाया इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ब्रह्म, जीव, माया तथा संसार के संबंध में नामदेव के क्या विचार है यह उनकी रचनाओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है।

पाँचवें अध्याय में नामदेव की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है। काव्य का प्रयोजन बतलाते हुए संतों का काव्यादर्श और उनकी काव्य निर्मिति का प्रयोजन बतलाया गया है। इसके पश्चात् इन रचनाओं के भाव पक्ष और कला पक्ष पर विचार किया गया है। नामदेव की भाषा पर अधिक जोर दिया गया है क्योंकि यह १४ वीं शताब्दी की भाषा है, जिसका भाषा के ऐतिहासिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है।

छठवें अध्याय मे पूर्वोक्त सभी प्रमाणों का आधार लेकर यह सिद्ध किया गया है कि नामदेव हिंदी निर्गुण काव्य के प्रवर्तक है। कबीर को प्रवर्तक क्यो माना गया, इसका कारण और इतिहास भी दिया गया है। किन्तु सभी दृष्टियो से विश्लेषण करने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है नामदेव से ही हिंदी निर्गुण काव्य का प्रारभ माना जाना चाहिये।

सातवें अध्याय में इसका विवेचन किया गया है कि नामदेव का तत्कालीन और परवर्ती साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा है। नामदेव के समकालीन सतो और कवियो की उक्तियो म उनकी महत्ता का स्पष्ट करते हुए उत्तरकालीन सतो के उल्लेख का भी विवेचन किया गया है। नामदेव के बाद की हिंदी निर्गुण काव्य धारा पर उनका स्पष्ट प्रभाव है इसमे कोई सदेह नही।

अत मे उपसहार के अन्तर्गत सपूर्ण शोध प्रबध का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। हिंदी निर्गुण काव्य धारा का प्रारंभ नामदेव से ही होता है यही इस अध्ययन का निष्कर्ष है।

प्रस्तुत शोध प्रबध हिंदी निर्गुण काव्य की पूरी परपरा का अध्ययन और विश्लेषण करने के बाद लिखा गया है। इसके लिये हिंदी, मराठी, अग्रेजी आदि अनेक स्रोतो से सामग्री एकत्र की गयी है। इस प्रबध की मुख्य विशेषताएँ ये है—

(१) इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि भारत में निर्गुण काव्य की परपरा शताब्दियो पहले विद्यमान थी। लेकिन हिन्दी में यह १३वीं शताब्दी में अवतरित हुई।

(२) सत नामदेव की जीवनी, व्यक्तित्व और रचनाओ के संबध में प्रामाणिक तथ्य दिये गये है और उनके आधार पर निष्कर्ष निकाले गये हैं।

(३) नामदेव की रचनाओ में प्राप्त निर्गुण काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियो का निर्देश और कबीर मे उनके प्रतिफलन का विवेचन है।

(४) साहित्यिक दृष्टि स नामदेव की हिन्दी रचनाओं का पहली बार मूल्याकन किया गया है।

(५) हिंदी निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक के रूप में सत नामदेव को मान्यता प्रदान की गई है।

इस शोध प्रबध म व्यक्त मेरे विचार और मेरी मान्यताएँ सर्वथा मौलिक हैं, जिनसे सत साहित्य के अध्ययन के अनेक नये द्वार खुलने की सभावना है। इस अध्ययन स हिंदी निर्गुण साहित्य की परपरा लगभग डेढ़ सौ वर्ष पीछे जाती है। मेरा अनुमान है कि इस परपरा को और भी पीछे जाना चाहिये क्योकि नामदेव एकाएक ही बिना परपरा के उदित नहा हुए। अवश्य ही उनके साथ कोई परपरा थी जिसको

खोज करनी अभी बाकी है। यह शोध प्रबंध संत साहित्य के अध्ययन में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कड़ी है और मेरा विश्वास है कि इसके द्वारा हिन्दी निर्गुण साहित्य के अध्ययन के लिये और अधिक प्रेरणा मिलेगी।

आदरणीय डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग पूना विश्वविद्यालय, ने प्रस्तुत विषय पर शोधकार्य करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया जिसके लिये मैं उनका चिर ऋणी रहूँगा।

आदरणीय डॉ० राजनारायण मौर्य प्राध्यापक हिन्दी विभाग, पूना विश्वविद्यालय के सत्परामर्श द्वारा मेरे इस प्रबंध के विषय का सूत्रपात हुआ। इस प्रबंध को दिशा निर्देशित करने में और विषय सामग्री की खोज इत्यादि के संबंध मे उनसे जो सक्रिय निर्देशन प्राप्त हुआ, उसके लिए मै उनका अनुग्रह स्वीकार करता हूँ। उनके सुयोग्य मार्गदर्शन के बिना इस विषय पर कार्य करना लगभग असंभव था। उन्होने निरन्तर विषय को गहराई से समझने की प्रेरणा दी है। अपनी स्वभावगत सरलता एवं शालीनता द्वारा प्रस्तुत प्रबंध के रचनाकाल में उन्होने जो सहायता प्रदान की है उसके प्रति आभार मात्र व्यक्त करके मैं उनसे उऋण नही हो सकता। सच तो यह है कि मैं उनसे उऋण होना भी नही चाहता।

इस प्रबंध के लिखने में मैंने जिन ग्रंथो का उपयोग किया है उनकी प्राय. समस्त सूची प्रबंध के अंत में दे दी गयी है। वस्तुत: पूर्व के लिखे ग्रंथ प्रत्येक भावी लेखक के लिये पथ-प्रदर्शन का कार्य करते है। मैने जिन विद्वानो के ग्रन्थो एवं विचारो से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मे लाभ उठाया है उनके प्रति श्रद्धावनत होकर मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

इनके अतिरिक्त स्मृतिपटल पर अंकित न होने वाली जिन अन्य प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रेरणाओं ने मेरा उत्साह-वर्धन किया उन सबके प्रति भी मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

अन्त में एक निवेदन और। हिन्दी साहित्य में संत नामदेव की हिन्दी रचनाओ की चर्चा बहुत कम हुई है। प्रस्तुत प्रबंध मेरे विचार से एक नवीन दिशा की ओर प्रथम प्रयास मात्र है। इसका क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत है कि अन्य प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति इस संबंध में अधिकाधिक उपयोगी सामग्री प्रस्तुत कर सकते है। आशा है कि इस प्रयास से इस दिशा में नवीन अनुसन्धान को बल मिलेगा। इस दृष्टि और संभावना के साथ यह विनम्र प्रयास आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस प्रबंध द्वारा यदि बुध जनो का कुछ भी अनुरंजन हो सका तो इसे मैं उनकी सहज उदारता एवं अपना परम सौभाग्य

समझूँगा। रचना प्रकाशन के स्वत्वाधिकारी श्री जीत मल्होत्रा के अथक परिश्रम और सूझ बूझ से यह ग्रंथ पाठकों के समक्ष आ रहा है। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

दिल्ली दरवाजा
अहमद नगर
(महाराष्ट्र)

डा० के० आइयर

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

हिंदी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि

१. ब्रह्म का अस्तित्व
२. ब्रह्म का स्वरूप—निर्गुण और सगुण दोनो की एकता
३. निगण शब्द और उसके अर्थ का ऐतिहासिक विकास
४. निर्गुण काव्य—सगुण से पार्थक्य
५. निर्गुण काव्यधारा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : सिद्ध संप्रदाय, नाथ पंथ, ज्ञानदेव की परंपरा
६. *निर्गुण उपासना का विकास*
७. हिंदी काव्य तथा नाथ संप्रदाय
८. निर्गुण काव्यधारा पर मत्स्येंद्रनाथी धारा का प्रभाव
९. निर्गुण काव्यधारा पर गोरखनाथी धारा का प्रभाव

हिन्दी निर्गुण काव्यधारा की पृष्ठभूमि

ब्रह्म का अस्तित्व : वैज्ञानिक दृष्टि से—दार्शनिक दृष्टि से

मनुष्य का अहं, उसकी बुद्धि, उसका मन, उसके प्राण और उसका शरीर सब मिलकर एक सुव्यवस्थित मानव-संगठन का निर्माण करते हैं। ऐसे संगठन इस ब्रह्माण्ड में अनेक हैं। निखिल ब्रह्माण्ड स्वतः ऐसा ही एक बृहत् संगठन है।

हमारा शरीर जैसे नितांत स्थूल परमाणुओं का संघात है वैसे ही ब्रह्माण्ड के पृथ्वी आदि लोक भी हैं। शरीर की ही भाँति ब्रह्माण्ड में प्राणशक्ति संचरित हो रही है। हमारा सूक्ष्म मन ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म आकाश है। हमारी बुद्धि ब्रह्माण्ड का द्यौलोक है। मानव संगठन के समस्त अवयवों का प्रेरक जीवात्मा है। उसी तरह निखिल ब्रह्माण्ड के अवयवों का प्रेरक एक परम आत्म तत्त्व होना ही चाहिए।

जैसे मानवी शरीर रूपी संगठन को देखकर उसके रचयिता का भान होता है वैसे ही इस ब्रह्माण्ड के संगठन को देखकर। रचयिता की रचना शक्ति में प्रकाशात्मिका बुद्धि निहित रहती है उसी बुद्धि का विशाल रूप ब्रह्माण्ड रचयिता के भीतर होना चाहिए।[1]

आधुनिक विज्ञान ने ब्रह्माण्ड के संबंध में जो अनुसंधान प्रस्तुत किये हैं वे उस परम तत्त्व की विराट् बुद्धि पर पर्याप्त प्रकाश डालते है। सृष्टि निर्माण की योजना और

---

1. 'The whole frame work of Nature bespeaks of an intelligent author.'

'The Idea of God' p. 15
—by Pringle Pattison.

'The idea of a Universal Mind or Logos would be fairly plausible inference from the present state of scientific theory, at least it is in harmony with it'

'The Nature of the Physical World' p. 338
—by Eddington.

उसकी काय परिणति पर वैज्ञानिको ने जो खोज की है, वह निश्चित रूप से इस दिशा की ओर सकेत करती है कि सृष्टि अकस्मात् उत्पन्न नही हुई। उसके पीछे एक महान शक्ति कार्य कर रही है। और जगत् के सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि समस्त ग्रह और उपग्रह ऐसे आकर्षण सबंध में परस्पर सबद्ध है, उनकी दूरी, गति एव परिमाण ऐसे निश्चित और नपे तुले है[१] और एक दूसरे के सहायक बने हुए वे ऐसे सुरक्षित और सुदृढ है कि उनके इन व्यापारो के पीछे एक अनन्त चेतन सत्ता की विद्यमानता का बरबस अनुभव होने लगता है।[२]

जो विधान इस सृष्टि मे पाया जाता है वही उसकी स्थिति के लिए आवश्यक है। इस विधान का विधाता कौन है?[३]

इस विधान का प्रसार यहाँ किसने किया?

भूगर्भ विद्या, खगोल विद्या, शरीर विज्ञान, जीव विज्ञान आदि सभी शास्त्र अपने क्षेत्र मे कार्य करने वाले नियमो की ओर स्पष्ट सकेत कर रहे है। इस समय विज्ञान की कोई भी ऐसी शाखा नही है, जो विश्व के किसी भी विभाग को नियम नियत्रण विहीन घोषित करती हो।

प्रसिद्ध दार्शनिक प्रिंगल पटिसन के इस कथन[४] की वास्तविकता विज्ञान के सभी

---

१ यो अन्तरिक्षे रजसो विमान। यजु ३२ ६ (जिसने अन्तरिक्ष में लोकों को नाप तोल कर रखा है।)

२ फिलट ने अपने ग्रन्थ 'Theism' के पृष्ठ १३८ पर इसी प्रकार के विचार प्रकट किये है Each orb is affecting the other Each is doing what, if unchecked would destroy itself and the entire system, but so wonderously is the whole constructed that these seemingly dangerous disturbances are the very means of preventing destruction and securing the universal welfare

३ Pringle Pattison अपने ग्रन्थ 'The Idea of God' के पृ० १५ पर लिखते है—There is an eternal, inherent principle of order in the world which proves an omnipotent mind All the sciences almost lead us to acknowledge a first intelligent author

४ 'विश्व के समग्र रूप को एक साथ लेकर अथवा उसके किसी एक अश पर ध्यानपूर्वक विचार कीजिये तो वह एक बृहत् यत्र प्रतीत होगा, जिसके भीतर अपरिमित छोटे छोटे यत्र है। इन छोटे छोटे यन्त्रो के भीतर पुन अनेक

क्षेत्रों की खोजों से सिद्ध हो रही है।

पृथ्वी मंडल पर जो जीवन पाया जाता है वह आकस्मिक नहीं है। उसका एक विशिष्ट उद्देश्य है। पार्थिव वनस्पतियाँ सूर्य से आती हुई प्राण-शक्ति को लेकर अपने सरल अणुओं (molecules) को मिश्रित अणुओं में परिणत कर देती है। वृक्षों से भरे हुए जंगल पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को मरुस्थल के आक्रमणों से सुरक्षित रखते हैं। वे मिट्टी को वर्षा की बाढ़ में बह जाने से भी रोकते है। संस्कृत में जल को जीवन कहा गया है। आधुनिक वैज्ञानिक भी जल के तत्त्वों का विश्लेषण करके इसी परिणाम पर पहुँचे हैं। कैनेथ वॉकर ने[1] ह्वेवेल का मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि जल में जिस अनुपात से जीवन को सुरक्षित रखनेवाले तत्त्व मिश्रित हैं उनसे बढ़कर हमारे वातावरण में और कुछ हो नहीं सकता। इस सम्बन्ध में जल के स्थान को और कोई द्रव्य नहीं ले सकता। जीवन और जीवन संबंधी साधनों का यह विशाल कारखाना किसकी देखरेख में चल रहा है?

इस जीवन का भी जीवन निःसंदेह एक मूल महा जीवन है, जिसने तक्षा के रूप में विभिन्न मूर्तियों के नाना रूप साँचे तैयार किये हैं। वृक्षों के पत्तों और फूलों के रंगो में उसकी अद्भुत कारीगरी प्रकट हो रही है। पक्षियों के कलरव में वह संगीतकार

लघुतर एवं लघुतम यंत्र विद्यमान हैं जो मानव की खोज शक्ति तथा व्याख्या-शक्ति की सीमा में आज तक आबद्ध नहीं हो सके। ये विभिन्न यंत्र अपने समस्त अंशों के साथ ऐसे घनिष्ठ रूप में सहयुक्त हैं कि सभी विचारशील मानव उसकी प्रशंसा करते है। प्राकृतिक जगत् में साधन और साध्य का संबंध सर्वत्र वैसा ही है जैसा मानवीय बुद्धि की कृतियों में दृष्टिगोचर होता है, अथवा यह कहना युक्तिसंगत होगा कि वह इससे कहीं अधिक बढ़कर है। जब कार्यों में समता है, तो कारणों में भी समता होनी ही चाहिए। अतः मानव-मस्तिष्क की ही भाँति, प्रकृति के महान् कार्य जगत् का रचयिता एक ऐसा महान् मस्तिष्क होना चाहिए, जिसमें महत् कार्य की अपेक्षा महत् शक्तियाँ भी विद्यमान हों।'

'The Idea of God' p. 9, 10
—*Pringle Pattison.*

1. The various properties of water are uniquely suitable for the support of life No other substance could substitute water in an environment like ours.
—'Meaning and Purpose' p. 102

बना बैठा है। जीवन रसायनी बनकर वह फलो में रस, मसालो में स्वाद और फूलो में गंध उत्पन्न करता है। जल और कार्बन के पृथक्-पृथक् अनुपात से लकडी और शक्कर भी उसी ने तैयार की है और इस प्रक्रिया द्वारा ओषजन उत्पन्न किया है जो पशुओं का जीवन है। प्रोटोप्लाज्म की एक अदृश्य बूँद सूर्य से प्राण शक्ति पाकर समस्त जीवन-जगत् का कारण बनी हुई है। यह जीवन प्रकृति से उत्पन्न नहीं हुआ। फिर इस जीवन का स्रोत कहाँ है ? हक्सले के शब्दों में इस जीवन का स्रोत जीवन ही है। जीवन किसी संगठन का परिणाम नहीं, प्रत्युत उसका कारण है।[1]

विज्ञान के अनुसंधान जब स्वयं वैज्ञानिक को सोचने का अवसर देते है और उसके मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालते हैं तो वैज्ञानिक की स्थिति दार्शनिक की-सी हो जाती है। जब वह देखता है कि सृष्टि में पाया जाने वाला पूर्ण क्रम इसके पूर्व पूर्णतया अस्त-व्यस्त (Chaotic) सामग्री को अनंत व्यक्तियो या इकाइयो के ढाँचे में ढालने वाले व्यक्तिकरण (Individuation) के रूप में था तो वह यह सोचता है कि क्या यह सब अपने आप हो रहा था ?

दूसरी ओर वह बालमनोविज्ञान, जो स्वत. अब एक प्राकृतिक विज्ञान माना जाने लगा है, के आधार पर बालक के इंद्रिय संवेदन (Sensation), भेदीकरण (Differentiation) और पदार्थ बोध (Perception) के क्रम में, सृष्टि के उसी क्रम को देखता है और यहाँ उस चेतना संपन्न बालक की सहायता करने वाले अन्य चेतन मानवो को देखता है, तो सृष्टि को क्रम की पूर्णता पर पहुँचाने वाली एक महा चेतन सत्ता की ओर स्वभावत. उसकी कल्पना चली जाती है।

हम स्वय अपने सामने मिट्टी के ढेर में से पानी तथा कुछ यंत्रो की सहायता से मानव को ईंटें बनाते और उन ईंटो से महल बनाते देखते हैं। इस निर्माण में भी फैली हुई सामग्री, सामग्री का व्यक्तिकरण और व्यक्तिकरण से व्यवस्था की ओर चलने मे एक निश्चित क्रम पाया जाता है और उस क्रम के मूल में एक चेतन सत्ता का हाथ दिखाई देता है। सर जेम्स जोन्स ने इसे चेतना (Thought) और आइनस्टीन ने इसे बुद्धि (Intelligence) या (Rationality) नाम दिया है।

सृष्टि विभिन्नरूपा होकर भी एक है। अंग्रेजी में इसका नाम ही Universe है, जिसे हिंदी में एकात्म काव्य कहा जा सकता है। वेद तो इसे देव का काव्य कहता ही है। काव्य को संगीतात्मक, भावात्मक एवं कल्पनात्मक, एकता उसके जनक चेतन तत्व की एकरूपता को प्रकट करती है। इसी प्रकार सृष्टि का सामंजस्य (Harmony) उसके एक स्रष्टा होने का संकेत देता है, जो चेतन है।

बाहर सृष्टि के विभिन्न अवयव मिलकर एक दूसरे को आकर्षित करते तथा

1. Life is the cause and not the consequence of organism.

एक नियम में आबद्ध होने के कारण एक हैं। उनकी यह नियमबद्धता ही इस एकता की निर्देशिका है।[1]

इसी प्रकार भीतर भावना, कल्पना और चेतना की एकता है। नियमों की यह एक प्रकारता पुनः एक नियम है। इस नियम का एक नियामक है। अतः अन्त: तथा बाह्य चाहे जिस दृष्टि से देखें, यह विविध रूप जीवन और जगत् एक चेतन नियामक का ही कार्य प्रतीत होता है।

इसी सर्वोपरि चेतन नियामक तत्त्व को ईश्वर कहते हैं। मानव स्वयं इस सत्ता का अनुभव अपने में करता है।

ईश्वर का विचार मानव की प्रातिभ शक्ति, कल्पना की उपज है, ऐसा भी कहा जाता है। इसी कल्पना शक्ति द्वारा वह अदृश्य शक्तियों का भी अनुमान किया करता है। कल्पना शक्ति का क्षेत्र असीम है। मानवी कल्पना की पूर्णता आध्यात्मिक सत्यता में परिणत हो जाती है। इसी से वह जहाँ योजना, क्रम तथा उद्देश्य की एकता पाता है वहीं वह उस महान् सत्य ईश्वर के दर्शन करने लगता है। जैसा लिखा जा चुका है, उसे यह एकता बाहर भी दिखाई देती है और अपने भीतर भी। अत: वह बाहर से हटकर उस महान सत्ता का अनुभव अपने हृदय की गुहा में, अपने समीप ही अपनी सधस्यता में[2] ही करने लगता है।

संत एवं भक्त कवि तभी तो कहते रहे हैं :

'स्वामी जू मेरे पास हो, केहि विनय सुनाऊँ ?'

अभी तक हमने वैज्ञानिक दृष्टि से इस परम तत्त्व के संबंध में संक्षेप में विचार किया। विज्ञान के विविध अंगों का दर्शनशास्त्र में विलय हो जाता है। अतः दर्शन-

---

1. Every particle of matter in the universe attracts, to some extent, every other particle. There is thus presented to the mind a sublime picture of the inter-relatedness of all things. All things are subject to law and the universe is in this respect a unit.

P. W. Brigman

—'Reflections of a Physicist' P. 82.

२. अवयत्स्वे सधस्ये देवाना दुर्मतीरीक्षे राजन्नपद्विषः सेध मीढ्वो अपस्रिधः सेध। —ऋग्वेद ८।७९।९

(हे परम प्रकाशमय प्रभु ! तुम यहीं मेरे भीतर मेरे साथ बैठे हो। अतः जैसे ही देवों की दुर्मतियों को देखो वैसे ही हे अमृत सिंचक ! इन दुर्मतियों को दूर कर इन द्वेषों और हिंसा वृत्तियों को नष्ट कर दो।)

शास्त्र की खोज इस परमतत्त्व के संबंध में कहाँ तक पहुँची है, उसे भी देखना चाहिए।

वैज्ञानिक यदि प्राकृतिक दृश्यों और घटनाओं का उद्घाटन करता है तो दार्शनिक इस उद्घाटन का संश्लेषण विश्लेषण करता हुआ, प्रकृति के पर्दे को चीर कर उस सत्ता को साक्षात् कर लेना चाहता है, जो प्रकृति की पल-पल की नवीनरूपता एवं स्थिरता के मूल में विद्यमान है।[१]

प्रकृति परिवर्तनशील है। उसमें नित्य नये परिवर्तन होते रहते हैं। सूर्य चंद्रादि भी अपनी उत्पत्ति और विनाश की कहानी साथ लिए हुए है। दार्शनिक उत्पादक को ही संहारकर्ता के रूप में भी देखता है और कहता है: 'ये दृश्य, ये खिलौने उसी खिलाड़ी के हाथ मे है। वह लीलामय इनके द्वारा अपनी लीला दिखाता है और फिर उन्हें बंद कर देता है।'[२] यह विश्व उसी कलाकार की कला है और उसी के स्वभाव की अभिव्यक्ति है।

भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक बादरायण व्यास ने 'ब्रह्म सूत्र' के प्रारंभ में ही ब्रह्म की जिज्ञासा करते हुए लिखा :

'जन्माद्यस्य यतः'

जो विश्व के जन्म, स्थिति और संहार का कारण है वह ब्रह्म है। यह ब्रह्म परिवर्तनशीलो में अपरिवर्तनीय, अनित्यो में नित्य, मर्त्यो में अमर्त्य और अंतिम सत्य है। प्रकृति के रूप विभक्त हो सकते है परन्तु यह अविभाज्य, एक रस शाश्वत सत्ता है।

भारतीय दर्शनो में सांख्य, बौद्ध तथा चार्वाक या बार्हस्पत्य दर्शन निरीश्वरवादी कहलाते है। शेष सभी दर्शनो में ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिपादन हुआ है। कपिल अपने सांख्य दर्शन ५-४७ में वेदो का अपौरुषेयत्व तथा ६-३४ और ५-५१ में वेदो का स्वतः प्रामाण्य स्वीकार करते है परन्तु ईश्वर के संबंध में उनका मत है कि वह प्रमाणो द्वारा सिद्ध नही हो सकता। उसकी सिद्धि में प्रमाणो का अभाव है।

---

1. Philosophy is not knowledge of the world, but knowledge of the not-worldly, not knowledge of external mass, of the empirical existence, but knowledge of what is eternal, what is God and what flows from His nature.

   —Constructive Basis for Theology p. 191-192.
   James Ten Brooke

2. Our world is God's handiwork and a real expression of His nature.

   —Religion and Biology p. 98.
   अर्नेस्ट ई० ब्रनविन

'ईश्वरासिद्धेः ।' १-९२ (सांख्य दर्शन) तथा
'प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ।' ५-१० (सांख्य दर्शन)

महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन, चतुर्थ अध्याय के प्रथम आह्निक में 'ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्यदर्शनात्' सूत्र द्वारा ईश्वर को समस्त प्रपंच के आदि कारण तथा जीवों के कर्मफल-प्रदाता के रूप में स्वीकार किया है।

नैयायिकों का ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसमें अधर्म, मिथ्या, ज्ञान और प्रमाद नहीं है। वह रचना करने में सर्व शक्तिमान है। वह आप्त-कर्म-कार है। जैसे पिता पुत्र के लिये कार्य करता है उसी प्रकार ईश्वर जीवों के उद्धार के लिये जगत् की रचना करता है।

जैसे खिचड़ी अपने आप नहीं पक जाती उसे कोई पकाता है वैसे ही वैदिक विधान अपने आप नहीं बन गये। उनका बनाने वाला चेतन ईश्वर है। वेद को किसी पुरुष ने नहीं बनाया। अतः वे अपौरुषेय है। वे सर्वज्ञ ईश्वर की कृति है।

वेदों में अलौकिक दैवी तत्वों के उल्लेख तथा सर्वव्याप्त लोकोत्तर सिद्धान्त साधारण जीवों के ज्ञान के विषय (परिणाम) नहीं हो सकते। ज्ञान का जो तारतम्य यहाँ दृष्टिगोचर होता है, वह भी अपनी पूर्णता के लिये ईश्वर जैसी सर्वज्ञ सत्ता की ओर संकेत करता है। पातंजल सूत्र—"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजं" १-११ इसी तथ्य को प्रकाशित करता है। पुरुष और प्रकृति का संयोग तथा वियोग ईश्वर ही कराता है।[1]

वैशेषिक दर्शन 'तद् वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्' १-१-३ सूत्र में 'आम्नाय' अर्थात् वेद को ईश्वर का वचन मानकर ईश्वर को ज्ञान का स्रोत स्वीकार करता है।

पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमासा (वेदान्त अथवा ब्रह्म सूत्र) क्रमशः धर्म और ईश्वर की व्याख्या से सम्बन्ध रखते है।

इस प्रकार दर्शन और विज्ञान दोनों ने, हमें उस पुरुष विशेष ईश्वर तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। पर वे उस परम तत्व की झलक मात्र देखने और दिखाने में समर्थ हुए हैं। उसका संपूर्ण स्वरूप विवेचना, आलोचना, मीमांसा, मति, मनीषा, बुद्धि आदि सब शक्तियों से ऊपर और अग्राह्य है। उस महा चेतन सत्ता की अनंत क्षमता का पार न आज तक कोई पा सका है और न भविष्य में पा सकेगा।[2]

---

1. Dr. Radhakrishnan : 'Indian Philosophy' Vol. II —(Ed. 1951) pp. 169-172.
2. 'But who ever has undergone the intense experience of successful advances made in the domain of science, is

मानव ज्यों ज्यों वैज्ञानिक क्षेत्र की सफल खोजों की प्रगति में प्रवेश करता जाता है त्यों त्यों वह सृष्टि में अभिव्यक्त बुद्धिवादिता को पहचान कर अपनी व्यक्तिगत क्षुद्र आशाओं और अभिलाषाओं से भी ऊपर उठ जाता है और सृष्टि के रूप में मूर्तिमान बुद्धि की महत्ता के सामने उसका सिर भक्ति भाव से झुक जाता है। यह बुद्धि अपने गम्भीरतम स्वरूप में मानव की पहुँच से परे है। सर आइनस्टाइन बुद्धि का नाम लेकर ईश्वर की सत्ता का विरोध नहीं करते। वे लिखते हैं कि प्रभु का सर्वशक्तिमान, न्यायी और दयालु रूप मानव को आश्वासन, साहाय्य और पथ प्रदर्शन प्रदान करता है।[1]

ब्रह्म का स्वरूप

आचार्यों ने ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का निर्णय करने के लिए दो प्रकार के लक्षणों को स्वीकार किया है।

(१) स्वरूप लक्षण (२) तटस्थ लक्षण

'स्वरूप' लक्षण पदार्थ के सत्य, तात्त्विक रूप का परिचय देता है परन्तु 'तटस्थ' लक्षण कुछ देर के लिए होने वाले आगन्तुक गुणों का ही निर्देश करता है।

लौकिक उदाहरण से इसको देखिये। कोई ब्राह्मण किसी नाटक में एक क्षत्रिय नरेश की भूमिका ग्रहण कर रंगमंच पर आता है जहाँ वह शत्रुओं को परास्त कर अपनी विजय वैजयंती फहराता है और अनेक शोभन कृत्यों को कर प्रजा का अनुरंजन करता

---

moved by profound reverence for the rationality made manifest in existence By way of the understanding, he achieves a far reaching emancipation from the shackles of personal hopes and desires and thereby attains the humble attitude of mind towards the grandeur of reason incarnate in existence and which in its profoundest depths, is inaccessible to man'

—'Out of my Later Years' p. 29
—आइनस्टीन

1 'The idea of the existence of an omnipotent, just and omnibeneficent personal God, is able to accord man solace, help and guidance'

—'Out of my Later Years' p. 27.
—आइनस्टाइन

है। परन्तु इस ब्राह्मण के सत्य स्वरूप के निर्णय करने के लिए उसे राजा बतलाना क्या उचित है ? राजा वह अवश्य है परन्तु कब तक ? जब तक नाटक का व्यापार चलता रहता है। नाटक समाप्त होते ही वह अपने विशुद्ध रूप में आ जाता है। अतः उस पुरुष को क्षत्रिय राजा मानना 'तटस्थ' लक्षण हुआ तथा ब्राह्मण बतलाना 'स्वरूप' लक्षण हुआ।

सगुण ब्रह्म
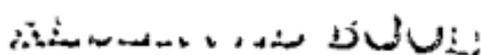
ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का कारण है। आगन्तुक गुणों के समावेश के कारण यह उसका 'तटस्थ' लक्षण है। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तिरीय उपनिषद् २-१-१) तथा 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (बृहद उपनिषद् ३।६।२८) ब्रह्म के स्वरूप के प्रतिपादक लक्षण हैं।

वह सत् (सत्ता) चित्त (ज्ञान) और आनन्द (सच्चिदानंद) रूप है। यही ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। परन्तु यही ब्रह्म मायावच्छिन्न होने पर सगुण ब्रह्म, अपर ब्रह्म या ईश्वर कहलाता है जो इस जगत् की स्थिति, उत्पत्ति तथा लय का कारण होता है। ब्रह्म के दो रूप होते हैं। सगुण तथा निर्गुण। दोनों एक ही हैं परन्तु दृष्टिकोण की भिन्नता से दो रूपों में गृहीत किये जाते हैं।

जिस प्रकार संसार के पदार्थ असत्य और काल्पनिक हैं उसी प्रकार जीव भी अविद्या के ऊपर आश्रित रहता है। 'ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता है।' इस ज्ञान के अभाव में ही जीव की सत्ता है। जीव उपासना के लिए ईश्वर की कल्पना करता है। ईश्वर जगत् का स्वामी तथा नियंता है। इसी लिए जीव उसकी उपासना करता है और उसे दया, दाक्षिण्य, अगाध करुणा आदि गुणों से मण्डित मानता है। यही है सगुण ब्रह्म या ईश्वर। इस प्रकार सगुण ब्रह्म की कल्पना उपासना के निमित्त व्यावहारिक दृष्टि से की गई है।

पाँचरात्र या भागवत मत के अनुसार ब्रह्म अद्वैत, अनादि, अक्षत, निर्विकार, निरवद्य, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, असीम तथा आनन्दस्वरूप है।

सब द्वन्द्वों से विनिर्मुक्त, सब उपाधियों से विवर्जित, सब कारणों का, षड्गुण रूप परब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों हैं।

अप्राकृत गुणों से हीन होने के कारण वह निर्गुण है तथा षड्गुण युक्त होने के कारण वही परब्रह्म 'भगवान्' कहा जाता है। इसी कारण वह सगुण है।

शंकराचार्य ने पाँचरात्र के उपर्युक्त मत का खण्डन किया है और इसे अवैदिक बताया है। परन्तु रामानुजाचार्य ने उसे वेद-विदित सिद्ध कर बादरायण के ब्रह्म-सूत्रों

की व्याख्या 'श्री भाष्य' में उसे प्रामाणिक कहा है। इसी मत के आधार पर मध्य युग में वैष्णव भक्ति मार्ग का प्रचार और भगवान् के विभवावतारों की लीलाओं का वर्णन-कीर्तन किया गया है। भक्ति के अनेक सम्प्रदाय स्थापित हुए, जिनमें भगवान् के सगुण रूप पर ही बल दिया गया क्योंकि वही पूजा, उपासना, आराधना और ध्यान का सहज विषय हो सकता है।

इसके विपरीत मध्ययुग में ही निर्गुण उपासना के प्रचारक संत हुए है। कबीर, रैदास, दादू आदि निर्गुण उपासक सन्तो ने ब्रह्म की सगुणता तथा उसके व्यूह, अवतार तथा मूर्तियों का खण्डन किया है। कभी कभी इस निर्गुणोपासना को तत्कालीन विदेशी प्रभाव का परिणाम कह दिया जाता है और सगुणोपासना को ही शुद्ध भारतीय भक्ति-पद्धति घोषित किया जाता है परन्तु वास्तव में निर्गुणवाद उपनिषद् के ब्रह्मवाद से भिन्न नहीं है। भारतीय उपासना पद्धति में निर्गुणवाद ही कदाचित् प्राचीनतर है। निर्गुण और सगुण में जो विरोध समझ लिया जाता है वह दोनो के उपर्युक्त सूक्ष्म अन्तर से भिन्न है।

भक्तिकालीन सगुणोपासक कवियो ने भी निर्गुण की अस्वीकृति नही की, प्रत्युत भक्ति-साधना के लिए उसकी अव्यावहारिकता प्रमाणित की है। गीता की तरह सूरदास ने 'सूरसागर' के प्रारम्भ मे ही अव्यक्त की गति को अनिर्वचनीय कहकर यह निश्चय प्रकट किया है कि रूप-रेखा-गुण-जाति-युक्ति से रहित अव्यक्त का स्वाद गूँगे के गुड़ के समान है। अतः मैं सगुण लीला के पद गा रहा हूँ। (पद २)

तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण में बराबर अभेद का सिद्धान्त स्वीकार किया है, परन्तु उन्हे अन्तर्यामी राम की अपेक्षा बहिर्यामी राम ही अधिक अच्छे लगते हैं, क्योंकि उन्हीं की कृपा का वे प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते है। सगुण रूप सुगम है, क्योंकि वह इन्द्रियों द्वारा जाना जा सकता है। परन्तु विचार करने पर सगुण रूप ही समझना अधिक कठिन प्रतीत होता है।

निर्गुण ब्रह्म

'निर्गुण' शब्द अपने पारिभाषिक रूप में सत्वादि गुणों से रहित या उनसे परे समझी जाने वाली किसी ऐसी अनिर्वचनीय सत्ता का बोधक है, जिसे बहुधा परम तत्व, परमात्मा अथवा ब्रह्म जैसी संज्ञाओं द्वारा अभिहित किया जाता है।

पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म निर्गुण है। उस पर जीव या जगत् का कोई भी गुण आरोपित नही किया जा सकता। शंकराचार्य ने श्रुति वचनो के आधार पर प्रमाणित किया है कि दिक् काल से अमर्यादित, अमृत, अनादि, स्वतन्त्र, अखण्ड, सर्वव्यापी तथा

निर्गुण ऐसा एकमेव तत्त्व विश्व की जड़ में है। जैसे—

'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ. २-४-६)
'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' (मु. २-२-२१)
'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा. ७-२५-२)
'नेह नानास्ति किंचन' (बृ. ४-४-१६)
'निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम्' (श्वे. ६-१६)
'अस्थूलमनणु' (बृ. ३-८-८)

'निर्गुण' शब्द 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (६ : ११) में उस अद्वितीय 'देव' (परमात्मा) का एक विशेषण बनकर आया है, जो सभी भूतों में अन्तर्हित है, सर्वव्यापी है, सभी कर्मों का अधिष्ठाता है, सब का साक्षी है, सबको चेतनत्व प्रदान करने वाला तथा निरुपाधि भी है।

उसी की ओर संकेत करते हुए श्रीकृष्ण द्वारा 'गीता' (१३-१४) मे भी कहलाया गया है—'उसमें सब इद्रियों के गुणो का आभास है, पर उसके कोई भी इन्द्रिय नही है, वह सबसे असक्त रहकर, अर्थात् अलग होकर भी सबका पालन करता है और निर्गुण होने पर भी गुणों का उपभोग किया करता है।'

उपनिषद् ब्रह्म को 'नेति-नेति' शब्दो के द्वारा अभिहित करते हैं। इसका तात्पर्य क्या है ? प्रत्येक विधेय उद्देश्य के क्षेत्र को सीमित करता है—यह उसका स्वभाव होता है। 'यह लेखनी लाल है'—इस वाक्य में 'लाल' यह विधेय, उद्देश्य (लेखनी) के क्षेत्र को वस्तुतः सीमित करता है। अर्थात् 'लाल' से पृथक् क्षेत्र में 'लेखनी' का कोई भी सम्बन्ध नहीं माना जा सकता।

ब्रह्म के विषय में हम किसी विधेय का प्रयोग नही कर सकते क्योंकि ऐसा करने से वह सीमित तथा परिमित बन जायेगा परन्तु वस्तुतः वह अपरिमित सत्ता है। इस प्रकार उसमें कोई गुण नहीं रहता। न यह गुण वहाँ है और न वह गुण। सब गुणों के निषेध करने से जो तत्त्व बच जाता है वही है ब्रह्म। इस प्रकार जिस ब्रह्म के विषय में श्रुति 'नेति नेति' शब्दों का व्यवहार करती है वह ब्रह्म वस्तुतः निर्गुण ब्रह्म ही है और यही ब्रह्म का पारमार्थिक रूप है।

सत कबीर 'निर्गुण' शब्द का एक पर्याय 'अगुन' भी देते जान पड़ते है (क. ग्रं. पद १८३)। वे उसके द्वारा सूचित किये जाने वाले तत्त्व को 'गुन अतीत' बतलाते है और फिर उसे 'निर्गुण ब्रह्म' भी कहकर उसकी उपासना का उपदेश देते है (पद ३७५। वे उसे अन्यत्र 'निर्गुण राम' की भी संज्ञा देते हैं और उसकी 'गति' को अगम्य ठहराते है (पद ४६) तथा उसे केवल 'निर्गुण' कहकर भी उसी प्रकार अकथनीय बतलाते (हैपद १८६)। परन्तु एक स्थल (पद १८४) पर वे उसके विषय में इस प्रकार भी

कहते हैं— 'राजस, तामस और 'सातिग' (सात्विक) ये तीनो ही उसकी माया है तथा वह इन तीनो से परे का 'चौथा पद' है। वह गुणातीत होने के कारण 'निर्गुन' कहलाता है, नहीं तो वह वस्तुत निर्विषय नही ठहराया जा सकता तथा उसे समझ लेना धोखे की बात होगी।

लोग उसे 'अजर' कहते हैं और 'अमर' भी बतलाते है किन्तु सच्ची बात तो यह है कि वह 'अलख' होने के कारण अनिर्वचनीय है। कबीर का हरि इन सभी से विलक्षण है। (पद १८०)। फिर 'वह जैसा है वैसा समझ लेने में ही आनन्द है, उसे वस्तुत न जानते हुए भी, उसका कथन करना ठीक नही।' इसी कारण कबीर ने अपने को उसे 'सरगुन' की अपेक्षा 'निर्गुण' रूप में ही जानने वाला कहा है।

दोनो की एकता

सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद नही है। वह एक ही सत्ता है परन्तु दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण वह इन दोनो नामो से पुकारा जाता है। नाट्यशाला में रंगमंच पर दुष्यंत की भूमिका में उतरने वाला नट नाट्यशाला से बाहर आने पर कोई दूसरा व्यक्ति नही बन जाता। वह वही मनुष्य रहता है। नाट्य की दृष्टि से वह नट कहलाता है परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से वह मनुष्य ही रहता है।

ब्रह्म की भी ठीक यही दशा है। वह संसार की सृष्टि, स्थिति तथा लय करता है। अत. ससार की अपेक्षा वह ईश्वर है परन्तु निरपेक्ष भाव से देखने पर वही ब्रह्म है। अत. सगुण ईश्वर तथा निर्गुण ब्रह्म में भेद मानना नितांत भ्रामक है। निर्गुण ब्रह्म ही वास्तविक पारमार्थिक सत्ता है परन्तु व्यवहार के लिए उपासना के निमित्त वही सगुण ईश्वर माना जाता है। तत्त्व एक ही है। दृष्टि भिन्न भिन्न है और इसी लिए उसके दो रूप हैं।

एकबारगी हम अंतिम सीढी पर नही पहुँच सकते। ज्ञान के मंदिर में चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ हैं जिनके द्वारा ही साधक उसमें पहुँच सकता है। निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति अंतिम लक्ष्य है परन्तु अभ्रात ज्ञानी ही उसे पा सकता है। उसके सोपान रूप है उपासना और इसके लिए 'ईश्वर' की महती आवश्यकता है। ईश्वर की उपासना से सगुण पूजन से चित्त की शुद्धि होती है और तभी साधक विशुद्ध ज्ञान मार्ग का अवलंबन कर निर्गुण ब्रह्म को पा सकता है अन्यथा नही। यही उपासना का उपयोग है।

ब्रह्म वास्तव में निर्गुण है इस विषय को गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार

प्रकट किया है :—

एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानंद परधामा ॥
'कल्याण' का श्री मानस अंक, बालकाड, पृ० ७१ ।

अगुन अखंड अनंत अनादि । जेहि चिन्तहि परमारथवादी ।
नेति नेति जेहि वेद निरूपा । चिदानन्द निरुपाधि अनूपा ॥
व्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रूप ॥
'कल्याण' का श्री मानस अंक बालकांड पृ० ७१ ।

वही ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी। इस लिए स्थान स्थान पर ब्रह्म का निर्गुण भावात्मक वर्णन भी पाया जा सकता है । उपनिषद् कहती है—

स पर्यगाच्छुक्रम कायम व्रण सस्नाविर शुद्धमपापविद्धं ।
कविर्मनीषी परिभू: स्वयं भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्य: समाभ्य: ॥
—ईश. ८

गीता के अनुसार :—
सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्त सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च ॥ १३-१२
श्रीमद् भागवत की उक्ति है :—
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन् ।
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥
—भागवत ७-९, ४८

ब्रह्म चाहे निर्गुण हो चाहे सगुण इतना तो निश्चित है कि वह सर्वव्यापी है। जब वह सर्वव्यापी है तो वह निराकार भी होगा ही क्योंकि आकार मे एकदेशीयता आ जाती है और जो सर्वदेशीय है वह केवल एकदेशीय नहीं हो सकता। इसी लिए जहाँ ब्रह्म के रूप की चर्चा की गई है वहाँ कोई विशिष्ट आकार न बताकर उसकी विश्वरूपता का ही वर्णन किया गया है। सर्वान्तर्यामी के रूप का इससे बढ़िया वर्णन और हो ही क्या सकता है। वेद कहते हैं :—

सहस्रशीर्षा: पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्र पात् ।
सभूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥
—ऋग्वेद का पुरुष सूक्त

उपनिषदों में कहा गया है—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यो
दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः
वायु. प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्या पृथिवी ह्येष सर्व भूतान्तरात्मा।

—मुण्डक २—१, ४

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
स बाहुभ्या धमति स पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक.॥

—श्वेताश्वेतर ३—३

गीता में भी इसी का प्रतिपादन किया गया है—

सर्वत. पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरो मुखं।
सर्वत. श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

—गीता १३—१३

श्रीमद्भागवत का कहना है—

एकायनऽसौ द्विफल स्त्रि-मूलश्चतुरस. पंचविधः षडात्मा।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदो द्विखगोह्यादि वृक्ष.॥

—भागवत १० पू०—२, २१

ब्रह्म की इस निराकारता अथवा विश्वरूपता को भगवद् विग्रह के व्यक्तित्व की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥

—गीता ७—२४

एक ही ब्रह्म के दो रूपों को कैसे स्वीकार किया गया ?

ब्रह्म के संबंध में सभी संत कवियों ने अपनी रचनाओं में प्राय. एक-सा विचार प्रकट किया है। संत, सूफी तथा भक्त आदि सभी कवियों ने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, निर्लेप, अगम, अगोचर कहा है। जो सर्वव्यापी, सर्वान्तरयामी तथा सृष्टिकर्ता है उसी से जड़ जगत् तथा चेतन जीव का जन्म हुआ। अंतर केवल इतना ही है कि संतों का ब्रह्म निर्गुण ही है उसमें गुणों का समावेश हो ही नहीं सकता। वह शून्य का प्रतीक है। राम भक्त तथा कृष्ण भक्त कवियों का ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी सगुण रूप धारण करता है :—

अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।

अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे ?
जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ।

—बालकाण्ड, पृ० १४७ कल्याण, मानस अङ्क

सूर तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने कृष्ण को जो कि उनके इष्टदेव है—पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम माना है जिनके सगुण निर्गुण दो रूप है। ब्रह्म का निर्गुण रूप अगम है अतः सगुण का आधार आवश्यक है। सूरदासजी के इस पद में—

अविगत गति कछु कहत न आवे ।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगतही भावे ।
परम स्वाद सब ही सु निरंतर अमित तोष उपजावे ।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने, जो पावे ।
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब कित धावे ।
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन पद गावे ॥

यहाँ निर्गुण के विचार को 'परम स्वाद' और 'अमित तोष' उत्पन्न करने वाला स्वीकार किया गया है पर वह तोष और वह स्वाद गूँगे के गुड़ की भाँति मन में ही आस्वाद्य और प्राप्य है। जो उसे पाता है वही जानता है औरों के लिए वह 'सब विधि अगम' है।

—'सूर सुषमा' पृष्ठ १,
सपादक . पं० नंददुलारे वाजपेयी ।

गीता कहती है :—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देववद्भिरवाप्यते ॥

जो देहवान् है उनसे अव्यक्त की उपासना कठिनाई से हो सकती है।

गो० तुलसीदास जी कहते है—

(१) अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।

—मानसाक, बालकांड, पृष्ठ ८०

(२) व्यापक एक ब्रह्म अविनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ।
अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

—मानसाक, बालकांड पृष्ठ ८०

(३) भरि लोचन बिलोकि अवधेसा, तब सुनिहौं निरगुन उपदेसा ।

तुलसी के राम ब्रह्म स्वरूप हैं। वे ही संसार के कर्त्ता है। यद्यपि तुलसी ने

उन्हें दशरथ सुत माना है किन्तु वे साधारण, लौकिक जीव नहीं। उनके राजसिंहासन के समय वेद उन्हीं को निर्गुण कह कर स्तुति करते हैं। वे पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए अवतार लेते हैं। परन्तु वस्तुतः वे निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप ही हैं।

मीरा के प्रभु हरि अविनाशी हैं किन्तु साथ ही वे सर्वगुणसम्पन्न मनोहर रूपधारी हैं। सिद्धांत रूप से इनके प्रभु निर्गुण ही है जो समस्त संसार में व्याप्त हैं किन्तु व्यवहार की दृष्टि से वे ठाकुर की मूर्ति में भी विद्यमान हैं तभी तो मीरा वृन्दावन के मंदिरों में कृष्ण के सम्मुख आत्म-विभोर होकर नृत्य करने लगती हैं। साथ ही साथ निर्गुण होने के कारण उनका मिलना कठिन है। फिर भी वह पंचरंग चोला पहनकर अपने प्रिय से झिरमिट में खेलने जाती हैं।

निर्गुण शब्द और उसके अर्थ का ऐतिहासिक विकास

श्रौत साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कहीं नहीं मिलता है। इसका कारण संभवतः यह है कि उस युग में सगुण और निर्गुणमूलक साम्प्रदायिकता का उदय नहीं हो पाया था।

निर्गुण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम महाभारत[1] और गीता में[2] मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों में यह शब्द 'गुण रहित' के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

गीता और महाभारत के पश्चात् इस शब्द का प्रयोग चूलिकोपनिषद्[3] में पाया जाता है। यहाँ पर वह निर्विशेष ब्रह्म तत्त्व के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

शंकराचार्य ने इस शब्द का प्रयोग कई बार किया है। वे उसे हृदयस्थ यौगिक ब्रह्म से विलक्षण सत्य संकल्पादि गुणों से विनिर्मुक्त आत्म तत्त्व का वाचक मानते थे।[4]

रामानुज और उनके मतानुयायियों ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है, किंतु उन लोगों ने इसका अर्थ शांकर मतावलम्बियों द्वारा किये गये अर्थ से भिन्न रूप में निर्धारित किया है। उनकी दृष्टि में वह जरा मरण आदि त्याज्य गुणों से रहित सगुण ब्रह्म का ही वाचक है।[5]

---

१. महाभारत शान्ति पर्व—३६६। २१-२८
२. 'असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च।' अध्याय १३-१४
३. 'स विशेषत्वे निर्गुणम्'—चूलिकोपनिषद। अध्याय-७ में
४. छन्दोग्योपनिषद्—'शांकर भाष्य' गीता प्रेस, ८०४-५
५. सर्व दर्शन संग्रह—संपादकः वासुदेव शास्त्री, १९५१, पूना।
(पृ० ११० पर निर्गुणवाद शब्द का प्रयोग और निर्गुण शब्द की व्याख्या)

रामानन्दी संप्रदाय के 'आनन्द भाष्य' में भी लगभग ऐसा ही अर्थ किया है। अन्य दर्शनाचार्यों ने भी इस शब्द के अर्थ को अपनी साम्प्रदायिक दृष्टि के अनुकूल बदलने की चेष्टा की थी।[१]

नाथ संप्रदाय में इस शब्द का प्रचुर प्रयोग मिलता है।[२] वे लोग अपने हृदयस्थ यौगिक ब्रह्म को अभिव्यक्ति प्रायः इसी शब्द के माध्यम से करते थे।

मध्यकालीन आचार्यों और नाथ पंथियों के द्वारा किये गये निर्गुण शब्द के प्रयोग से मध्ययुग के कुछ संत कवि इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे उसी को केन्द्र बनाकर अपनी विचारधारा प्रसारित करने लगे। वे लोग अपने इष्टदेव, अपनी साधना और अपने मत सबको निर्गुण कहते थे।

संत बुल्ला साहब ने अपने इष्टदेव को 'निर्गुण, दयाल, दानी'[३] कहा है। राम को वे निर्गुण शब्द का सार रूप मानते थे।[४]

संतों ने अपने इष्टदेव के प्रसंग में निर्गुण शब्द का प्रयोग अधिकतर 'द्वैताद्वैत विलक्षण परम तत्व रूपी हृदयस्थ यौगिक ब्रह्म' के अर्थ में किया है। यारी साहब अपने निर्गुण ब्रह्म को सुषुम्ना की शैया पर सोया हुआ बताते हैं, साथ ही उसे वे परमतत्व रूप भी मानते हैं। वे लिखते हैं—

'सुखमन सेज परम तत रहिया किया निर्गुण निरंकार।[५]

संतों ने प्रायः अपनी साधना को भी निर्गुण ही कहा है। उनकी साधना का प्रमुख अंग ध्यान है। उससे पहले निर्गुण शब्द का प्रयोग करते हुए संत जगजीवन साहब ने लिखा है—

'जगजीवन गुरु चरन परि के निरगुन धरि ध्यान।'[६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्यकालीन संतों के एक वर्ग में निर्गुणवाद का

---

१. 'आनन्द भाष्य'' १।१२ में लिखा है :
निर्गता निकृष्टा सत्वादयः प्राकृता गुणा यस्मात्तन्निर्गुणमिति
व्युत्पत्तेर्निकृष्ट गुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम्।

२. सिद्ध सिद्धांत पद्धति—संपादिका कल्याणी वोस, पृ० ७०
'निर्गुण च शिवं शान्तं शान्तं गगने विश्वतोमुखम्।
भ्रूमध्ये दृष्टिमादाय ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्॥

३. बुल्ला साहब की बानी—पृ० २६

४. बुल्ला साहब की बानी—पृ० १६ 'तुम तो राम हउ निर्गुन सार'

५. संत सुधा सार खण्ड २, पृ० ७३

६. संत बानी संग्रह भाग २, पृ० १३

बहुत अधिक प्रचार था। निर्गुण शब्द उनमें द्वैताद्वैत विलक्षण परमतत्त्व रूपी यौगिक ब्रह्म, यौगिक साधना और वेदांतिक विचारधारा के पारिभाषिक अर्थ में रूढ़ हो गया था।

निर्गुण काव्य

निर्गुण काव्यधारा का उदय रूढ़िवादी अंध विश्वास प्रधान धार्मिक संप्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। सच्चे निर्गुणिया कवि पंथ निर्माण की प्रवृत्ति को हेय समझते थे। ये लोग अलौकिक प्रतिभासंपन्न होते थे। सैकड़ों साधु संत उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो जाते थे।

निर्गुण संप्रदाय के अंतर्गत उन्ही संतों को लिया जाता है जिनका व्यक्तित्व किन्हीं विशेष विकृत विधि-विधानों, अंध विश्वासों और मिथ्याचारों से कलंकित नहीं हुआ है। इनमें भी उन्ही संतों के अध्ययन पर विशेष जोर दिया गया है जिनमें काव्यत्व का स्फुरण और मधुर रहस्य-भावना का उन्मेष पाया जाता है। इस दृष्टि से निम्न-लिखित कवि ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते है—

कबीर, धर्मदास, नानक, रैदास, दादू, रज्जब, सुंदरदास, गरीबदास, यारी साहब, बुल्ला साहब, जगजीवन साहब, गुलाल साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, दरिया साहब (बिहार वाले), मलूकदास, चरनदास, दयाबाई, सहजोबाई और तुलसी साहब।

सारग्राहिता इन संतों की प्राणभूत विशेषता थी। उन्होंने अपने समय की समस्त प्रचलित धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं, साधनाओं और साधु संप्रदायों के सारभूत तत्त्वों को 'अनुभो' के द्वारा आत्मसात करके तथा उन्हें अपनी प्रतिभा के सांचे में ढालकर एक अभिनव रूप दे दिया है, जो उनकी मौलिक देन है। वे सत्य के अनन्य उपासक थे। उन्हें झूठ और मिथ्यात्व से घृणा थी। यही कारण है कि उन्हें जहाँ कहीं भी मिथ्यात्व दिखाई पड़ा है वहाँ उन्होंने उसका डटकर विरोध किया है। सत्य के मंडन और अनृत के खंडन की उनकी यह प्रवृत्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

निर्गुणिया संत निर्गुणोपासक थे। उनमे निर्गुण शब्द का प्रयोग अधिकतर द्वैताद्वैत विलक्षण हृदयस्थ यौगिक ब्रह्म के लिए हुआ। कुछ स्थलों पर वह निर्विशेष ब्रह्म का वाचक बनकर भी आया है। निर्गुण शब्द के इन दोनों अर्थों की दो परम्पराएँ उन्हें पृष्ठभूमि के रूप में प्राप्त हुई थीं। प्रथम अर्थ की परम्परा उन्हें नाथ पंथियों से मिली थी। और दूसरे अर्थ की प्रेरणा का श्रेय अद्वैत वेदांतियों को है। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने प्रचलित साधनाओं में समन्वय स्थापित करने की भी चेष्टा की थी। यही

कारण है कि उनकी साधना में ज्ञान, भक्तियोग और वैराग्य के समन्वित रूप पर ही विशेष बल दिया गया है।

उन्होंने एक दूसरा सबसे बड़ा कार्य प्रचलित जटिल विचारधाराओं, साधनाओं और सांप्रदायिक आचारों के सहजीकरण का किया था। सहजीकरण की अपनी इस प्रवृत्ति के कारण वे मध्यकालीन संतों में अलग खड़े दिखलाई पड़ते हैं। बुद्धिवादिता, सदाचरणप्रियता, सामाजिक और आध्यात्मिक साम्यवाद, विचारात्मकता आदि उनकी अन्य प्रमुख उल्लेखनीय प्रवृतियाँ हैं। उनकी इन्ही विशेषताओं ने उन्हे एक सूत्र में बाँध रखा है। इसी लिए उनकी परम्परा अन्य संतों की परम्पराओं से विलक्षण और निर-पेक्ष दिखाई पड़ती है।

सगुण काव्य में पार्थक्य

मध्ययुग में वैष्णव साधना दो रूपों में विकसित हुई थी। निर्गुण और सगुण। निर्गुणोपासना पद्धति शुद्ध वैष्णव नहीं रह पाई। उस पर अपने युग की समस्त साध-नाओं और विचारधाराओं का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा। तंत्र मत, नाथ पंथ और निरंजन पंथ ने उसका स्वरूप ही बदल दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि वह वैष्णव होते हुए भी उससे बिलकुल भिन्न प्रतीत होने लगी।

सगुण और निर्गुण धाराओं का मौलिक भेद रूपोपासना से संबंधित है।[1]

निर्गुनिया संत हृदयस्थ द्वैताद्वैत विलक्षण अलख निरंजन निर्गुण ब्रह्म के उपा-सक थे। उनका यह निर्गुण ब्रह्म रूप और आकार से विहीन, पुष्प की गंध से भी सूक्ष्मतर और अनिर्वचनीय है।[2]

किन्तु यह वेदांतियों के ब्रह्म के सदृश शुष्क तत्त्व मात्र नहीं है। और न बौद्धों

---

१. 'मध्यकालीन धर्मसाधना' डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २३०
'दोनों में प्रधान भेद रूपोपासना के विषय में है। दूसरी श्रेणी के अर्थात् सगुण मार्गी भक्त ठोस रूप के उपासक हैं।'
सूरदास कहते है—

सुंदर मुख की बलि बलि जाऊँ।
लावण्य निधि, गुन निधि, शोभा निधि॥

२. कबीर ग्रंथावली

जाके मुँह माथा नहीं, नाही रूप और अरूप।
पुहुप वास से पातरा, ऐसा रूप अनूप।

का शून्य ही है। यह सूक्ष्मतर और अनिर्वचनीय होते हुए भी करुणामय, गरीबनिवाज और भक्तवत्सल है।

भक्तो के भगवान की इन विशेषताओ से विशिष्ट होने पर भी वह उसे उससे सर्वथा भिन्न है। भक्तो के भगवान 'बाहिरजामी' किन्तु इनके राम 'अंतरजामी' है। अतरजामी होते हुए भी वे भक्तो को दर्शन देते है। उनका यह रूप अनिर्वचनीय होता है।[1]

यदि भक्त किसी प्रकार उसका वर्णन करने का प्रयास भी करे तो उसको कोई समझ नही सकता। यदि थोड़ा बहुत समझने लगे तो उस पर उसे विश्वास नही होता।[2]

इस प्रकार हम देखते है कि संतो का निर्गुण उपास्य रूपवान और अरूप होते हुए भी दोनो से विलक्षण है। इसके विपरीत सगुणवादियो का उपास्य मानवो के बीच में उन्ही के रूप में प्रतिष्ठित रहता है।

मानव जीवन की संपूर्ण शक्ति, सारा सौंदर्य और समस्त शील का पूर्ण आविर्भाव उन्ही मे मिलता है। यही कारण है कि एक का उपास्य केवल अनुभूति और साधना-गम्य मात्र होने के कारण रहस्यपूर्ण है और दूसरे का प्रत्यक्ष होने के कारण प्रेम और श्रद्धा का पात्र है।

भगवान का प्रथम रूप केवल बुद्धिवादी साधको को ही आकृष्ट कर पाता है जब कि उनका दूसरा रूप संपूर्ण सृष्टि को तन्मय और रसमग्न रखने की क्षमता रखता है। उपास्य रूप सम्बन्धी इस अंतर ने निर्गुण और सगुण काव्य धाराओं को बिलकुल अलग कर रखा है।

निर्गुण और सगुणवादी कवियो मे स्वभावगत भेद भी दिखाई पड़ता है। निर्गुणवादी अधिकतर क्रांतिदर्शी, सत्यान्वेषी, अक्खड़, फक्कड़ और घुमक्कड़ होते थे। उनके व्यक्तित्व की ये विशेषताएँ उनकी रचनाओ मे स्पष्ट प्रतिबिंबित मिलती हैं।

इसके विपरीत सगुणवादी कवि अधिकतर सामंजस्यवादी, रूढ़िवादी, सत्यवादी प्रेमी जीव होते थे। उनके व्यक्तित्व की इन विशेषताओ ने उनकी रचनाओ को निर्गुणिया कवियो की रचनाओ की अपेक्षा अधिक कोमल, रागरंजित और मधुर बना दिया है। निर्गुण काव्यधारा सगुण काव्यधारा से इस दृष्टि से भी भिन्न है।

---

१. कबीर ग्रन्थावली पृ० १५

कबीर देखा एक अंग महिमा कही न जाई।

२. कबीर ग्रन्थावली पृ० १७

दीठा है तो कस कहू, कह्या न कोइ पतियाइ।

निर्गुण एवं सगुण कवियों में हमें रस सम्बन्धी अंतर भी दिखलाई पड़ता है। निर्गुण काव्यधारा भक्ति, शांत और वीर इसकी वह त्रिवेणी है जिसमें अवगाहन कर मानव जाति अपने युग-युग के कालुष्य धो सकती है।

इसके विपरीत सगुण काव्यधारा में हमें शृङ्गार और भक्ति के मधुमय सुहाग से उद्भूत माधुर्य भाव रूपी शिशु की रसमयी लीलाओ का वैभव मिलता है।

एक धारा पतितपावनी है और दूसरी आनन्दविधायिनी। यही दोनों में अंतर है।

इसके अतिरिक्त दोनो धाराओ में प्रवृत्तिगत भेद भी दिखाई पड़ता है। निर्गुण काव्यधारा भूमि बुद्धिवादिता और विचारात्मकता है। इसके विपरीत सगुण काव्यधारा परम भाव-प्रवण, श्रद्धामूलक और अनुभूति प्रधान है।

दोनो धाराओ में साधना और सिद्धि सम्बन्धी अंतर भी है। निर्गुण काव्यधारा का सम्बन्ध जीवन के साधना पक्ष से है जब कि सगुण काव्यधारा में जीवन के सिद्धि पक्ष की झाँकी सजाई गई है।

एक में उन समस्त साधनों और प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है जिससे आनन्द ब्रह्म की उपलब्धि हो सकती है। दूसरे में स्वयं आनन्द रूप ब्रह्म का ही वर्णन किया गया है।

सगुण कवियो का लक्ष्य भगवान के सगुण, साकार, आनन्दमय रूप की झाँकी का उद्घाटन करना था। इसके विपरीत निर्गुण कवियो का उद्देश्य अपने हृदयस्थ 'सुनि मंडलवासी पुरुष' की रहस्यानुभूति करना था। सगुण एवं निर्गुण धारा के इन भेदो ने ही एक दूसरे को परस्पर अलग कर रखा है।

निर्गुण काव्यधारा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

ऐतिहासिक स्थिति से तात्पर्य निर्गुण काव्यधारा के काल सम्बन्धी सीमा और विस्तार के निर्णय से है। निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख प्रवर्तक संत कबीर माने जाते हैं। किंतु सच्ची बात यह है कि निर्गुण काव्यधारा का बीजारोपण नामदेव, जयदेव, त्रिलोचन, सदन, बेनी, रामानन्द, धन्ना, पीपा, सेन आदि संत कबीर से पहले ही कर चुके थे। कबीर ने उसे व्यवस्थित रूप देकर विकसित, प्रचारित और प्रसारित किया था। भक्ति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित उक्ति प्रसिद्ध है :—

> भक्ति द्राविड़ उपजी लाये रामानन्द।
> परगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नवखंड॥

यदि इस उक्ति में कोई सार है तो निर्गुण काव्यधारा का उदय १४ वो शताब्दी से मानना पड़ेगा। डॉ० गोविंद त्रिगुणायत को तो यह उक्ति विशेष रूप से सारगर्भित

प्रतीत होती है। उनके अनुसार निर्गुण काव्यधारा का उदय १४ वी शताब्दी से मानना ही ठीक है।[1]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी का भी यही मत है।[2]

निर्गुण काव्यधारा की अंतिम सीमा निश्चित करना थोड़ा कठिन मालूम होता है क्योंकि निर्गुणिया संतो की परम्परा भारत में आज भी जीवित है। विविध पंथो के रूप में नही अपितु उनको जैसी प्रवृत्ति वाले साधु संतो के रूप में भी। किन्तु संत तुलसी साहब के बाद के संतो में कोई ऐसा अलौकिक प्रतिभासंपन्न संत नही हुआ जिसकी वाणी में सरस काव्य का उन्मेष हो। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि संत तुलसी साहब के बाद यह धारा केवल नाम मात्र को ही शेष रह गई थी। संत तुलसी साहब के काल के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् उनका काल १८१७ विक्रमी से लेकर १८९९ विक्रमी तक मानते है और कुछ १८२० से लेकर १९०० विक्रमी तक निश्चित करते है। इस संदर्भ में डॉ० गोविंद त्रिगुणायत का मत समीचीन जान पड़ता है।[3]

सिद्ध संप्रदाय (सिद्धों की परंपरा) : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

उपनिषदों में कर्मकाण्ड के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया मिलती है वह अन्तर्धारा के रूप में (अप्रत्यक्ष रूप में) ही। उसका प्रत्यक्ष रूप में खण्डन और विरोध तो बौद्ध धर्म ने ही किया। बौद्ध निरीश्वरवादी थे। सदाचार, अहिंसा, आत्मविश्वास, समाधि, शील और प्रज्ञा आदि ही बौद्ध धर्म के वे अनमोल रत्न हैं जिनके द्वारा 'निर्वाण' की प्राप्ति हो सकती है। कालांतर में बौद्ध धर्म दो भागो में बँट गया—हीनयान और महायान। आगे चलकर महायान के भी कई टुकड़े हो गये। वज्रयान और सहजयान इसके अंतिम टुकड़े हैं। इसमें कष्टपूर्ण व्रतसंयम आदि की कोई गुंजाइश नही रह गई।

बौध धर्म में कालांतर में अनाचार का प्रवेश हो गया। लेकिन इस देश से इस धर्म का निष्कासन प्रधानतः शंकर, कुमारिल तथा उदयन आदि वेदांतिक और मीमांसक

---

१. हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि, पृ० १४।
२. मध्यकालीन धर्मसाधना, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ९५।
३. 'तुलसी साहब की स्थिति के सम्बन्ध में हम उपर्युक्त दोनो मतो में से चाहे किसी को स्वीकार करें, पर उनको अंतिम तिथि के सम्बन्ध में कोई विशेष मतभेद नही है। इस आधार पर हम निर्गुण काव्य धारा की अंतिम अवधि १९ वी शताब्दी का अंतिम वर्ष मान सकते है।'
—'हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि' पृ० १४।

आचार्यों द्वारा ही हुआ। उत्तरी भारत में हर्षवर्धन तक इसे फलने-फूलने के लिए राजकीय सहारा मिला। बिंबसार, अशोक, कनिष्क आदि राजाओं से इसे पर्याप्त सहारा मिला। हर्षवर्धन के पश्चात् राजकीय सहायता न मिलने के कारण बौद्ध संन्यासियों को उन जगहों में जाना पड़ा जहाँ वे निम्न स्तर के लोगों के बीच अपने नानाविध चमत्कार दिखाकर कुछ अर्जित कर सकने में समर्थ हो सकते। फलस्वरूप उनमें उच्च एवं शिष्ट मानसिक एवं नैतिक प्रेरणाओं का अभाव बढ़ने लगा और वे जादू टोनों, तंत्रों-मंत्रों की ओर अत्यंत वेग से मुड़ गये। मंत्रयान का ही अग्रिम विकास वज्रयान की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। दोनों में अन्तर बहुत ही कम है। सौम्य अवस्था का नाम मंत्रयान और उग्र रूप की संज्ञा वज्रयान। महात्मा बुद्ध ने तो मंत्र तंत्र तथा जादू-टोनों को 'मिथ्या जीव' (Bad living) कहकर तिरस्कृत ही किया। किन्तु आगे चलकर उन्हीं के अनुयायियों ने इन्हें निर्वाण-प्राप्ति का एक प्रमुख अंग ही मान लिया और बुद्ध के मानव व्यक्तित्व के तिरस्कार ने उन्हें मानव लोक से ऊपर उठाकर दिव्य लोक में पहुँचा दिया। थोड़े बड़े मंत्रों की रचना होने लगी। इनके साथ ही हठयोग की जटिल विधियाँ भी इन लोगों ने अपनाईं। इस प्रकार इन सिद्धों ने भोली-भाली जनता का विश्वास अर्जित किया। मंत्र, मैथुन तथा हठयोग मन्त्रयान के तीन प्रमुख तत्त्व मान लिए गये।

राहुलजी के अनुसार इन संप्रदायों का उद्भव-स्थान दक्षिण का श्री पर्वत और धान्य कटक (गुंटूर, जिला मद्रास) था। वज्रयानी सिद्धों ने मंत्र के उपर्युक्त तत्त्वों के साथ मद्य और माँस को भी शामिल कर पंच तत्त्वों को 'पंच मकार' को अपनी सहज साधना का अंग बनाया।

धर्म के नाम पर तो अनाचार का समावेश हुआ ही साथ ही हठ्योग की प्रक्रियाएँ भी इनकी साधना का मुख्य अंग बनीं। इसके परिणामस्वरूप घट के भीतर चक्र, नाड़ी, शून्य देश आदि की कल्पना करके नाद, बिंदु, सुरति, निरति आदि पारिभाषिक शब्दों के सहारे अन्तस्साधना का विधान किया गया। इसके कारण वे अपने को रहस्यदर्शी करार देने लगे और रहस्यमय भाषा में ही पहेलियाँ कह कर लोगों को आश्चर्य चकित करने लगे।

नाथ पंथ

नाथ पंथ का मूल बौद्धों की यही वज्रयान शाखा है। चौरासी सिद्धों में गोरखनाथ (गोरक्ष पा) भी गिन लिए गये हैं। पर यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपना मार्ग अलग कर लिया। योगियों की इस हिन्दू शाखा ने वज्रयानियों के अश्लील और बीभत्स विधानों से अपने को अलग रखा। गोरख ने पतंजलि के उच्च लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया। वज्रयानी सिद्धों का लीला क्षेत्र भारत का पूरबी भाग

था। गोरख ने अपने पंथ का प्रचार देश के पश्चिमी भागो मे—राजपूताने और पंजाब में किया।

गोरखनाथ का समय

गोरखनाथ का काल निर्णय करते समय विद्वानों के बीच परस्पर मतभेद हो जाता है। स्मसाम्यत: इस सम्बन्ध में चार मत मिलते है—

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत, जिसमे डॉ० रामकुमार वर्मा और डॉ० धर्मेंद्र शास्त्री भी सहमत हैं—गोरख का समय १३ वी शती का मानता है।[1]
२. डॉ० श्याम सुन्दरदास का मत जो गोरख को १४ वी शती का मानता है।[2]
३. पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी और स्व० डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का मत जो गोरख को १० वी शताब्दी का मानता है।[3]
४. श्री राहुलजी का मत जो गोरख को १० वी शती के अंतिम चरण का मानता है।[4]

ज्ञानदेव की परंपरा

गोरख को १३ वी शती का सम-सामयिक मानने के लिए सबसे बड़ा और सबल प्रमाण ज्ञानदेव बतलाई वह नाथ परम्परा की सूची है जिसमें उन्होने अपने को नाथ परम्परा में मानते हुए अपने पूर्व के नाथो की एक सूची दी है। वह सूची इस प्रकार है।[5]

आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, गैनीनाथ, निवृत्तिनाथ और ज्ञानदेव।

ज्ञानदेव महाराष्ट्र के संत थे जो अलाउद्दीन (समय संवत् १३५८) के समकालीन थे। उपरिलिखित महाराष्ट्र परम्परा के अनुसार गोरखनाथ का समय महाराज पृथ्वीराज के पीछे आता है।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १६।
२. हिन्दी साहित्य, पृ० ६०।
३. नाथ संप्रदाय : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ९६।
४. 'गोरख सिद्धांत संग्रह', पृ० ४०।
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८।

जिस प्रकार सिद्धों की सख्या चौरासी प्रसिद्ध है उसी प्रकार नाथों की संख्या नौ। नाथ पंथ सिद्धों की परम्परा से छँटकर निकला है, इसमें कोई संदेह नहीं।

श्री विनयकुमार के अनुसार गोरख दसवों शती के अंतिम चरण और ग्यारहवी शती के प्रारम्भ के सम-सामयिक थे।[1]

गोरखनाथ की हठयोग-साधना ईश्वरवाद को लेकर चली थी। अतः उसमें मुसलमानों के लिए भी आकर्षण था। ईश्वर से मिलाने वाला योग, हिंदुओ और मुसलमानों दोनों के लिये एक सामान्य साधना के रूप में आगे रखा जा सकता है, यह बात गोरखनाथ को दिखाई दी थी। उसमें मुसलमानों को अप्रिय मूर्तिपूजा और बहुदेवोपासना की आवश्यकता न थी। अतः उन्होने दोनों के विद्वेष भाव को दूर करके साधना का एक सामान्य मार्ग निकालने की संभावना समझी थी और वे उसका संस्कार अपनी शिष्य परम्परा में छोड़ गये।

नाथ संप्रदाय के सिद्धान्त ग्रन्थों में ईश्वरोपासना के *बाह्य विधानों* के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है। घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। वेद शास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गये हैं।

'नाद,' 'बिंदु' आदि संज्ञाएँ वज्रयानी सिद्धों में बराबर चलती रही हैं। गोरख सिद्धांत में उनकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—

नाथांशो नादो, नादांशः प्राणः।
शक्त्यंशो बिन्दु, बिन्दोरंशः शरीरम्॥

गोरक्ष सिद्धांत संग्रह
(गोपीनाथ कविराज संपादित)

'नाद' और 'बिंदु' के योग से जगत् की उत्पत्ति सिद्ध और हठयोग दोनो मानते थे।

---

१. 'जहाँ तक गोरख के आविर्भाव काल का सवाल है हम ज्ञानदेव की सूची का उल्टा सीधा अर्थ लगा कर उन्हे १३ वी सदी तक खीच लाने के पक्षपाती नही हैं। उपरि लिखित 'रत्नाकर जोयम कथा' 'विमुक्त मंजरी' और 'गोरक्ष सिद्धांत संग्रह' जैसे प्रामाणिक ग्रन्थो में—जो राहुलजी के अनुसार भूटान में रहने के कारण सदियो के हेर-फेर से बचे रहे—सहसा अविश्वास भी नही किया जा सकता। इस तरह हमारा दृढ़ विश्वास है कि गोरख दसवी शती के अंतिम चरण और ग्यारहवी के प्रारम्भ के समसामयिक थे।'

'साहित्य संदेश' अंक १२, मार्च १९४५, पृ० ३६५।

नाथ संप्रदाय जब फैला तब उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आए जो शास्त्र सपन्न न थे, जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था।[1]

निर्गुण उपासना का विकास कैसे हुआ ?

मध्यकाल में उत्तरी भारत में बौद्ध तांत्रिकों का प्रभुत्व था[2] इस भू-भाग के कोने-कोने में बौद्ध तांत्रिकों की साधना फैली हुई थी। इन बौद्ध तांत्रिकों ने सामान्य जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। निर्गुनिया संत इसी सामान्य जनता से संबंधित थे। यही कारण है कि उन पर बौद्ध तंत्रों का प्रभाव दिखाई देता है।

मंत्रयान

बौद्ध तंत्र मतों का उदय महायान और उसकी शाखाओं एवं उपशाखाओं में हुआ। यों तो तंत्र मत की हल्की झलक प्राचीन[3] बौद्ध साहित्य में भी मिलती है किंतु तंत्र मत का उदय महायान की मंत्रयान शाखा से स्पष्ट दिखाई दिया। इस मंत्रयान में तन्त्र, मन्त्र तथा मुद्रा, मंडल आदि को विशेष महत्त्व दिया गया है।[4] इस संप्रदाय का सबसे प्रथम ग्रन्थ 'मंजुश्री मूल कल्प' माना जा सकता है। इसका रचना काल प्रथम या दूसरी शताब्दी ई० माना जाता है।[5]

इससे स्पष्ट है कि मंत्रयान का उदय दूसरी शताब्दी के आसपास हो चला था। किंतु मंत्रों के गूढ़ रहस्यों का प्रचार साधारण जनता में न हो सका। परिणाम यह हुआ कि मंत्रयान को अपनी वेशभूषा बदलनी पड़ी और उसे उन सामान्य जादूटोना, जंत्र मंत्र तथा यौनमूलक यौगिक साधना अपनानी पड़ी। इन लोगों ने इन पूर्व प्रचलित जादू टोने, यौनयौगिक प्रक्रियाओं आदि को बौद्धिक विचारधारा से अनुप्राणित करके प्रस्तुत करने का प्रयास किया। मंत्रयान का यह नया रूप ही वज्रयान कहलाया।[6]

---

1 'The system of mystic culture introduced by Gorakhnath does not seem to have spread widely through the educated classes.'
—गोपीनाथ कविराज और भ्र
(सरस्वती भवन स्टडीज)

2. Introduction to Budhist Esoterism, p 166.
३. बौद्ध दर्शन मीमांसा—डॉ० बलदेव उपाध्याय, पृ० ४२५।
4. Introduction to Tantrik Budhism : —Das Gupta. p 69.
५. साधना माला–भाग २ (भूमिका)
६. बौद्ध दर्शन मीमांसा —डॉ० बलदेव उपाध्याय, पृ० ४२८।

वज्रयान मंत्रयान का विकसित और परिवर्धित रूप माना जाता है। वज्र का अर्थ है शून्यता। वज्रयान में सब कुछ पूर्ण शून्य रूप माना जाता है। इस बात को डॉ० एस० बी० दासगुप्ता ने अपने 'तान्त्रिक बुद्धिज्म' में स्पष्ट किया है।

निर्गुणिया कवियों पर बौद्ध तांत्रिकों का ऋण

बौद्ध तांत्रिकों से संतो का सीधा संबंध था। यही कारण है कि वे लोग उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।[1]

वेदांत दर्शन की भाँति बौद्ध तांत्रिक लोग तत्त्व की अनुभवगम्यता में ही विशेष विश्वास करते थे। कोई आश्चर्य नहीं कि संतो को इस दिशा में भी प्रेरणा मिली हो। उन्हीं से प्रभावित होकर उन्होंने तर्क का विरोध और अनुभव का महत्त्व प्रतिपादित किया है। यही नहीं उन्होंने बौद्ध तांत्रिकों के अनुकरण पर पट् शास्त्रादि की भी निंदा की है। संत सुन्दरदास[2] कहते हैं—

सुन्दर कहत पट शास्त्र माही भयो वाद।
जाके अनुभव ज्ञान वाद में न बह्यो है···

संतो ने वेद शास्त्र की जी खोलकर निंदा की है। संत दरिया[3] 'वेद कतेब' को बंधन रूप मानते थे। कबीर ने कहा है—

वेद किताब कहो मत झूठा, झूठा जो न विचारे।

संत मलूकदास[4] ने तो यहाँ तक लिखा है कि वेद शास्त्र पढ़कर पंडित भी भ्रम में पड़ गये हैं :—

वेद पढ़ पढ़ पंडित भूले।

---

१. 'बौद्ध तांत्रिको की तत्त्व की अनुभवगम्यता, धर्म ग्रन्थों की अमान्यता, तत्त्व का वाच्यावाच्य परे होना, सहज तत्त्व की स्वरूप धारणा, सहजावस्था की धारणा, शून्यवाद, अभिव्यक्ति विलक्षणता, नाद बिंदु साधना, कल्पनावाद, खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति, साधनों में काम या राग का महत्त्व, काया शोधन, गुरुवाद एव योग साधना आदि बातों ने संतो को पूरी पूरी प्रेरणा प्रदान की थी। उनकी बानियों पर इन सब का प्रभाव परिलक्षित होता है।'

—'हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि' पृ० २६२।

२. संत बानी संग्रह, पृ० १११।

३. वेद कतेब दोई फंद रचिया पंछी जित संसार।

—संत दरिया बिहार वाले के चुने हुए पद, पृ० ४५।

४. मलूकदास की बानी, पृ० ४।

सहजयान की सहज तत्त्व धारणा ने भी संतों को प्रभावित किया है। उन्होंने सहज के भी तत्त्व को सहज रूप में मानते हैं। दादू लिखते हैं—"मैंने परमात्मा का सहज रूप देखा है। वह परम तेजमय है। उसमें मेरा मन सरलता से रम जाता है।"[1] इसे संतों ने द्वैताद्वैत विलक्षण भी कहा है।[2]

बौद्ध तान्त्रिकों के शून्यवाद का ऋण भी संतों पर है। वज्रयान में सब कुछ पूर्ण शून्य रूप ही माना गया है। वज्रयान के इस सिद्धांत की व्यंजना करते हुए दादू ने लिखा है कि चेतन जीव शून्य से आया और शून्य में ही लय होगा। अतः उसी शून्य का ध्यान करना चाहिए।[3] सहजयान के चार शून्यों की धारणा भी संतों को अपने ढंग पर मान्य थी। उनकी ओर संकेत करते हुए संत दादू लिखते हैं—तीन शून्य तो नाम रूप से संबंधित है। चौथा शून्य ही निर्गुण रूप होने से सहज कहलाता है। वह सर्वव्यापी है।[4]

तत्त्व के सहज और शून्य रूप होने के कारण ही संतों ने उसे अनिर्वचनीय और वाच्यावाच्य परे कहा है। संत दादू कहते हैं, 'जो कुछ नहीं है अर्थात् सहज शून्य रूप है वह अनिर्वचनीय है। उसको नाम रूप देकर वाणी के बंधन में बाँधकर लोग भ्रमित हो रहे हैं।[5]

बौद्ध तांत्रिकों का कल्पनावाद जो विज्ञानवाद का ही रूपांतर है, बहुत प्रसिद्ध है। संतों के कल्पनावाद को इनके कल्पनावाद से प्रेरणा मिली होगी। संभवतः उसी से

---

१ अविनासी अंग तेज का, ऐसा तत्त्व अनूप।
सो हम देख्या नैन भरि सुन्दर सहज स्वरूप॥
परम तेज परगट भया तहँ मन रह्या समाइ।
दादू खेले पीव सौं नहिं आवै नहिं जाय॥
—दादू बानी भाग १, पृ० ५५।

२ निर्गुन सगुन दुहुन ते न्यारा, संत स्वरूप ओहि विमल विचारा।
—द० सागर, पृ० ५४।

३ शून्य हि मारग आइया, शून्य हि मारग जाय।
चेतन पैंडा सुरति का दादू रहु ल्यौ लाय॥
—'नै को अंग' सं० संत सुधासार, पृ० ३८३।

४ तीन शून्य आकार की चौथा निर्गुण नाम।
सहज शून्य में रमि रहा जहँ तहँ सब ठाम॥
—दादू बानी, भाग १, पृ० ८०।

५ कुछ नाहीं का नाव धर भरमा सब संसार।
—दादू बानी भाग १, पृ० १४८।

प्रेरित होकर संत दरिया ने मन को कर्ता विष्णु रूप कहा है।[१]

संत सुन्दरदास ने कल्पनावाद के सिद्धांत की अभिव्यक्ति और अधिक स्पष्ट शब्दों में की है। वे लिखते हैं 'मन के भ्रम से ही यह संसार उत्पन्न होता है और उस भ्रम से निराकृत हो जाने पर उसका लय हो जाता है।[२]

बौद्ध तान्त्रिकों की खंडन-मडन की प्रवृति ने संतो को प्रतिक्रियात्मक प्रेरणा प्रदान की थी। संभवत: उन्ही से प्रेरित होकर उन्होंने समस्त मिथ्याचारों और आडंबरों का डटकर विरोध किया है। उदाहरण के लिये हम मूर्तिपूजा का खंडन ले सकते है। संत दादू लिखते हैं—'जो लोग कंकड़ पत्थर की सेवा करते हैं वे अपना मूल भी गँवा बैठते है।[३]

काया शोधन बौद्ध तान्त्रिको की साधना का प्राण-भूत सिद्धांत है। संत दरिया ने स्पष्ट लिखा है कि अविगत ज्योति के दर्शन तभी होते हैं जब साधक काया शोधन में सफल होता है।[४]

संतो के गुरुवाद को बौद्ध तांन्त्रिको से प्रेरणा मिली होगी। सदगुरु के मिलने से ही भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है।[५]

बौद्ध तंत्रो में काम या राग के सदुपयोग पर विशेष बल दिया गया है। उनकी धारणा है कि काम को यदि सत्पथ पर प्रेरित कर दिया जाय तो वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। काम साधना से मुक्ति और भुक्ति दोनो की प्राप्ति होती है। संत इस सिद्धांत से भी पूर्णतया परिचित थे। संत मलूकदास ने एक स्थल पर इसी सिद्धांत की व्यंजना करते हुए लिखा है :—

---

१. यह मन कर्ता विश्नु रूप कहावै। —दरिया सागर, पृ० ६१।

२. मन ही के भ्रम ते जगत यह देखियत
मन ही के भ्रम गये जगत यह बिलात है।
—सुन्दर विलास, पृ० १२२।

३. जिनि कंकड़ पत्थर सेविया सो अपना मूल गवाई।
—दादू बानी, भाग १, पृ० १४७।

४. काया परचै मूल जब पावै, अविगत ज्योति दृष्टि में आवै ॥
—दरिया सागर, पृ० १४०।

५. सद्गुरु मिले तो पाइये,
भुगति मुकति भंडार।
—दादू बानी भाग १, पृ० ६।

'काम राम से मिला सकता है, यदि इस पर विजय प्राप्त करके उसका सत्य पर नियोजन किया जाय।'[1]

बौद्ध तान्त्रिकों ने साधना के क्षेत्र में नाद, बिंदु और योग की साधनाओं को महत्त्व दिया है। संतों की साधना के भी ये प्रतिष्ठित तत्त्व थे। इससे प्रकट होता है कि वे लोग बौद्ध तान्त्रिकों से इस दृष्टि से भी प्रभावित हुए हैं।

बौद्ध तान्त्रिकों ने सिद्धांतों की गुह्यता पर हिंदू तान्त्रिकों के सदृश ही बल दिया है। अपने सिद्धांतों को गुह्य बनाने की कामना से ही उन्हें अपनी अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक बनानी पड़ी है। उनकी अभिव्यक्ति शैली से संत लोग अनेकधा प्रभावित हुए थे। सच तो यह है कि संतों की अभिव्यक्ति में प्राण प्रदान करने का श्रेय बौद्ध तान्त्रिकों को ही है। कहीं कहीं तो उन्होंने उनके शब्दों यहाँ तक कि वाक्यों तक को दोहराया है।[2]

सरहपा की भी इसी प्रकार की एक साखी है।[3]

उपर्युक्त साखियों से एक बात और स्पष्ट प्रकट होती है कि संत लोग सिद्धों की रहस्य साधना से भी बहुत अधिक प्रभावित हुए थे। सच तो यह है कि संतों का रहस्यवाद सिद्धों के रहस्यवाद का ही अभिनव रूपांतर है, जिसके प्रधान स्तंभ उपनिषद् और सूफी मत है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संतों पर बौद्ध तान्त्रिकों का भी बहुत बड़ा प्रभाव है।

हिंदी काव्य तथा नाथ सम्प्रदाय

मध्यकालीन धर्म साधनाओं में नाथ पंथ बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस पंथ के मूल प्रवर्तक आदिनाथ या भगवान शिव माने जाते हैं।[4] मध्ययुग में इसे प्राण प्रदान करने का श्रेय गोरखनाथ और उनके गुरु मत्स्येंद्रनाथ को है। मध्ययुग में यह मत विविध नामों से प्रसिद्ध था, जिनमें सिद्ध मत, योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत सम्प्रदाय,

---

१. काम मिलावे राम से जो राखै यह जीत।
दास मलूका यो कहै जो आवै प्रतीत॥

—मलूकदास की बानी, पृ० ४०।

२ जिहि बन सिंह न संचरे चील उडे नहि जाय।
रैन दिवसा का गम नही तहाँ कबीर रहा ल्यो लाय॥

३ जहि मन पवन न संचरै रवि ससि नहि प्रवेश।
तहि बट चित विसास करन सरहे कहिअ उवेस॥

—'हिंदी साहित्य की भूमिका'—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०३६ से उद्धृत।

४. नाथ सम्प्रदाय, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १।

गोरखनाथी संप्रदाय, मत्स्येंद्रनाथी संप्रदाय आदि नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। इस मत के अनुयायी योगी, कनफटा, दर्शनी आदि नामों से पुकारे जाते हैं।[१]

नाथ पंथ के इतिहास में मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ के नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इसका कारण यह है कि दोनों ही नाथ पंथ की दो भिन्न-भिन्न धाराओं के प्रवर्तक थे। प्रोफेसर बाग्ची[२] का मत है कि मत्स्येंद्र ने योगिनी कौल मार्ग नामक नाथ पंथी धारा का प्रवर्तन किया था। गोरखनाथ ने नाथ पथ में हठयोग को विशेष महत्त्व दिया था। इसीलिए उनका साधना मार्ग गोरखनाथी हठयोग के नाम से प्रसिद्ध है। आजकल गोरखनाथ के मत को ही सामान्यत. नाथ पंथ के नाम से अभिहित किया जाता है। निर्गुणिया संतो को नाथ पंथ की उपर्युक्त दोनों ही धाराओं ने प्रभावित किया था। इन दोनों आधारशिलाओं पर ही संत मत का भवन खड़ा हुआ है।

मत्स्येंद्रनाथ ने संत मत के लिये पूरी पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। यदि हम दोनों मतों की तुलना करें तो हमें निश्चय हो जायगा कि निर्गुण काव्यधारा की सच्ची पृष्ठभूमि मत्स्येंद्रनाथ का योगिनी कौल मार्ग ही है। उसकी दार्शनिक विचारधारा, उसका साधना क्रम और उसके पारिभाषिक शब्द संत कवियों में ज्यों के त्यों उपलब्ध होते हैं।

नाथ शब्द की व्याख्या के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। डॉ० गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार यह संप्रदाय स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ था। हिंदू, शैव, शाक्त तंत्रों, बौद्ध तंत्रों, शैव दर्शन और योग साधना आदि विविध धर्म और साधना पद्धतियों ने मिलकर इसकी प्राण प्रतिष्ठा की थी। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि नाथ संप्रदाय मध्यकाल की सामान्य जनता में प्रचलित सभी साधना और धर्म पद्धतियों का एक अभिनव समन्वित स्वरूप है। अपने समय की समस्त विचार धाराओं और साधनाओं के सुंदर तत्त्वों को स्वायत्त करने की प्रवृत्ति निर्गुण संप्रदाय में भी थी। डॉ० गोविंद त्रिगुणायत नाथपंथ तथा निर्गुण संप्रदाय का घनिष्ठ संबंध बताते हैं।[३]

---

१. *गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज* —ब्रिग्ज, पृ० १ (१९३८)।

२. कौल ज्ञान निर्णय—डॉ० प्रबोधचंद्र बाग्ची संपादित भूमिका, पृ० ३५।

३. 'यही कारण है कि निर्गुण संप्रदाय की प्रवृत्ति साम्य के कारण नाथ पंथ के अत्यधिक समीप है। हमारी अपनी दृढ़ धारणा है कि नाथपंथ और निर्गुण संप्रदाय में पिता-पुत्र का संबंध है। नाथ संप्रदाय को अच्छी तरह से समझे बिना संतो का निर्गुण संप्रदाय किसी प्रकार भी समझा नहीं जा सकता।'
—हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २६७।

निर्गुण काव्यधारा पर मत्स्येंद्रनाथी धारा के प्रभाव

संतों को नाथ पंथ की मत्स्येंद्रनाथी धारा से पर्याप्त प्रेरणा मिली थी। उनको इन साधनाओं की एक क्रमबद्ध परंपरा प्राप्त हुई थी। मत्स्येंद्र नाथ के अनुकरण पर ही संतों ने उन्मनी अवस्था, सहजावस्था आदि के वर्णन भी किये हैं। उन्मनी अवस्था का वर्णन करते हुए दादू लिखते हैं कि उन्मनी अवस्था ही सहजावस्था होती है। वह परमात्मा ही सहज स्वरूप, सर्वव्यापी और तेज रूपी है।[१]

मत्स्येंद्रनाथियों की मन की साधना को संतों ने अपना प्रमुख सिद्धांत अभिव्यंजित किया है। संत दरिया साहब लिखते हैं कि मन के कारण ही संसार भ्रम में फँसा हुआ है। जो मन के रहस्य को जान लेता है वह बुद्धिमान है।[२]

दादू ने भी लिखा है—मन कालुष्य को जन्म देने वाला है। वही कालुष्य का प्रक्षालन कर सकता है अतः उसी की साधना करनी चाहिए।[३]

अपने पूर्ववर्ती तांत्रिक साधकों की भाँति मत्स्येंद्रनाथी साधक लोग भी बाह्याचारों के विध्वंसक थे। संतों ने उसी परंपरा का अनुकरण किया था। मत्स्येंद्रनाथी से निरंजन योगियों की परंपरा मिली थी उन्हीं के अनुकरण पर संतों ने निरंजन योगियों का वर्णन किया है। जिस प्रकार मत्स्येंद्रनाथी साधक भावात्मक पूजा और साधना को महत्त्व देते थे उसी प्रकार संत लोगों ने भी साधना के क्षेत्र में सभी प्रकार के साधकों और साधनाओं का मानसीकरण किया है। निरंजन योगियों के स्वरूप निर्देश से उपर्युक्त दोनों बातें स्पष्ट हो जायेंगी।[४]

---

१ ना घर भला न बन भला जहाँ नहीं निज नाँव।
दादू उन्मनि मन रहै भला न सोई ठाँव॥
—दादू बानी भाग १, पृ० २४।

२ मन पीछे सब जगत भुलाना। मन चीन्हे सो चतुर सुजाना॥
—दरिया सागर, पृ० ३०।

३ मन ही सो मल उपजै मन ही सो मल धोई
दादू बानी भाग १, पृ० ११४।

४ जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उन्मनि लागा।
आत्मा जोगी धीरज कथा, निहचल आसण आगम पथा॥
सहजैं मुद्रा अलख अधारी अनहद सीगी रहणि हमारी।
काया बनखण्ड पायो चेला ज्ञान गुफा में रहै अकेला॥
दादू दरसन करन जाने निरंजन नगरी भिक्षा माँगे।
—दादू बानी भाग २, पृ० ६८।

नि.संदेह संत मत मत्स्येंद्रनाथी विचारधारा से प्रभावित है।

निर्गुण काव्यधारा पर गोरखनाथी धारा का प्रभाव

संतों का नाथ पंथियों से सीधा संबंध है। उनकी विचारधारा पर नाथों का अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा है। संत मत की प्रत्येक प्रवृत्ति नाथ पंथी प्रवृत्ति की अनुगामिनी है। अंतर केवल इतना है कि संतो की विचारधारा अन्य दर्शनों से भी प्रभावित है जिससे उसका स्वरूप नाथ पंथ से विलक्षण लगने लगा है।

नाथ पंथ के अध्यात्म पक्ष का पूरा-पूरा प्रभाव संतो पर दिखाई देता है। नाथ पंथी ब्रह्म द्वैताद्वैत विलक्षण मानते थे। उन्ही के अनुकरण पर संतो ने भी बहुत से स्थलों पर ब्रह्म को द्वैताद्वैत विलक्षण कहा है। संत दरिया साहब ने लिखा है—

'वह परमात्मा सगुण निर्गुण दोनो से विलक्षण निर्मल सत् स्वरूप है।'[1]

नाथ पंथी मन को शून्य में लीन करने को ही मुक्ति मानते हैं। उन्हो का अनुकरण करते हुए संतो ने भी शून्य में मन के लय को ही मुक्ति ध्वनित किया है। संत दादू लिखते है—'चेतन जीव शून्य से उत्पन्न होता है और अंत में मुक्ति प्राप्त करने पर उसी में लीन हो जाता है।'[2]

संतो की हठयोग साधना नाथपंथी साधना का ही रूपांतर है। नाथ पंथियों की ही भाँति संत लोग गुरु को महत्त्व देते थे। गुरु के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए दयाबाई ने लिखा है—'गुरु देवाधिदेव ब्रह्म-रूप होता है। उसका गौरव और रहस्य सरलता से नहीं समझा जा सकता।'[3]

नाथ पंथियो की मन साधना का सिद्धात संतो को बहुत प्रिय था। उन्हो के ढंग पर उन्होने सर्वत्र मन के महत्त्व और उसके परिष्कार पर बल दिया है। सत

---

१. निर्गुण सगुन दुहुन ते न्यारा।
सत स्वरूप होहि विमल सुधारा॥
—दरिया सागर, पृ० १४।

२. सुन्यहि मारग आइया सून्यहि मारग जाय।
चेतन पैंडा सुरति जहँ दादू रहो लौ लाय॥
—संत सुधासार, पृ० ४६६।

३. गुरु है देवन के देवा, गुरु को कोऊ नहिं जानत भेदा।
सद्‌गुरु ब्रह्म स्वरूप है मनुष भाव मत आन॥
—दयाबाई की बानी, पृ० २।

दरिया ने लिखा है[1] 'मन के पीछे सारा जगत् भ्रमित है, जो मन के रहस्य को समझ लेता है वही बुद्धिमान है।' एक अन्य स्थान पर उन्होंने फिर लिखा है[2]—'मन ही नियम और आचारों का पालन कराता है और मन ही मन को पूजा चढ़ाता है।' इस प्रकार संतों ने मन के महत्त्व और उसके पवित्रीकरण का उपदेश दिया है।

संतों पर नाथ पंथी भाषा और अभिव्यक्ति का भी बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है। कबीर आदि संत तो उससे इतना अधिक प्रभावित हुए कि कहीं-कहीं पर उन्होंने शब्द, वाक्यांश, वाक्य यहाँ तक कि पूरे पद पुनरुद्धृत किये है। यह साखी गोरख और कबीर में समान रूप से पाई जाती है।[3]

संतों की पारिभाषिक शब्दावली लगभग पच्चीस प्रतिशत नाथ पंथियों से ही ली गई है। संतों के किसी शब्द का अर्थ यदि समझ में न आये तो उसकी खोज सबसे पहले नाथ पंथी साहित्य में करनी चाहिये।

संत लोग नाथ पंथी योगी के स्वरूप से भी पूर्णतया परिचित थे। कबीर आदि संतों ने उस स्वरूप का वर्णन विविध पंथों के साधुओं के वेषाडम्बर की आलोचना के प्रसंग में किया है। कबीर ने नाथ पंथी साधु के वेषाडम्बर के प्रति उपेक्षा भाव प्रकट किया है।[4]

सच तो यह है कि नाथ संप्रदाय का पूरा ज्ञान हुए बिना निर्गुण विचारधारा को समझना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही है।

इन विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्गुण काव्यधारा का प्रारम्भ बौद्ध तंत्र तथा उनकी अनेक शाखाओं के द्वारा पाँचवीं-छठवीं शताब्दी से ही हो गया था। तांत्रिकों की ये रचनाएं संस्कृत में हैं। आगे चलकर दसवीं शताब्दी के आस पास देशी

---

१. मन के पीछे सब जगत् भुलाना, मन चीन्हे सो चतुर सुजाना।
—दरिया सागर, पृ० ६।

२. मन ही नेम अचार करावै, मन ही मन में पूजा चढावै।
—दरिया सागर, पृ० ३०।

३. यहु मन सकती, यहु मन सीव, यहु मन पाँच तत्व को जीव।
यहु मन लै उन्मनि रहै तो तीन लोक की बाता कहै॥
—गोरख बानी संग्रह, पृ० १८ तथा संत कबीर, पृ० ८२।

४. बाबा जोगी एक अकेला जाके तीरथ बरतन मेला।
झोली पत्र बिभूतिन बटुआ अनहद बेन बजावै॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १५८।

भाषा में रचनाएँ होने लगी। सिद्धो और नाथो की ऐसी रचनाएँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। निर्गुण काव्य के रचयिता नाथ और सिद्ध पूरे भारत मे फैले हुए थे। इस प्रकार निर्गुण काव्य की धारा का प्रवाह नामदेव के पूर्व से चला आ रहा था और नामदेव ने इसको वही से ग्रहण किया। जिस धारा के नाथ और सिद्ध कवि अपनी रचनाओ से समाज में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे उसी धारा को अपनाकर अपनी वाणी द्वारा समाज को जाग्रत करना नामदेव को अधिक उपयुक्त जान पड़ा। इसलिए उन्होंने तत्कालीन स्थितियो को ध्यान में रखते हुए अपने हिन्दी पदो की रचना की।

□□

द्वितीय अध्याय

संत नामदेव : व्यक्तित्व और रचनाएँ

चरित्र विषयक सामग्री—कई नामदेव
हिंदी में रचना करने वाले नामदेव ज्ञानेश्वरकालीन
महाराष्ट्रीय संत नामदेव हैं अथवा कोई अन्य ?
जन्म काल
नामदेव का अयोनि—संभव होना
नामदेव चरित्र के प्राचीन स्रोत—गाथा
ज्ञानेश्वर और नामदेव का समकालीनत्व
डॉ० रा० गो० भांडारकर का मत
डॉ० मोहनसिंह का मत—मेकालिफ का मत
जनम साखी
महाराष्ट्रीय विद्वानों के मत
हिंदी के विद्वानों के मत—निष्कर्ष
जन्म स्थान
हिंदी तथा मराठी के विद्वानों के मत
माता पिता एवं परिवार, जाति तथा व्यवसाय
क्या बालभक्त नामदेव डाकू थे ?—गुरु, नामदेव की यात्राएँ
नामदेव की समाधि—नामदेव का व्यक्तित्व
रचनाएँ—मराठी गाथा की प्रतियाँ
मराठी अभंगों का वर्गीकरण
हिंदी रचनाएँ
हिंदी की रचनाओं का विषयानुसार विभाजन

संत नामदेव : व्यक्तित्व और रचनाएँ

संतो के वैयक्तिक जीवन और उनकी काव्य रचना का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके लिए परमार्थ साधना ही जीवन का आदर्श था और काव्य रचना इस साधना का आविष्कार। उनका साहित्य व्यक्तिनिष्ठ है अथवा विषयनिष्ठ, इस विषय पर वाद-विवाद को गुंजाइश ही नहीं है क्योंकि संतों के भाव-जीवन तथा उनकी काव्य सृष्टि में अधिकांश में एकरूपता है। इसीलिए उनके भाव जगत् और इहलोक के चरित्र में अन्तर नहीं खोजा जा सकता। फिर भी उनके जीवन कार्य तथा उनके काव्य का अन्वयार्थ लगाने के पहले उनका जीवन परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक हो जाता है।

नामदेव ने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। उनके आत्म-चरित्र-परक अभंगों की सहायता से हम उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का ढाँचा खड़ा कर सकते हैं यद्यपि इसमें भी अनेक कठिनाइयाँ हैं। इन आत्म-चरित्र-परक अभंगों में कई प्रक्षिप्त है तथा बहुत से अभंगो में पाठभेद भी पाया जाता है। इन अभंगो की प्रामाणिकता में भी सन्देह है क्योंकि स्वयं नामदेव के हाथ की लिखी अधिकृत गाथा अभी तक किसी को भी प्राप्त नहीं हुई है।

नामदेव के समकालीन संतो ने उनका जो परिचय दिया है उसको कहाँ तक ग्राह्य अथवा अग्राह्य समझा जाय यह भी एक समस्या है। डॉ० भांडारकर, पं० पाडुरंग शर्मा, श्री भिंगारकर बुवा, श्री आजगावकर, प्रो० प्रियोलकर, डॉ० वि० भि० कोलते, प्राचार्य दाडेकर आदि अनुसंधान-कर्त्ताओ ने नामदेव-चरित्र की चर्चा की है। इस प्रकार की सामग्री विपुल है। परन्तु कहा नहीं जा सकता कि इस सामग्री से उनका संपूर्ण तथा विश्वसनीय चरित्र उपलब्ध होगा ही। नामदेव के चरित्र के इन अध्येताओं द्वारा दी गई जानकारी कहीं अधूरी है तो कहीं सदोष। कुछ स्थलो पर तो उसकी पुनरुक्ति भी हुई है। इन कारणो से नामदेव की विस्तृत तथा विश्वासाई जीवनी का अभाव बहुत खटकता है। अतः नामदेव विषयक उपलब्ध सभी सामग्री का अध्ययन और विश्लेषण कर उनका जीवन चरित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न यहाँ किया गया है।

अब प्रश्न यह है कि हिंदी में रचना करने वाले नामदेव ज्ञानेश्वर कालीन

महाराष्ट्रीय संत नामदेव है अथवा कोई अन्य ? आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने[१] अपनी "उत्तरी भारत की संत परंपरा" में कई नामदेवों का उल्लेख किया है। ध्यान देने की बात यह है कि "नामदेव" नाम के चार या पाँच तो महाराष्ट्रीय संत थे। उत्तरी भारत में भी दो से अधिक नामदेव नामधारी संतों का किसी न किसी समय वर्तमान होना कहा गया है। अत संत नामदेव—जिनके पद "गुरु ग्रंथ साहब" में संग्रहीत हैं—के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना अथवा उनकी जीवनी तथा रचनाओं का प्रामाणिक परिचय देना सदेह से रहित नहीं कहा जा सकता।

यहाँ उन संतों और कवियों का परिचय देना आवश्यक है जो नामदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(१) ज्ञानेश्वर के समकालीन नामदेव

इनका उल्लेख निवृत्तिनाथ के अभंगों में आता है। अन्य नामदेवों की अपेक्षा इनकी रचनाएँ बहुत ही सरस एवं भावुकतापूर्ण हैं। कुछ अभंगों में ये अपने नाम का उल्लेख केवल "नामा" शब्द से करते हैं। कुछ अभंगों में "केशवाचा नामा" (केशव का नामा) तथा विष्णुदास नामा आदि मुद्राओं द्वारा ये अपना परिचय देते हैं।

(२) विष्णुदास नामा

नामदेव के मराठी अभंगों तथा हिंदी पदों में विष्णुदास नामा का नाम बार-बार आया है। उनका काल सन् १५८०-१६३३ ई० के मध्य का है। उनकी प्रामाणिक रचना "शुकाख्यान" है जिसकी अंतिम ओवी में उसका रचनाकाल इस प्रकार दिया है। "शालिवाहन शक के मन्मथनाम संवत्सर को पौष्य अमावस्या सोमवार को, ग्रंथ पूर्ण हुआ, श्रोता गण सावधान होकर उसका श्रवण करें।[१] यह काल शालिवाहन शक का १५१७ है और नामदेव का प्रयाण काल शक १२७२ है। दोनों के काल में लगभग ढाई सौ वर्ष का अंतर है। अत विष्णुदास नामा संत नामदेव से निश्चित ही भिन्न हैं।

श्रीमती सरोजिनी शेंडे ने अपने शोध प्रबंध में[२] विष्णुदास नामा संबंधी सभी

---

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा पृ० १०५

१. मन्मथ नाम संवत्सरे पौष्य मासीं।
सोमवार अमावास्येच्या दिवशीं।
पूर्णता आली ग्रंथासी।
श्रोते सवकाशी परिसोजे।

—सकल संत गाथा, अभंग २२५३

२. विष्णुदास नाम्याच्या महाभारताचा विवेचनात्मक अभ्यास
—(अप्रकाशित प्रबंध) मुंबई विद्यापीठ ग्रंथालय, १९६०

बातें विस्तार के साथ लिखी हैं। उन्होंने "कमलाकर संताचे आख्यान" का एक अभंग प्रस्तुत किया है जिसमें विष्णुदास नामाने अपने पूर्ववर्ती संतों के साथ नामदेव का भी नाम दिया है।[1] इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि नामदेव और विष्णुदास नामा दो भिन्न व्यक्ति है। परन्तु यह संभव है कि नामदेव ने अपने अभंगों मे "विष्णु दास नामा" की मुद्रा लगाई हो।

विष्णुदास नामा की 'बावन अक्षरी' की एक प्रति इतिहासाचार्य राजवाडे को मिली थी जिसमें स्वयं विष्णुदास नामा ने नामदेव की वंदना की है। 'नामदेव के पवित्र नाम के उच्चारण से वह हरि-हर का भक्त हो जाता है क्योंकि गोविंद को नाम प्रिय है।"[2]

श्री पांगारकर के अनुसार विष्णुदास नामा जाति का ब्राह्मण न होकर 'शिंपी' (दर्जी) था। इसके लिए ये उन्हीं की रचना से उदाहरण देते है। विष्णुदास नामा का कथन है—तुलसी का पौदा यदि अपवित्र भूमिपर उगा तो उसे अपवित्र न समझा जाय। विष्णुदास नामा विट्ठल के भजन मे तल्लीन हो गया, उसे शिंपी (दर्जी) न कहा जाय।[3] श्री पांगारकर विष्णुदास नामा को संत एकनाथ का समकालीन तथा मुक्तेश्वर का पूर्ववर्ती बताते है। 'ओवी' उसका प्रिय छंद है।

इसके अतिरिक्त विष्णुदास नामा की रचनाओ में आचार धर्म पर अधिक बल दिया गया है। उनकी कुछ रचनाएँ कूट समस्यात्मक भी हैं। विष्णुदास नामा अधिक-

---

१. कोण्हो एके अवसरी। सकल संत मिलोनी अवधारी।
   कीर्तन करितां गजरी। पंढरपुरा चालिले॥
   ज्ञानदेव सोपानदेव। चांगा मुक्ताई नामदेव
   कबीर रोहिदास भक्त राय। ब्रह्मानंदे चालले॥
   —विष्णुदास नामा कृत महाभारत (कमलाकर संताचे आख्यान। मुंबई मराठी ग्रंथ सग्रहालय

२. नामदेवाचे पवित्र। नाम उच्चरिता अखंडित।
   नामें होय हरि हर भक्त। नाम प्रिय गोविंदा॥
   —मराठी वाङ्मयाचा इतिहास (खंड पहला) पृ० ५५४

३. अमंगलु भूमीसी उगवल्या तुलसी। अपवित्र तयासी म्हणो नये।
   विष्णुदास नामा विठ्ठली मिलाला। सिंपी सिंपी त्याला म्हण नये।
   —मराठी वाङ्मयाचा इतिहास (खंड दूसरा) पृ० ५७८

तर विषय-निष्ट और बहिर्मुख है। उनकी रचना में वर्णनात्मकता अधिक है। संत नामदेव एकान्तिक विट्ठल भक्त और भावुक हैं। इनकी रचनाओं में अनुभूति की सच्चाई और मार्मिकता है।

इन प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णुदास नामा और संत नामदेव दो भिन्न व्यक्ति हैं।

(३) नामा पाठक

संत एकनाथ कृत 'संत माला' में इनका उल्लेख आता है। चित्राव शास्त्री ने[1] इनका काल ई० स० १३७८ माना है। डॉ० तुलपुले[2] के अनुसार नामा पाठक ज्ञानेश्वर कालीन कान्हो पाठक का पोता है। इनका 'अश्वमेध पर्व' नामक एक ओवीबद्ध ग्रंथ मिलता है। इनकी रचना संत नामदेव की रचना से बिलकुल अलग है इस लिए इनका उनसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है।

(४) नामदेव शिंपी

नामदेव शिंपी को ज्ञानेश्वर कालीन नामदेव का सम-सामयिक कहा गया है। ये भी अपने आपको विष्णुदास नामा लिखते हैं। दामोदर पंडित ने शके ११६८ में इस कवि को महानुभाव पंथ की दीक्षा दी।[3] इस बात का 'स्मृति स्थल' में भी उल्लेख है।[4]

(५) नेमदेव

महानुभाव पंथी एक अन्य व्यक्ति 'नेमदेव' भी प्रसिद्ध है जिसका उल्लेख महानुभाव पंथ के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लीला चरित्र'[5] के 'विट्ठल चौरु कथन' नामक प्रकरण में आया है। इस ग्रन्थ के अनुसार यह 'कोली' (मछुआ) जाति का था और महानुभाव पंथ में दीक्षित हुआ था। इसके काल का कुछ निश्चित पता नहीं। श्री पांगारकर ने इसे ज्ञानेश्वरकालीन संत नामदेव के साथ जोड़ दिया पर इसका न तो वारकरी संप्रदाय से कोई सम्बन्ध था न इसकी रचना का पता ही चलता है।

(६) बाल क्रीड़ा कर्ता नामदेव

इसके बाल लीला के अभंग बहुत ही मधुर है। परन्तु इन अभंगों की भाषा अर्वाचीन प्रतीत होती है। उसने अपने एक अभंग में विसोबा खेचर का उल्लेख

---

१. मध्ययुगीन चरित्र कोश : सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव पृ० ४१२।
२. महाराष्ट्र सारस्वत (पुरवणी) : डॉ० शं० गो० तुलपुले पृ० ७५६।
३. महानुभावीय मराठी वाङ्मय: य० खु० देशपांडे।
४. स्मृति स्थल: संपादक : वा० ना० देशपांडे, पृ० ७४-७५।
५. लीला चरित्र (उत्तरार्द्ध) सम्पादक : ह० ना० नेने, पृ० ४२३।

किया है।[1] उसने ग्रन्थ के प्रारम्भ में शालिवाहन शक के चौदहवी शताब्दी के 'बहिरा पिसा' उर्फ बहिरा जातवेद (बहिरंभट) का उल्लेख किया है। ज्ञानेश्वर का समकालीन तथा विसोबा खेचर का शिष्य नामदेव चौदहवी शती के कवि का उल्लेख अपनी रचना में कैसे कर सकता है ?

एक और नामदेव का उल्लेख 'महिकावती की बखर' में पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त मारवाड़ में भी नामदेव नामक किसी संत का होना बताया जाता है। पर उसकी जीवनी और रचना के कुछ ज्ञात न होने के कारण उसके विषय में कुछ कहा नही जा सकता।

सबसे अधिक विवाद इस बात को लेकर चला है कि महाराष्ट्रीय संत नामदेव भिन्न है और पंजाबी (गुरु ग्रन्थ साहब के) नामदेव जिनकी रचना हिन्दी में भी मिलती है, भिन्न है। इस संबंध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये है—

(क) जो नामदेव पंढरपुर के विट्ठल को एक क्षण भी छोड़ने के लिए तैयार नही थे वे पंढरपुर छोड़कर लगभग २० वर्ष तक दूर रहे यह आश्चर्य की बात है जिस पर विश्वास नही होता।

(ख) जिन नामदेव ने ज्ञानेश्वर महाराज के साथ की यात्रा का अपने 'तीर्थावली' के अभंगों में इतना विस्तृत और रोचक वर्णन किया है, वही इतनी दीर्घकालीन यात्रा का वर्णन एक भी स्थान पर, न मराठी अभंगों, न हिन्दी पदो में करें, यह असंभव-सा जान पड़ता है।

(ग) महाराष्ट्रीय संत नामदेव की पंजाब यात्रा अथवा पंजाब निवास का उल्लेख न तो महाराष्ट्र के इतिहास में प्राप्त होता है न पंजाब के इतिहास मे।

ऊपर के तर्कों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि महाराष्ट्रीय संत नामदेव का पंजाब जाना, गुरदासपुर जिले के घोमान गाँव में लंबी अवधि तक निवास करना और हिन्दी में पद रचना करना अन्तः साक्ष्य तथा बहिसाक्ष्य दोनो से रहित है। इस संबंध में महाराष्ट्र के कुछ विवेचकों का यह अनुमान प्रस्तुत किया जाता है—'गुरु ग्रन्थ साहब के पद-रचयिता नामदेव का महाराष्ट्र के ज्ञानदेव कालीन नामदेव से कोई संबंध नही है। वह नामदेव की पंजाब यात्रा के समय उनका कोई शिष्य रहा होगा, जिसने बाद में अपने गुरु का नाम धारण कर हिन्दी में पद रचे होंगे।' डॉ० विनयमोहन शर्मा ने इस अनुमान को निराधार सिद्ध किया है।[2]

---

१. नामा मनो आठवी खेचर वरण। तयाचे कृपेने सिद्धी जावो॥

श्री नामदेव महाराज आणि त्याचे समकालीन संत

—ज० र० आजगावकर, पृष्ठ ११

२. हिन्दी को मराठी संतो की देन, पृ० १०१।

एक दूसरा अनुमान भी कुछ विवेचकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। उनका कहना है कि नामदेव के किसी शिष्य ने अथवा अन्य संत ने महाराष्ट्रीय संत नामदेव के मराठी अभंगों का हिन्दी में अनुवाद करने का प्रयत्न किया है। कई ऐसे पद भी हैं जो हिन्दी मराठी में समान भाववाले हैं।

अब ऊपर दिये हुए तर्कों पर क्रमशः विचार किया जायगा। यह बात निर्विवाद है कि संत नामदेव ज्ञानेश्वर के साथ उत्तर भारत की यात्रा के लिए गये थे। यह यात्रा उन्होंने तब की थी जब विट्ठल के प्रति उनकी भक्ति अत्यन्त भावात्मक थी। वे विट्ठल के बिना तड़पने लगते थे। यदि उन्होंने पंढरपुर छोड़कर उत्तर भारत की यात्रा की तो प्रौढावस्था में—जब उनमें परिपक्व ज्ञान और अनुभूति थी। ऐसी अवस्था में पंजाब की यात्रा करना असंभव नहीं।

यह सही है कि 'तीर्थावली' का विस्तृत वर्णन करने वाले नामदेव ने पंजाब की यात्रा का उल्लेख तक नहीं किया, पर अभी यह प्रमाणित करना शेष है कि 'तीर्थावली' के अभंग नामदेव रचित हैं। डॉ० तुलपुले के अनुसार नामदेव की गाथा के २५-२६ सौ अभंगों में से केवल ५-६ सौ अभंग ही वास्तव में नामदेव रचित हैं, शेष प्रक्षिप्त हैं।[१] दूसरी बात यह भी है कि संत नामदेव ने पंजाब यात्रा अपने जीवन के उत्तरकाल में (५० वर्ष की अवस्था के ऊपर) की, जब उनके पास ब्रह्म की अनुभूति, सांसारिकता से वैराग्य आदि के अतिरिक्त अन्य कुछ कहने को नहीं था।

यह भी प्रसिद्ध है कि संतों ने सर्वदा ही अपने बारे में कम कहा है। इतिहास में नामदेव का उल्लेख न आना कोई आश्चर्य की बात नहीं। पहले के इतिहास ग्रन्थों में राजाओं की वंशावली, दरबारियों की सत्ता के लिये स्पर्धा, युद्धों के वर्णन आदि के अतिरिक्त अन्य जानकारी बहुत ही कम मात्रा में आ पाती थी। न जाने कितने संतों का वर्णन इतिहास में नहीं है। अतः संत नामदेव की पंजाब यात्रा का वर्णन इतिहास में न होना यात्रा का अप्रमाण नहीं हो सकता।

महाराष्ट्रीय संत नामदेव के किसी शिष्य द्वारा हिन्दी पदों की रचना की जो बात कही गई है, वह तो पिछले तर्क—हिन्दी मराठी पदों के साम्य से ही स्वयं सिद्ध हो जाती है। यदि हिन्दी के पद उनके किसी शिष्य द्वारा रचे गये होते तो मराठी अभंगों की शब्दावली का साम्य, भाव साम्य और महाराष्ट्र में प्रचलित यादवकालीन मराठी के कुछ विशिष्ट प्रयोग न मिलते। हिन्दी के जो पद मराठी से साम्य रखते हैं उनकी संख्या केवल ६-१० है। यदि हिन्दी पद मराठी के अनुवाद होते तो हिन्दी के सैकड़ों पदों की छाया मराठी के अभंगों में कहीं-न-कहीं तो मिलती, पर ऐसा नहीं है।

---

१. पाँच संत कवि : डॉ० श० गो० तुलपुले, पृ० १३५।

गुरु ग्रन्थ साहब के पद महाराष्ट्रीय तथा ज्ञानदेव कालीन नामदेव के ही है। वे अपने जीवन के उत्तर काल में पंजाब गये और वहीं लगभग २० वर्ष तक रहे। वास्तव में बात यह है कि अपने परम मित्र ज्ञानेश्वर के समाधि लेने के पश्चात् पंढरपुर से उनका मन उचट गया और कुछ दिनों के पश्चात् वे पंजाब की ओर चले गये। वहाँ गुरुदासपुर जिले के घोमान ग्राम में रह कर भजन-कीर्तन करते रहे। उनके समाधि-स्थान के बारे में दो मत हैं। पंजाबी परंपरा के अनुसार उन्होंने घोमान में ही समाधि ली। पर नामदेव के शिष्य परिसा भागवत के एक अभंग[1] के अनुसार सन् १३५० ई० में पंढरपुर में ही उनके समाधि लेने की बात पुष्ट होती है। आज भी घोमान में बाबा नामदेवजी का गुरु द्वारा है और उनके अनुयायियों की संख्या भी बहुत बड़ी है।

महाराष्ट्रीय संत नामदेव और गुरु ग्रन्थ के नामदेव एक ही है, इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं। सबसे पहली बात यह है कि नामदेव के जन्म स्थान और वंश के सम्बन्ध में दोनों परम्पराओं में साम्य है। नामदेव के जीवन सम्बन्धी जो घटनाएँ तथा उनके चमत्कार महाराष्ट्र में प्रचलित है अथवा उनके अभंगों में मिलते है, वही घटनाएँ और चमत्कार पंजाबी परम्परा में भी प्रचलित हैं और हिन्दी के पदों में भी प्राप्त हैं। मृत गाय को जिलाने, विट्ठल को दूध पिलाने, मन्दिर का द्वार फिराने आदि की घटनाएँ दोनों रचनाओं में समान रूप से प्राप्त होती है। पंजाबी परंपरा के अनुसार गुरु ग्रन्थ के नामदेव भिन्न नहीं बल्कि महाराष्ट्रीय संत नामदेव ही है।[2]

दूसरी बात यह है कि हिन्दी पदों और मराठी अभंगों में विट्ठल शब्द के उपयोग के साथ साथ केशव, माधव, राम, गोविन्द, हरि आदि शब्दों का समान रूप से व्यवहार हुआ है। हिन्दी के कवियों ने विट्ठल का प्रयोग कहीं नहीं किया है। विट्ठल महाराष्ट्र के देवता हैं और सन्त नामदेव उन्हीं के भक्त थे। इसलिए प्रधान रूप से विट्ठल शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त हिन्दी तथा मराठी पदों का वर्ण्य-विषय एक न होते हुए भी सामान्य बातें—ईश्वर की सर्वव्यापकता, नाम और गुरु का महिमा वर्णन, बाह्याडम्बरों की व्यर्थता तथा प्रह्लाद, ध्रुव, अजामिल आदि प्राचीन भक्तों के कथा सन्दर्भ लगभग एक से ही हैं।

पंजाबी और महाराष्ट्रीय संत नामदेव के एक होने का सबसे बड़ा प्रमाण है

१. आषाढ़ शुक्ल एकादशी। नामा विनवी विट्ठलासी।
आज्ञा द्यावी हो मजसी। समाधि विश्रांति लागी॥
—सकल संत गाथा

२. (अ) हिन्दी को मराठी संतों की देन, पृ० १०६।
(ब) भगत नामदेव की जनम साखी : ग्यानी करतार सिंह।

मराठी के कुछ विशिष्ठ शब्दो का प्रयोग। यदि प्रत्यय आदि को हम पुरानी हिन्दी का ही एक रूप मान लें तो भी हम विशिष्ट मराठी शब्दो को, जो प्राचीन काल में विशिष्ट अर्थ में ही प्रयुक्त होते थे, या आज होते है, किसी भी प्रकार हिन्दी का नही मान सकते। 'गुरु ग्रन्थ साहब' म आई हुई एक पंक्ति है :—

पाप पुनि जावै डांगिया द्वारै चित्र गुपुत लेखिया।
धमराय पौली प्रतिहार ऐसो राजा श्रीगोपाल॥

(पाप पुण्य जिसके चोबोदार (डांगिया) है, द्वार पर चित्रगुप्त लेखक हैं, धर्मराज जिसकी ड्योढ़ी पर प्रतिहार है, ऐसा राजा वह श्रीगोपाल है।)

'डांगिया' मराठी एक विशिष्ट है, जो विशिष्ट अर्थ म प्रयुक्त होता है। पंढरपुर के विट्ठल मन्दिर के दरवाजे पर दोनो तरफ जो जय विजय के प्रतिहारी खड़े है, उन्हे 'डांगिया'[1] कहा जाता है।

उसी पद मे दूसरी पंक्ति है—

'जाचे घरा दिग दसा सराइचा बैकुंठसी चित्रसारी।'

(जिसके घर मे दसो दिशाएँ समाप्त होती है और वैकुंठ के समान जिसकी चित्रशाला है।)

'सराइचा' शब्द मराठी के 'सरणें' क्रिया से बना है, जिसका अर्थ होता है समाप्त होना।[2] एक और विशिष्ट शब्द देखिए—

'आणिले कसरि मुकडि समसरि, बाल गोविंद हि पौलि रचौं।'

(सुगड़ भर कर केसर ले आया ताकि बाल गोविन्द को चंदन लगा सकूं।) 'सुकड़ि' शब्द मराठी के 'सुगड़' शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ होता है, मिट्टी का छोटा बर्तन। इस प्रकार वोलपे ओलखे (पहचानना), दीवला (दीपक), सम्वर-सम्भर (सौ) आदि शब्द भी है। मराठी के इन विशिष्ट शब्दो का प्रयोग यह प्रमाणित करता है कि गुरु ग्रन्थ साहब के नामदेव और ज्ञानेश्वरकालीन महाराष्ट्रीय नामदेव एक ही है।

यद्यपि दोनो नामदेवो के एक होने का ऐतिहासिक उल्लेख कही प्राप्त नही होता किन्तु परपरागत किंवदन्तियाँ भी कम महत्वपूर्ण नही है। जो बात किसी व्यक्ति के सबंध में शताब्दियो तक चलती आती है उसमें थोड़ा बहुत सत्य का अंश अवश्य होता है। नामदेव का महाराष्ट्र से पंजाब में जाना प्रचलित तो है ही किन्तु एक और बात से इसकी सत्यता निःसंदिग्ध बन जाती है। नामदेव के प्रारंभिक जीवन के सबंध में

---

१. महाराष्ट्र शब्दकोश (चौथा विभाग) पृ० १४२१।
२. महाराष्ट्र शब्दकोश (सातवाँ विभाग) पृ० ३०४२।

तत्कालीन संतो और उत्तरकालीन संतो ने भी पर्याप्त मात्रा में लिखा है। नामदेव के बचपन से लेकर ज्ञानेश्वर की समाधि और उसके बाद एक तीर्थयात्रा का उल्लेख तो मिलता ही है। ज्ञानेश्वर की समाधि (ई० स० १२९४) के समय नामदेव (जन्म ई० स० १२७०) २६ वर्ष के थे। उसके बाद वे तीर्थयात्रा के लिए गये। उसके बाद के जीवन मे नामदेव कहाँ रहे, क्या करते रहे, क्या चमत्कार किये आदि किसी भी एक घटना का उल्लेख मराठी साहित्य और इतिहास में नही मिलता। मराठी का सारा संत साहित्य भी नामदेव के उत्तरकालीन जीवन के बारे में बिलकुल मौन है। इस बात को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि नामदेव अपने जीवन के उत्तरकाल में महाराष्ट्र के बाहर रहे। संभवत. इस काल में वे पंजाब में रहे हो। इसीलिए उनके उत्तरकालीन जीवन का उल्लेख महाराष्ट्र में कहीं भी नहीं मिलता।

नामदेव रचित हिन्दी पदों के वर्ण्य विषय की बात अवश्य ही विचारणीय है। वस्तुत: नामदेव ने जब विसोबा खेचर से दीक्षा ली तभी उनमें एक प्रकार का परिवर्तन आ गया जिसका संकेत मराठी अभंगों में[1] भी कहीं-कहीं मिल जाता है। उसके बाद उन्हें ईश्वर की सर्वव्यापकता का ज्ञान हुआ और धीरे-धीरे पंढरी के विट्ठल के प्रति उनका मोह कम होने लगा। ज्ञानेश्वर की समाधि के पश्चात् शक १२५२ के आस पास वे जब दूसरी बार तीर्थयात्रा के लिए गये थे तब उन्हें ईश्वर के विश्वरूप का ज्ञान हुआ और वे सभी जगह विट्ठल को देखने लगे।[2] उत्तर भारत में उस समय नाथों और सिद्धों का बड़ा प्रभाव था जिससे नामदेव बच नहीं सके। उन्होंने महाराष्ट्र से लेकर पंजाब तक की साधना और भक्ति देखी थी अतः उनकी अनुभूति में एक परिपक्वता आ गई थी। हिन्दी पदों में अनुभूति की यही परिपक्वता व्यक्त हुई है। कथन शैली, भाषा, छंद आदि सब उत्तर भारत की परंपरा का है। उन्होंने तत्कालीन उत्तर भारत की भावना पद्धति को आधार बनाकर भक्ति का प्रचार किया। इन बातो से स्पष्ट है कि मराठी अभंगो का रचयिता नामदेव तथा हिन्दी पदों का रचयिता नामदेव दोनो एक ही हैं। अन्तर

---

१. सतसंगे माझा पालट झाला।
पाहता विट्ठला रूप तुझें॥

—सकल संत गाथा, अभंग १६६८।

२. पाषाणाचा देव बोलत भक्ताते।
सांगते ऐकते मूर्ख दोघे॥

—सकल संत गाथा, अभङ्ग १३६१।

ईभै बीठलु ऊभै बीठलु, बीठल बिनु संसार नहीं।
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिउ तू सरब मही॥

—पंजाबातील नामदेव, पृ० ८३।

केवल इतना ही है कि मराठी अभंग उनके जीवन की किशोरावस्था मे रचे गये, जिनमें भक्ति की विह्वलता और वर्णनात्मकता है। हिन्दी पद जीवन के उत्तरकाल में रचे गये जिनमे अनुभूति की परिपक्वता है।

जन्म काल

नामदेव का अयोनि-सभव होना—डॉ० इनामदार[1] भक्तमाल' मे वर्णित यथा तथा विष्णुदास नामाकृत 'आदि' प्रकरण के अभङ्ग मे आई हुई पक्तियो के आधार पर नामदेव को 'अयोनि-सभव' मानने के पक्ष में नही है। इस सबध में वे स्वर्गीय म० गो० कारटकवे[2] के मत के समर्थक है तथा सीपी शब्द का अर्थ शुक्तिका मानकर नामदेव को अयोनिज मानने वालो का खण्डन करते है। नामदेव गाथा, जनाबाई तथा विठाके अभङ्गो के आधार पर भी उन्होने नामदेव के नैसर्गिक जन्म की पुष्टि की है। इस प्रवाद के पीछे अयोनिज व्यक्ति को अन्य व्यक्तियो से श्रेष्ठ घोषित करने की भावना को भी वे कोई महत्त्व नही देते और ईश्वर-प्राप्ति से पूर्व सभी को अपूर्ण और अशुद्ध मानकर इसका प्रतिवाद करते है। डॉ० भगीरथ मिश्र[3] भी महीपति के कथन को केवल महत्ता-प्रदर्शन के लिए किया गया तथा प्रियादास के कथन को अवैज्ञानिक मानते हैं।

नामदेव-चरित्र के प्राचीन स्रोत-गाथा—

नामदेव का जन्म काल निश्चित करने के लिए आज जो भी साधन उपलब्ध हैं उनमे नामदेव के अभङ्गो की गाथा प्रमुख है। इस गाथा का 'नामदेव चरित्र' शीर्षक प्रकरण नामदेव-विरचित होने म सदेह किया जाता है।[4]

'नामदेव-चरित्र' के निम्नलिखित अभग के अनुसार नामदेव का जन्म रविवार कार्तिक शुक्ल एकादशी शक ११९२ (तदनुसार २६ अक्तूबर सन् १२७० ई०) को हुआ था—

> माझें जन्म पत्र बावाजी ब्राह्मणें। लिहिलें त्याची खूण सांगन ऐका॥
> अधिक व्याण्णव गणित अकरा शतें। उगवता आदित्य रोहिणीसी॥
> शुक्ल एकादशी कार्तिकी रविवार। प्रभव संवत्सर शालिवाहन शके॥
>
> आवटे प्रत, अभंग १२५४

---

१. सत नामदेव : डॉ. हे. वि. इनामदार, पृ० १५।
२. विष्णुदास नामा कृत नामदेवाची 'आदि' 'लोकशिक्षण' (मराठी पत्रिका) मई १९४०, पृ० ८१५।
३. सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पृ० ३३।
४. श्री नामदेव महाराज आणि त्यांचे समकालीन सत - ज. र. आजगांवकर, पृ० २।

इस अभंग में आये 'प्रभव' तथा 'प्रमोद' संवत्सरों के पाठ के संबंध में काफी ऊहापोह हुआ है। यद्यपि इस अभंग के नामदेव-कृत होने में शंका की जाती है फिर भी, यह भी सही है कि नामदेव की जन्म-तिथि निश्चित करने के लिये अन्य कोई प्रमाण साधन के रूप में प्राप्त नहीं होता।

डॉ० हे० वि० इनामदार के अनुसार 'इस अभंग में शालिवाहन शक ११६२ में 'प्रभव' संवत्सर का जो निर्देश किया गया है वह गलत है। उसके स्थान पर 'प्रमोद' संवत्सर का उल्लेख आवश्यक था।'[1]

श्री० शं० पु० जोशी ने शके ११८५ को नामदेव का जन्म शक मान कर एक जन्म कुंडली दी है। यह कुंडली श्री० प्र० रा० मुंगे द्वारा तैयार की गई है। श्री जोशी लिखते हैं—'उपर्युक्त अभंग में शक और संवत्सर का परस्पर मेल नहीं बैठता। शक ११८५ में 'प्रमोद' संवत्सर आता है। अतः कार्तिक शुक्ल एकादशी शक ११८५ को नामदेव का जन्म काल मानकर उनकी कुंडली तैयार की गई है।'[2]

अनंतदास कृत 'नामदेव की परिचयी':

'परिचयी' ग्रंथों से संतो के जीवन पर नया प्रकाश पड़ता है। इस दृष्टि से अनंतदास कृत 'नामदेव की परिचयी' महत्वपूर्ण है। इस परिचयी का रचनाकाल सं० १६४५ वि० है। बड़े खेद की बात है कि अनंतदास ने जहाँ नामदेव की मननशीलता, उनका आध्यात्मिक उत्कर्ष और सहनशीलता के विषय में इतना लिखा वहाँ उनकी जन्मतिथि के विषय में कुछ भी नहीं कहा। अतः नामदेव की जन्मतिथि निश्चित करने में यह परिचयी विशेष सहायता नहीं करती क्योंकि इसमें नामदेव के जन्म और जन्म काल का बिलकुल उल्लेख नहीं मिलता।

नाभादास कृत 'भक्तमाल':

'भक्तमाल' के रचना-काल में पूर्ण मतैक्य नहीं है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इसका रचना काल संवत् १६८० वि० माना है।[3] नाभादास ने एक छप्पय में नामदेव विषयक पाँच आश्चर्यजनक घटनाओं का वर्णन किया है परंतु उसमें नामदेव के जन्म शक का कहीं उल्लेख नहीं है।

प्रियादास ने भी 'भक्तमाल' की अपनी टीका में नामदेव का जन्मकाल नहीं दिया है।

---

१. संत नामदेवः डॉ० हे० वि० इनामदार पृ० ३०
२. पंजाकातील नामदेव पृ० १५
३. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (पूर्वार्द्ध) पृ० १०६।

भक्तमाला राम रसिकावली में नामदेव की वे ही सब कथायें है जो प्रियादास की 'भक्तमाल' की टीका में हैं। इसमें कोई नवीनता नही है।

ज्ञानेश्वर और नामदेव का समकालीनत्व:

ज्ञानेश्वर और नामदेव के समकालीनत्व के संबंध में निम्नलिखि मत प्रस्तुत किये जाते हैं :—

(१) श्री० भारद्वाज तथा श्री भिंगारकर के परस्परविरोधी मत

'ज्ञानेश्वरी' तथा 'अमृतानुभव' के रचयिता ज्ञानदेव तथा अभंगो के रचयिता ज्ञानदेव दो भिन्न व्यक्ति है तथा उनमें डेढ़ सौ, दो सौ साल का अंतर है। अपने इस मत का श्री शिवरामबुवा एकनाथ भारदे उर्फ 'भारद्वाज' ने बडे अभिनिवेश के साथ प्रतिपादन किया।[1] उन्होने 'माझें जन्म पत्र बाबाजी ब्राह्मणें' अभंग के 'अधिक ब्याण्णव गणित अकरा शतें' के स्थान पर 'अधिक नऊ गणित तेरा शते' ऐसा एक नया काल्पनिक पाठ सुझाकर नामदेव का जन्मकाल शक १३०६ निश्चित किया। मराठी संत साहित्य के अनेक अध्येताओ ने उनकी इस स्थापना का खण्डन किया। इनमें प्रमुख हैं श्री श्रीपतीबुवा भिंगारकर[2] तथा पं० पांडुरंग शर्मा।[3] इन दोनो के अनुसार एक ही ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी तथा स्फुट अभंगो की रचना की और संत नामदेव संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे।

---

१. 'ज्ञानदेव व नामदेव समकालीन होते काय ?':'भारद्वाज'—'सुधारक' (मराठी पत्र) (५-१२-१८९८)

२. *श्री महासाधु ज्ञानेश्वर महाराज याचा काल निर्णय व संक्षिप्त चरित्र* : श्रीपतीबुवा भिंगारकर, पृ० ३-४।

३. (अ) 'नामदेवाचा निर्णय' : श्री० पांडुरंग शर्मा

—भारत इतिहास संशोधक मण्डल (त्रैमासिक पत्रिका) वर्ष ५ वां, अंक १-४, शक १८४६, पृ० ३०-५८।

(ब) 'वारकऱ्याच्या वसाहती'

—भा० इ० सं० मंडल त्रैमासिक पत्रिका, पृ० ३-१८। वर्ष छठा, अंक १-४, शक १८४७।

(क) ज्ञानदेव व नामदेव समकालीन होते काय ?

—'चित्रमयजगत्' (मराठी पत्रिका) पुणें, अगस्त १९२२।

(ख) Historical Position of Namdev P. 335-41

—Annals of the B. O. R. I. (Poona) 1926-27.

प्रा० वासुदेव बलवंत पटवर्धन ने नामदेव के अभंगो की भाषा को अर्वाचीन बताकर भाषा विज्ञान के आधार पर नामदेव का काल ज्ञानेश्वर के पश्चात् एक शतक अर्थात् १४ वी शताब्दी माना है। वे लिखते है :—

> 'The fact remains that whatever the vocabulary, the grammar of the language of Nama's work as it is presented in the various Gathas, is far too modern to admit of Nama's being a contemporary of Dnyaneshwar.' [1]

डॉ० रा. गो. भांडारकर का मत

डॉ० भांडारकर के अनुसार नामदेव का काल ज्ञानेश्वर के काल के पश्चात् कम से कम सौ वर्ष बाद का हो। वे सुझाते हैं कि 'नामदेव के हिंदी पदो की भाषा तेरहवी शताब्दी के हिंदी कवि चंद की भाषा की अपेक्षा अर्वाचीन प्रतीत होती है। उनके मराठी के अभंगों की भाषा का स्वरूप भी अर्वाचीन होने के कारण तथा उनके गुरु विसोबा खेचर का मूर्ति-पूजा विरोध मुसलमानों के मत के साथ साम्य रखने के कारण नामदेव का काल मुसलमानो के शासन के प्रारंभ अर्थात् चौदहवी शताब्दी के आसपास हो। वे लिखते है :—

> 'The date assigned to the birth of Namdeo is Saka 1192 that is 1270 A. D This makes him a contemporary of Jnandev, the author of Jnandevi, which was finished in 1290 A. D. But the Marathi of the latter work is decidedly archaic, while that of Namdev's writings has a considerably more modern appearance. Nabhaji in naming the successors of Vishnuswamin places Jnandev first and Namdev afterwards . a more direct evidence for the fact that Namdev flourished after Mohammadans had established themselves in the Maratha country, is afford- ed by his mention in a song of the destruction of the idols by the Turks. Namdev, therefore, probably lived about or after the end of the 14 th Century.' [2]

---

1. 'Influence of Saints of the Prakrit Bhakti School in the Formation and Growth of Prakrit Language.'
—Wilson Philological Lectures, Bombay, 1917.
2. Vaishnavism Shaivism and Other Minor Religious Systems (1913) p. 97.

डॉ० भाडारकर ने अपने मत की पुष्टि मे निम्नलिखित प्रमाण दिये हैं—

(१) ज्ञानेश्वर की भाषा की तुलना में नामदेव की भाषा अर्वाचीन लगती है।

(२) यदि नामदेव का काल शक ११९२-१२७२ माना जाय तो १३ वीं शताब्दी के हिन्दी कवि चद की भाषा पुरानी प्रतीत होती है। उसकी अपेक्षा नामदेव के हिंदी पदो की भाषा अर्वाचीन लगती है।

(३) नाभादास ने विष्णुस्वामी की जो परपरा दी है उसमें ज्ञानेश्वर का नाम प्रथम और नामदेव का बाद में दिया है।

(४) नामदेव के गुरु विसोबा खेचर मूर्ति-पूजा के विरोधी थे। उन्होंने कहा है—'पाषाण की प्रतिमा कभी बोलती नहीं।'[1] इस्लाम भी मूर्ति पूजा का विरोधी है। मुसलमानों का शासन १४ वी शताब्दी मे दक्षिण में दृढमूल हुआ। अत विसोबा खेचर का काल भी यही हो।

(५) मराठवाड़े में मुसलमानो के प्रवेश अर्थात् १४ वी शताब्दी का अंत ही नामदेव का काल हो। यह उनके अभंग की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है—

ऐसे देव हृहि फोडिले तुरकी।
घातले उदकीं बोभातिना॥
(तुर्कों ने इस प्रकार मूर्ति भंजन किया।)

अब डॉ० भाडारकर के इन तर्कों पर क्रमश विचार करेंगे—

(१) भाषा का अर्वाचीनत्व

लोग नामदेव के मराठी अभगो की भाषा की नवीनता (अर्वाचीनता) की दृष्टि से उनका आविर्भाव काल ज्ञानदेव से सौ वर्ष बाद का मानते हैं। परन्तु आधुनिक भाषाएँ उतनी नवीन नहीं हैं जितनी बहुधा समझी जाती हैं।

ज्ञानदेव नामदेव के समकालीन अवश्य थे परतु उनकी भाषा की प्राचीनता का यह कारण नहीं है कि उस समय तक आधुनिक मराठी का आविर्भाव नहीं हुआ था बल्कि यह कि व्युत्पन्न होने के कारण परपरागत साहित्यिक भाषा पर उनका अधिकार था जिसे लिखने में साधारण पढे-लिखे होने के कारण नामदेव असमर्थ थे। स्वयं ज्ञानदेव ने सीधी-सादी मराठी में अभग रचना की थी।

नामदेव की भाषा की अर्वाचीनता के सबध में डॉ० रा० द० रानडे का मत द्रष्टव्य है—

---

१. पाषाणाचा देव बोलेविना कधी।

—सकल सत गाथा, अभंग १३६१

"The fact that there is a difference of language between Jnaneshwari and the Abhangs of Namdev is not an arguement to prove any difference of time between the two great saints. The originals of Namdev's Abhangs are not presreved. They have undergone successive change, as they were recited and have been handed over from mouth to mouth All these facts account for the modern-ness of Namdeva's style "[1]

(२) हिंदी कवि चंद और संत नामदेव—डॉ० भांडारकर नामदेव की हिंदी को अर्वाचीन तथा १३ वी शताब्दी के हिंदी कवि चंद की भाषा को पुरानी बताते है। इस संदर्भ में यह ध्यान में रखना होगा कि एक मराठी भाषी संत (नामदेव) ने हिंदी में रचना की है। उसकी भाषा अर्वाचीन न होकर मराठी-सदृश है। प्रत्युत चंद की मातृभाषा हिंदी होने से उसकी हिंदी शुद्ध हिंदी है वह प्राचीन नहीं।

एक ही कालखण्ड के परंतु विभिन्न मातृभाषी दो कवियो की भाषा शैली की तुलना समीचीन नहीं जान पड़ती है।

(३) विष्णु स्वामी की परंपरा—विष्णु स्वामी पंथ की परंपरा देते हुए नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में ज्ञानेश्वर के पश्चात् नामदेव का उल्लेख किया है। डॉ० भांडारकर ने इसे इन दोनों के समकालीन न होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। परंतु 'भक्तमाल' में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है।[२] अलबत्ता प्रियादास विरचित 'भक्तमाल' की रसबोधिनी टीका में 'भये उभे शिष्य नामदेव श्री त्रिलोचनजू' ऐसा उल्लेख है जो ज्ञानेश्वर को संबोधित कर किया गया है। प्रियादास को यही कहना अभिप्रेत है कि नामदेव ज्ञानेश्वर के शिष्य थे। ऐसी परिस्थिति में यह सिद्ध होता है कि ज्ञानेश्वर तथा नामदेव समकालीन थे।

(४) विसोबा खेचर का मूर्ति-पूजा विरोध—'पाषाण की प्रतिमा बोलती नहीं' यह बात कम से कम हिंदू धर्म के लिए तो नवीन नहीं थी। इसके लिए विसोबा को इस्लाम की शरण में जाने की आवश्यकता न थी। एक बात और यह कि मुसलमानों का शासन दक्षिण मे शक १२४० में अविरोध दृढमूल हुआ। इसके लिए १४वी शताब्दी तक ठहरने की आवश्यकता न थी।

(५) तुर्कों का निर्देश—नामदेव ने मूर्ति भजन के संदर्भ मे तुर्कों का उल्लेख किया

1. Mysticism in Maharashtra : R. D. Ranade P. 184.
२. श्री नामदेव चरित्र . पृ० ३८
प्रस्तावना व समीक्षण—र० ह० मालुंकर

है। डॉ० भांडारकर का कथन है कि The Mohamedans were often called Turkas i e Turkas by the Hindus in the early times ' परन्तु तुर्कों ने यह मूर्ति भजन दक्षिण में ही किया ऐसा नामदेव ने नहा कहा है। सभव है कि शके १२१२ में नामदेव ने ज्ञानेश्वर के साथ जो तीर्थयात्रा की उस समय की उत्तर भारत की परिस्थिति की ओर उन्होंने संकेत किया हो। दक्षिण में रहते हुए भी उत्तर में मुसलमानो के आक्रमणो का इस अभग में वणन करने की सभावना है।

कुछ अग्रेज ग्र थकारो जसे डा० निकाल मैकिनकाल[1] आदि ने डॉ० भाडार कर द्वारा निर्धारित नामदेव के जन्म काल को ही ग्राह्य माना है अत उनके मत के परीक्षण की आवश्यकता नही।

डॉ० जे० एन० फर्क्हर[2] ने नामदेव का काल ई० स० १४३० के आस पास निर्धारित कर उसके आधार पर रामानद का काल निश्चित किया है।

डा० मोहनसिंह का मत

डा० मोहनसिंह 'दीवाना[3] ने नामदेव का काल सन् १३६० और १४५० ई० के बीच माना है। इसका आधार उन्होंने नामदेव का मृत गाय जिलानेवाला पद[4] माना है, जिसके नामदेव रचित होने में डॉ० राजनारायण मौर्य को सदेह है।[5]

डॉ० मोहनसिंह ने फीरोजशाह बहमनी को ही वह सुलतान माना है जिस ने नामदेव को मृत गाय जिलाने की आज्ञा दी थी। वह दक्षिण में था और उसका काल सन् १३६७ से १४२२ ई० के मध्य का है। अन्य फीरोज सुलतान फीरोजशाह खिलजी (राज्यकाल सन १२८२ ई० से १२९६ तक) के साथ नामदेव के काल का मेल नही बैठता और फिरोजशाह तुगलक (राज्यकाल सन् १३५१ ई० से १३८८ ई० तक) के साथ स्थान का मेल नही बैठता क्योंकि फीरोजशाह न तो दक्षिण में आया था और न सत नामदेव दिल्ली ही गये थे। इसी आधार पर डा० मोहनसिंह ने नाम

---

1 Psalms of Maratha Saints (1919)

2 Historical Position of Ramanand
—J R A S of Great Britain & Ireland April 1920

३ भक्त शिरोमणि नामदेव की नई जीवनी नई पदावली, पृ० ३

४ सुलतानु पूछै सुनु बे नामा। देखउ राम तुमारे कामा ॥
—गुरु ग्रन्थसाहब नामदेव के हिंदी पद, ४७ वाँ

५ हिंदुस्तानी (जनवरी-मार्च १९६२) पृ० ११२

देव का काल खोंचकर आगे बढ़ा दिया है। उन्होंने एक और तर्क दिया है। वह है संत नामदेव का रामानंद का शिष्य होना। वे रामानन्द का जन्म सन् १४२० और ३० ई० के बीच तथा कबीर का सन् १४५० और ६० के बीच मानते हैं।

डॉ० मोहनसिंह के इन दोनों तर्कों में कोई तथ्य नहो है। इसका तो कहो उल्लेख भी नहो है कि *रामानन्द नामदेव के गुरु थे। मराठी और हिंदी साहित्य में* भी यह प्रचलित है कि संत ज्ञानेश्वर के पिता के गुरु रामानन्द थे। किन्तु श्री भावे[1] के मत से उनके गुरु श्रीपाद स्वामी थे। रामानन्द का काल आज भी निश्चित नहो है पर इतना अवश्य निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे संत नामदेव के गुरु नहो हो सकते।

आचार्य विनयमोहन शर्मा को इस घटना के घटित होने में हो संदेह है। यदि इस पर विश्वास करें तो यह पद प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—'यदि किसी सुलतान के दरबार में यह घटना घटी होती तो वह अवश्य हो लेखबद्ध हुई होती। हो सकता है यह घटनावाला 'पद' भगवान विट्ठल के नाम का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए रचा गया हो। उपर्युक्त कारणों से नामदेव का फीरोजशाह बहमनी के समय रहना सिद्ध नहीं होता।'[2]

इस घटना के आधार पर नामदेव के *काल को सौ वर्ष आगे ले जाना किसी* तरह तर्क-संगत नहो कहा जा सकता।

मेकालिफ का मत

मेकालिफ ने नामदेव के अभंग 'मार्फे जन्मपत्र बाबाजी ब्राह्मणों' का आधार लेकर शके ११९२ (तदनुसार स० १२७० ई०) को नामदेव का जन्म-शक माना है—'Namdeo was born on Sunday, the 11th day of the light half of the month of Kartik in the Shaka year 1192 i, e. 1270 A. D.'[3]

जनम साखी

सं० १८९८ ई० में बाबा पूरणदास की लिखी 'जनम साखी श्री स्वामी नामदेव जी की, में नामदेव की बाल विधवा कन्या लक्षावती की कथा आई है। इस कथा में कहा गया है कि अपनी १२ वर्ष की अवस्था में ही पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से उसके पेट से जो बालक पैदा हुआ वही नामदेव है। इस बालक का जन्म रविवार फाल्गुन

१. महाराष्ट्र सारस्वत: वि० ल० भावे, पृ० १३३।
२. हिंदी को मराठी संतों की देन पृ० ३०
3. Sikh Religion Vol. VI : Msauliffe

वद्य पचमी सवत् १४२० (स० १३६३ ई०) को हुआ—

समत चौदा से अरु बीस। चरत कीआ एह श्री जगदीस।
फाग मास आगमन करतूती।
रितु राज अनुप सुहाई। तिथ पचमी पाई वडाई।
रव दिन एक महूरत आईआ। वामकुमारी वालक पाईआ।

बाबा पूरणदास जी 'जनम साखी' के इस उद्धरण से फाल्गुन, वसत पचमी, रविवार सवत् १४२० को नामदेव का जन्मकाल निश्चित किया गया है। स्व० म० गो० आरटवरे ने[1] इसे त्याज्य ठहराया है क्योंकि पिले जन्त्री के अनुसार उस दिन रविवार न आकर गुरुवार आता है। अंग्रेजी तारीख फरवरी १३६४ आती है। और शके १२८५।

'रितु रितुराज अनूप सुहाई। तिथ पचमी '' के अनुसार बहुतो ने 'पचमी' को अपनी सुविधा के अनुरूप 'वसत पचमी' गृहीत कर चर्चा करने का प्रयत्न किया है।[2] परतु उपर्युक्त पक्ति में वसत पचमी का स्पष्ट उल्लेख नही है। केवल फाल्गुन मास तथा वसत ऋतु का उल्लेख है। वसतोत्सव माघ शुद्ध पचमी से फाल्गुन वद्य पचमी (रग पचमी) तक मनाया जाता है। सवत् १४२० (ई० स० १३६४) में माघ शुद्ध पचमी से लेकर फाल्गुन वद्य पचमी तक उपयुक्त तिथि को रविवार नही आता। स्व० श० पु० जोशी[3] का बताया (ई० स० १३६३) का जन्म वर्ष स्वीकार करने से फाल्गुन वद्य पचमी को रविवार आता है। परतु यह काल ज्ञानदेवोत्तर होने के कारण महाराष्ट्र के ज्ञानदेव के समकालीन नामदेव के काल से विसगत है।

'भगत नामदेवजी का जीवन चरित्त

पजाब (गुरु ग्रथ साहब) के नामदेव के जीवन की घटनाओ के साथ साम्य रखने वाली महाराष्ट्र के नामदेव के जीवन की घटनाओ का आधार लेकर अमृतसर की ट्रॅक्ट सोसायटी द्वारा स० १९०६ ई० म प्रकाशित 'भगत नामदेवजी का जीवन चरित्र' नामक पुस्तिका म महाराष्ट्र में प्रचलित नामदेव का जन्म शक ग्राह्य मान लिया गया

---

१. 'शिखाच्या आदि ग्रन्थातील नामदेव' (लेखाक दूसरा)
'लोकशिक्षण' (मराठी पत्रिका) अक्तूबर १९४०.

२ 'पजाबातील नामदेव सप्रदाय' एक महाराष्ट्रीय
'लोक शिक्षण' (मराठी पत्रिका) नवंबर १९३२

३ श्री नामदेव चरित्र र० ह० भालुकर की प्रस्तावना

है। इसमें भारद्वाज और भिगारकर के विवाद का उल्लेख कर कहा गया है—'असां ताँ नामदेव दे जनम मरणादि तारीखां वो जो मरहठी कताब विच दितो आ हन। उपरला सिटा कढिआसी अते ओह् सानु। ठीक वी मलूम देंदा है।'

स्व० बारटवके के अनुसार पंजाब युनिव्हसिटी के प्राध्यापक तथा लाहौर की गुरुद्वारा कमिटी के सभासद ग्यानी खजानसिंह ने कुछ घटनाओं को छोड़कर इसी मत का अनुमोदन किया है।

दरबार कमिटी घुमान द्वारा प्रकाशित बाबा भगतराम चरित 'श्री स्वामी नामदेव' शीर्षक जीवनी में बाबा भगतराय ने सं० १३७० ई० को नामदेव का जन्मकाल माना है।

पं० बलदेव प्रसाद ने 'संत बानी संग्रह' में नाभादास के 'भक्तमाल' के आधार पर नामदेव का जन्मकाल ई० स० १४२३ अर्थात् शके १३४५ के आस पास निश्चित किया है।

पं० बन्सीधर शास्त्री ने बाबा पूरणदास-चरित 'जनम साखी' में गृहीत नामदेव का जन्मकाल शक संवत् १४२० (शके १२८५) स० १३६३ ई० को ही प्रामाणिक माना है।

पजाबी परंपरा द्वारा अनुमोदित नामदेव के काल का कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है।

महाराष्ट्रीय विद्वानों के मत :

सुप्रसिद्ध दार्शनिक डॉ० रा० द० रानडे लिखते हैं कि नामदेव ही के एक अभंग के अनुसार उनका जन्म शके ११९२ में हुआ :—

"From an Abhang written by Namdeva himself, it seems that Namdeva was born in 1270 A. D. (Sake 1192), that is a few years before Dnanadeva. Namdeva tells us that a certain Brahmin Babaji by name had cast his horoscope, foretelling that Namdeva would compose a hundred crores of Abhangs'[१]

संत साहित्य के मर्मज्ञ डॉ० ह्रं० गो० तुलपुले बिना किसी तर्क के शके ११९२ ही को नामदेव का जन्मकाल मानते है—'संप्रति नीचे उद्धृत किये गये अभंग को आधार मानकर स्वर्गीय भिंगारकर ने नामदेव का जो काल निश्चित किया है, वह समीचीन प्रतीत होता है।'[२]

---

१. Mysticism in Maharashtra p. 185.

२. पाँच संत कवि,—पृ० १३७।

नामदेव-विरचित निम्नलिखित अभंग[1] को आधार मानकर श्री स० ग० पांगारकर नामदेव का जन्मकाल शके ११९२ मानते हैं—'शके ११९२, प्रभव संवत्सर, कार्तिक शुक्ल ११, रविवार को सूर्योदय के समय गोणाई प्रसूत होकर उसको जो पुत्र हुआ, उसका नाम नामदेव रखा गया।' श्री० पांगारकर नामदेव को अयोनिज मानते हैं।[2]

हिन्दी के विद्वानों के मत

आचार्य विनयमोहन शर्मा डॉ० मोहनसिंह 'दीवाना' के मत का खण्डन करते हुए नामदेव के जन्मकाल के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं—'ज्ञानदेव का समय उन्ही की कृति ज्ञानेश्वरी से प्राय. निर्णीत हो है। और वह है—सं० १२७५-१२९६ ई०। नामदेव, ज्ञानदेव की समाधि के लगभग ५० वर्ष बाद समाधिस्थ हुए अर्थात् १३५० ई० में उनका निर्वाण हुआ। उनका जन्म ई० सं० १२७० में हुआ। फीरोज बहमनी का काल १३९७-१४२२ ई० है जिसे नामदेव का काल नहीं माना जा सकता।'[3]

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी महाराष्ट्र में प्रचलित नामदेव के जन्म शक ही का अनुमोदन करते हैं—

'सन्त नामदेव के जन्म का समय कार्तिक सुदी ११ शके ११९२ (तदनुसार सन् १२७० ई० अथवा सं० १३२६) कहा जाता है और इस विषय में अधिक मतभेद नहीं दिखलाई पड़ता।'[4]

डॉ० बड़थ्वाल लिखते हैं—'मराठी के उनके एक अभंग से पता चलता है कि उनका जन्म संवत् १३२७ (सन् १२७० ई०) में हुआ था।'[5] इस विषय में वे डॉ० रानडे के मत से सहमत है।

डॉ० रामकुमार वर्मा नामदेव द्वारा दी गई तिथि को ही प्रामाणिक मानते हैं—'ये दामा सेट नामक दर्जी के पुत्र थे और इनका जन्म संवत् १३२७ (सन् १२७० ई०) में हुआ था।'[6]

---

१. माझे जन्मपत्र बावाजी ब्राह्मणें। सकल संत गाथा, अभंग १२५४
२. मराठी वाङ्मयाचा इतिहास (खंड पहला)—पृ० ५५५
३. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन—पृ० १०६
४. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—पृ० ११०
५. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—पृ० ९६
६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २१७

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार नामदेव का जन्मकाल शके ११९२ है। 'महाराष्ट्र देश में नामदेव का जन्मकाल शक संवत् ११९२ और मृत्यु काल शक संवत् १२७२ प्रसिद्ध है।'[१]

संभाव्य जन्म शक

ज्ञानदेवकालीन नामदेव का जन्मकाल निम्नलिखित तीन शकों के आधार पर निश्चित करना होगा—

(१) शके ११८५
(२) शके ११८६
(३) शके ११९२

श्री शं० पु० जोशी ने शके ११८५ को नामदेव का जन्मकाल माना है।[२]

श्री आजगांवकर ने अपने नामदेव चरित्र में इसी का अनुमोदन किया है।[३]

श्री भारद्वाज[४] ने शके ११८६ को त्याज्य ठहराया है। यह शक अभंग के साथ विसंगत होने के कारण उसको नामदेव का जन्म शक नहीं माना जा सकता।

ग्राह्य शक और अभंग की चिकित्सा

शके ११९२ को नामदेव का जन्मकाल स्वीकार करने से इस समस्या के हल होने की सम्भावना है। परन्तु इसमें एक बात खटकती है। शके ११९२ में 'प्रभव' नहीं बल्कि 'प्रमोद' संवत्सर आता है। इस विवाद विषय को छोड़ दिया जाय तो तिथि, वार तथा मास सब मेल खाते हैं। दोनों संवत्सरों के नाम का प्रारम्भ 'प्र' से होने के कारण लेखन-प्रमाद की भी सम्भावना है।

निष्कर्ष

'मार्फे जन्म पत्र बावाजी ब्राह्मणें' शीर्षक अभंग में नामदेव के जन्म के शक, मास, तिथि तथा वार आदि सम्बन्धी सत्य पर आधारित जानकारी पाई जाती है। इसमें विसंगतियाँ कम और सुसंगतियाँ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। ज्ञानदेवकालीन नामदेव के साथ इनका मेल बैठने से शक संवत् ११९२ को ही नामदेव का जन्म काल मानना उचित होगा।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं० २०२२ का संस्करण) पृ० ६८।
२. पंजाबातील नामदेव,—पृ० १५
३. संत शिरोमणि नामदेव महाराज आणि त्यांचे समकालीन सन्त।
४. श्री भारद्वाज के लेख: 'सुधारक' १८९८।

नामदेव का समाधि शक विकृत नाम संवत्सर शके १२७२, आषाढ़ वद्य १३, शनिवार निश्चित किया गया है। अत शके ११९२ को नामदेव का जन्म काल तथा शके १२७२ को उनका समाधि काल मानना 'ऐंशी वर्षे आयुष्य पत्रिका प्रमाण' इस चरण के साथ पूर्णतया सुसगत है।

जन्म स्थान

सबसे जटिल तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्न नामदेव के जन्म स्थान का है। जन्मकाल की ही तरह उनके जन्म स्थान के सम्बन्धो में भी अनेक मत प्रचलित है। इस विषय में अभी तक कोई एक निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकी है।

नामदेव के जन्म स्थान के सम्बन्ध मे दो मत प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) नामदेव का जन्म स्थान पढरपुर है।

(२) नामदेव का मूल गाँव नरसी है और वही उनका जन्म हुआ।

नामदेव का जन्म पढरपुर में होने के पक्ष मे निम्नलिखित प्रमाण उपलब्ध हैं—

जनाबाई अपने एक अभग में कहती है—'नामदेव के जन्म के पूर्व उसके माता-पिता पढरपुर में रहते थे। गोणाई ने पुत्र प्राप्ति के लिए मनौती की। उसको जो बेटा हुआ वही नामदेव है।[1]

सन्त एकनाथ ने नामदेव-जन्म की इसी कथा को दुहराया है।[2]

हिन्दी में नामदेव का सर्वप्रथम चरित्र लिखने वाले परिचयीकार अनन्तदास है। उन्होने 'नामदेव की परचै' में नामदेव का जन्मस्थान पढरपुर बताया है।[3]

डॉ० भागीरथ मिश्र स्पष्टत लिखते है कि 'नामदेव का जन्म कराड के नरसी

---

१. गोणाईने नवस केला। देवा पुत्र देई मला॥
सुद्ध देखोनिया भाव। पोटी आले नामदेव।
—आवटे प्रत, अभङ्ग १३६

२ द्वारकेहुनि विठु पढरीये आला। नामयाचा पूर्वज दामाशेटी वहिला।
—आवटे प्रत, अभङ्ग ३५४७

३ पढरपुर जहाँ नगर सबन भोग कराही।
नामदेव को पिता बसै वैरोजा माही॥
जाको पुत्र पुनीत नामदेव सब विधि पूरौ।
सकल सिरोमनि सन्त विप्र सूर निभै सूरौ॥
—नामदेव की परिचयी (हस्तलिखित प्रति)
जयकर ग्रन्थालय, पूना विश्वविद्यालय, पूना।

वामनी गाँव में हुआ था, और कुछ ही दिन पश्चात् उनके माँ-बाप पंढरपूर जाकर रहने लगे थे।'[1]

डॉ० भगीरथ मिश्र इस सम्बन्ध में डॉ० भाडारकर, माधवराव अप्पाजी मुले, पाडुरग शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य विनयमोहन शर्मा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी और मेकालिफ के मत का ही अनुसरण करते हैं। वे डॉ० शं० गो० तुलपुले, श्री० पांगारकर, श्री भावे, श्री केशवराव कोरटकर तथा डॉ० ईनामदार की इस स्थापना को अस्वीकार करते हैं कि नामदेव का जन्म परभणी जिले के नरसी वामनी गाँव में हुआ था।

इस सन्दर्भ में डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित का मत द्रष्टव्य है—'डॉ० भगीरथ मिश्र के विचारों में विभिन्न मतों के बीच समन्वय खोज निकालने की भावना ही प्रबल है। क्योंकि नामदेव द्वारा अपने पिता के सम्बन्ध में यह कहा जाना कि वह नरसी बमनी के निवासी थे यह सिद्ध नहीं करता कि नामदेव का जन्म भी वहीं हुआ था। और यह नरसी बमनी कराड के अन्तर्गत वाली ही है। नरसी बमनी उनके कुल का मूलस्थान हो सकती है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस अभंग में दामा शेट को नरसी बमनी का शिंपी बताया गया है उसे अनेक विद्वानों ने प्रक्षिप्त बताया है। अत. उसके आधार पर कुछ भी कहना सम्भव नहीं है।'[2]

सारा विवाद इस बात को लेकर चला है कि नरसी ब्राह्मणी कहाँ स्थित है? सातारा जिले के कराड के पास अथवा मराठवाडा के परभणी जिले में? इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। नरसी की स्थिति के सम्बन्ध में तीन मत प्रस्तुत किये जाते है :—

(१) कराड के पास कृष्णा-तट पर

(२) सोलापुर जिले की बार्शी के पास

(३) मराठवाड़ा के परभणी जिले में

अब हम क्रमश: एक-एक मत पर विचार करेंगे—

(१) कराड के पास कृष्णा तट पर .—डॉ० भाडारकर नरसी ब्राह्मणी गाँव को कराड के समीप सातारा जिले में स्थित बताते है जो अब बहे नरसिंगपूर अथवा कोले नरसिंगपूर कहलाता है।[3]

---

१. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली—पृ० ३२

२. नामदेव का कृतित्व . डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित—पृ० ११२
'राष्ट्रवाणी'—सन्त नामदेव विशेषांक,
—अक्तूबर-नवंबर, १९७०

३. वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर मायनर रिलीजस सिस्टिम्स—पृ० ८९

'श्री नामदेव चरित्र' के लेखक श्री माधव अप्पाजी मुले के अनुसार—'श्री नामदेव महाराज के वंश का मूल पुरुष यदुशेट था। यह जाति का 'शिंपी' (दर्जी) था और उसका उपनाम रेलेकर था। यह कराड के निकट कृष्णा-तट पर नरसी ब्राह्मणी नामक एक देहात का रहने वाला था। इसी देहात को बड़े नरसिंगपूर अथवा कोले नरसिंगपूर कहा जाता है।'[1]

बड़े नरसिंगपूर अथवा कोले नरसिंगपूर को ही नामदेव की नरसी मानकर तथा वहाँ के दैवत श्री नरसिंह का नामदेव के घराने के साथ सम्बन्ध दिखाते हुए स्व० पाटसकर लिखते हैं—

'नामदेव के पूर्वजों का कुल दैवत श्री नरसिंह था। वहाँ की समाधि नामदेव की न होकर उनके पूर्वजों की है जो नरसिंह के परम भक्त थे।'[2]

डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित भी नरसी को कराड के पास मानने के पक्ष में हैं। वे स्पष्टतया लिखते हैं—'यों तो कराड के पास की नरसी बमनी में उनके पूर्वज की समाधि भी है और इससे उनका मूलस्थान वह अधिक सिद्ध हो सकता है।'[3]

इस विषय में डॉ० बड़थ्वाल,[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,[5] आचार्य विनयमोहन शर्मा,[6] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी,[7] डॉ० रामकुमार वर्मा,[8] डॉ० रामचन्द्र

---

१. श्री नामदेव चरित्र (पुनर्मुद्रण, सन् १९५२), पृ० २७
२. बालभक्त श्री नामदेव महाराज दरोडेखोर होते काय? पृ० १३
३. नामदेव का कृतित्व: 'राष्ट्रवाणी'
—अक्तूबर नवम्बर १९७०,—पृ० ११२
४. 'नामदेव का जन्म सातारा जिले के नरसी बमनी गाँव में एक शैव परिवार में हुआ था।' —हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ९१।
५. 'ये दक्षिण के नरसी बमनी (सतारा जिला) के दरजी थे।
—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६८।
६. 'नामदेव ने नरसी ब्राह्मणी गाँव में जन्म धारण किया।'
—हिन्दी को मराठी संतों की देन, पृ० ८८।
७. 'इनका (नामदेव का) जन्म सातारा जिले के अन्तर्गत कन्हाड के निकटवर्ती किसी *नरसी बमनी गाँव में हुआ था।'*
—उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० १०९।
८. 'क्योंकि नामदेव का कुटुम्ब पहले नरसी बामणी गाँव (कन्हाड-सातारा) में ही निवास करता था। बाद में वह पंढरपुर में आ बसा था, जहाँ नामदेव का जन्म हुआ।' —हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २३९।

मिश्र[1] तथा मेकलिफ[2] भी यही मत रखते हैं।

(२) *सोलापुर जिले की बार्सी के पास :—ऐसा भी एक मत प्रस्तुत किया* जाता है कि नरसी ब्राह्मणी सोलापुर जिले की बार्सी के पास है। गाथा में बार्सी का उल्लेख दो बार आया है—

(१) बारसी भगवन्त तेरसी तिलया। बिट्ठलु सोयरीया पाडुरंगा ॥

अभंग १७५३।

यह अभंग विष्णुदास नामा का है संत नामदेव का नहीं।

(२) द्वादशीच्या गावीं जाहला उपदेश। देवाविण ओस स्थल नाहीं।

अभंग १३६१

इस अभंग से इतना ही पता चलता है कि विसोबा खेचर ने नामदेव को बार्सी के भगवंत के मंदिर मे उपदेश किया।

परन्तु सोलापुर जिले मे नरसी अथवा नरसी ब्राह्मणी अथवा नरसी बामणी नाम का गाँव आज भी नही है और पहले होने का प्रमाण उपलब्ध नही होता।

(३) मराठवाडा के परभणी जिले में :—कुछ वर्ष पहले तक अर्थात् सं० १९२६ ई० तक नरसी ब्राह्मणी को जिला सातारा में माना जाता था। पर १९२६ में पूना के भारत इतिहास संशोधक मंडल की त्रैमासिक पत्रिका मे श्री० केशवराव कोरटकर का एक लेख छपा जिसमें बताया गया कि नरसी ब्राह्मणी गाँव मराठवाडा के परभणी जिले में है। तब से लगभग सभी विद्वान् परभणी जिले की नरसी ब्राह्मणी को नामदेव का जन्मस्थान मानने लगे है। श्री पांगारकर, डॉ० शं० गो० तुलपुले, न्यायमूर्ति केशवराव कोरटकर, डॉ० हे० वि० इनामदार आदि इसी मत के समर्थक है।

श्री पांगारकर के अनुसार 'नरसी बामणी मोगलाई में परभणी जिले मे है।'[3]

डॉ० शं० गो० तुलपुले भी इस विषय में श्री पांगारकर से सहमत है—'उनका (नामदेव का) पिता दामा शेट शिंपी मूलतः परभणी प्रांत के नरसी बामणी गाँव का रहने वाला था।'[4]

---

१. 'बम्बई अहाते के सातारा जिलान्तर्गत नरसी बमनी ग्राम में नामदेव का जन्म हुआ।'

—संत नामदेव और हिन्दी पद साहित्य, पृ० ६०।

2. 'Namdev was the son of Damasheti, a tailor who resided at Narsi Bamani, a village near Karad'.

—Sikh Religion Vol. VI, p. 17.

३. मराठी वाङ्मयाचा इतिहास (खंड पहला) पृ० ५५५।

४. पाँच संत कवी, पृ० १३७।

न्यायमूर्ति केशवराव कोरटकर के अनुसार 'नरसी पुरानी हैदराबाद रियासत के (आज के महाराष्ट्र राज्य के) परभणी जिले के हिंगोली तालुके में है। ब्राह्मणी नाम का गाँव वहाँ नहीं है। अलबत्ता वामणी नामक एक गाँव है जो नरसी से दस कोस पर है। वह भी इसी परभणी जिले में है। ये दोनों गाँव परस्पर कैसे सबद्ध हुए यह कहा नहीं जा सकता। औंढ्या नागनाथ का मंदिर नरसी से पाँच कोस पर है। नामदेव चरित्र में ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि नामदेव प्रतिदिन नागनाथ के दर्शन के लिए जाया करते थे। नामदेव का नागनाथ के दर्शन के लिए प्रतिदिन नरसी से औंढ्या जाना सम्भव है परन्तु नरसी को यदि हम बार्शी के पास मानें तो नामदेव का नित्य नागनाथ के दर्शन के लिए जाना युक्ति सगत नहीं लगता क्योंकि बार्शी से औंढ्या नागनाथ ४० कोस अथवा उससे भी अधिक दूरी पर है। मेरा अपना गाँव कसबा कोरट है जो औंढा से तीन कोस पर है। मेरे गाँव ही में नहीं तो हमारे इलाके में सभी इसी नरसी को नामदेव की नरसी समझते है।'[1]

डॉ० हे० वि० इनामदार[2] श्री० केशवराव कोरटकर के मत का समर्थन कर नरसी को मराठवाडा के परभणी जिले में ही मानते हैं। वे निम्नलिखित तर्क उपस्थित कर नरसी को कराड के पास मानने वाले के मत का खण्डन करते हैं—

(१) दामा सेट का विट्ठल का उपासक होने की गाथा में[3] उल्लेख है परन्तु उनके नरसिंह के भक्त होने का कहीं निर्देश नहीं पाया जाता। प्रस्तुत अभंग प्रक्षिप्त है। उसी में नामदेव की डकैती का भी उल्लेख है।

(२) नरसिंह का मंदिर नरसिंगपुर में है और केशवराज की मूर्ति तावडे में है।

(३) श्री पाटसकर के अनुसार नरसिंगपुर के पास नदी तट पर जो समाधि है वह सिद्धेश्वर महाराज के बडे बेटे की है। वह समाधि नामदेव के पूर्वजों की नहीं है।

नरसी का मराठवाड़े में होने का एक और प्रमाण

महाराष्ट्र शासन के प्रकाशन विभाग ने 'महाराष्ट्र के जिले · परभणी' नामक एक पुस्तक बम्बई से प्रकाशित की है। इसमें औंढ्या नागनाथ, नरसी और वामणी इन तीन गाँवों का स्वतन्त्र रीति से उल्लेख किया गया है।

---

१. *'नामदेवाची नरसी'*, पृ० १२०-१२१।

—भारत इतिहास संशोधक मंडल, त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष ७ वाँ, अंक १-४।

२. संत नामदेव डॉ० हे० वि० इनामदार, पृ० ३०।

३. नरसी ब्राह्मणीचा दामा शेट शिंपी।
केशीराज रूपी मग्न असे।

—आवटे प्रत, अभंग १२४५।

इन तथ्यों के परीक्षण पर डॉ॰ इनामदार इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कराड के निकट का, कृष्णातट पर का आज का बहे नरसिंहपूर अथवा कोले नरसिंगपूर ही नामदेव की नरसी ब्राह्मणी है, यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता।'[१] वे स्पष्ट शब्दों में अपना निर्णय घोषित करते हैं कि परभणी जिले की नरसी बामणी ही नामदेव की नरसी है।

डॉ॰ आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार नरसी के मराठवाड़ा के परभणी जिले में होने के पक्ष में डॉ॰इनामदार ने जो तर्क दिये हैं वे समाधानकारक नहीं हैं। वे लिखते हैं—'डॉ॰ इनामदार के परभणी के पक्ष में दिये तर्क उतने सार्थक प्रतीत नहीं होते। डॉ॰ इनामदार, बचपन में ५-७ वर्ष की आयु तक तो नामदेव को पंढरपुर में ही मानते हैं और जिस अभङ्ग का सहारा लेकर परभणी के पक्ष का समर्थन करते हैं उसे स्वयं अन्यत्र प्रक्षिप्त और अप्रामाणिक कह चुके हैं।...न वे इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि बालपन की वह कौन-सी अवस्था थी जिसमें नामदेव पंढरपुर छोड़कर औढ्या के नागनाथ में अनुरक्त हो गये और नित्य पाँच कोस उनका दर्शन करने जाने लगे। साथ ही इस अप्रामाणिक अभङ्ग की प्रारम्भिक पंक्ति 'नरसी ब्राह्मणीचा दामा शेट शिंपी। केशिराज रूपी मग्न असे।' को अन्यत्र अस्वीकार करते हुए भी वे औंढ्या और केशव-राज मंदिरों की स्थिति का परभणी के पक्ष में समर्थन करने लगते हैं। वस्तुतः उनके कथन आत्मविरोधी हैं।'[२]

डॉ॰ दीक्षित का विचार है कि औंढ्या नागनाथ और विसोबा खेचर सम्बन्धी सारा कथानक नामदेव के बालपन का नहीं उनकी बड़ी आयु का है। केवल इसी आधार पर वे नरसी बमनी को परभणी के अन्तर्गत मानने के लिए तैयार नहीं हैं।

डॉ॰ इनामदार ने नरसी में नामदेव की समाधि होने का जो तर्क उपस्थित किया है उसके सम्बन्ध में भी डॉ॰ आनन्दप्रकाश का मत द्रष्टव्य है—'रहा यह कि वहाँ नामदेव की समाधि भी है तो उसके सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि यों तो कराड के पास की नरसी बमनी में उनके पूर्वज की समाधि भी है और इससे उनका मूलस्थान वह अधिक सिद्ध हो सकता है। दूसरे, समाधिस्थान अनिवार्यतः किसी का जन्मस्थान या या मूलस्थान नहीं होता। विशेषतः सन्तों की समाधि तो लोग कहीं भी बना लेते हैं। सन्त जन्मे कहीं और हों और मृत्यु का वरण कहीं और का हो। हो सकता है इसी

---

१. संत नामदेव. डॉ॰ हे॰ वि॰ इनामदार, पृ॰ २७।
२. नामदेव का कृतित्व : डॉ॰ आनन्दप्रकाश दीक्षित, पृ॰ ११२।
'राष्ट्रवाणी' का संत नामदेव विशेषांक, अक्तूबर, १९७०।

प्रकार नामदेव का भी नरसी बामणी जिला परभणी से कोई सीधा सम्बन्ध न हो।'[1]

इस समस्त ऊहापोह के बाद भी नामदेव का मूलस्थान अनिश्चय के गर्भ में ही बना रहता है। नामदेव-कृत 'नरसी ब्राह्मणी चा दामा शेट शिंपी। केशिराज रूपी मान असे' अभङ्ग को प्रक्षिप्त माना जाता है। परन्तु आज उसके अतिरिक्त कोई ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर नामदेव का जन्मस्थान निश्चित किया जा सके। विवाद्य बात यह है कि नरसी सातारा जिले के कराड के पास है अथवा मराठवाड़े के परभणी जिले में। नई खोज के अनुसार अधिकांश विद्वानों का झुकाव नरसी को मराठवाड़ा में मानने की ओर है। कारण यह है कि नामदेव-गाथा का यह उल्लेख—'नरसी ब्राह्मणीचा दामा शेट शिंपी' परभणी जिले की नरसी के साथ जितना मेल खाता है उतना कराड के पास की नरसी के साथ नहीं। यह भली भाँति सिद्ध हो चुका है। अतः इन सभी तथ्यों पर साधक बाधक विचार करने पर यह निर्णय तर्कसंगत लगता है कि परभणी जिले की नरसी ही नामदेव की नरसी है।

माता पिता एवं परिवार

श्री माधव अप्पाजी मुळे के अनुसार यदु शेट रेलेकर नामदेव के पूर्वज है।[2]

नामदेव के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में उनके अभङ्गों की अपेक्षा उनके परिवार के ३२ सदस्यों तथा जनाबाई के अभङ्गों से अधिक जानकारी मिलती है। जनाबाई के अनुसार नामदेव के परिवार में कुल पन्द्रह व्यक्ति थे :—

(१) दामा शेटी :	नामदेव का पिता
(२) गोणाई :	नामदेव की माता
(३) आऊबाई :	नामदेव की बहन
(४) नामदेव :	दामा शेटी का बेटा
(५) राजाई :	नामदेव की पत्नी
(६) नारा :	नामदेव का ज्येष्ठ पुत्र
(७) लाडाई :	नारा की पत्नी
(८) विठा :	नामदेव का दूसरा बेटा
(९) गोडाई :	विठा की पत्नी
(१०) गोदा :	नामदेव का तीसरा बेटा

१. संत नामदेव का कृतित्व : डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित, पृ० ११३।
—'राष्ट्रवाणी' का संत नामदेव विशेषांक, अक्तूबर १९७०।

२. श्री नामदेव चरित्र (पुनर्मुद्रण) सन् १९५२, पृ० २७।

(११) येसाई : गोंदा की पत्नी
(१२) महादा : नामदेव का चौथा बेटा
(१३) साखराई : महादा की पत्नी
(१४) लिंबाई : नामदेव की बेटी
(१५) जनाबाई : नामदेव के घर की दासी।

जन्म

नामदेव के जन्म के सम्बन्ध में बहुत सी अलौकिक कथाएं महाराष्ट्र तथा उत्तर भारत में प्रचलित हैं। महाराष्ट्रीय संतों के चरित्र-लेखक महीपति के अनुसार नामदेव की उत्पत्ति सीप से हुई।[1]

प्रियादास के अनुसार नामदेव एक विधवा के गर्भ से उत्पन्न हुए।[2]

नामदेव की गाथा का एक प्रक्षिप्त अभङ्ग भी सत्य का विपर्यास करने वाला है। 'परमात्मा ने शुक्ति (सीप) रूपी कमल दिया और कहा कि नौवाँ मास प्रारम्भ होने पर वह विकसित होगा।'[3]

क्या नामदेव अयोनिज थे ?

महीपति ने नामदेव को जो अयोनिज बताया है वह केवल उनकी महत्ता बढाने के लिए। प्रियादास का कथन तो आज के वैज्ञानिक युग में अवैज्ञानिक-सा लगता है। यह भी भक्त और भगवान् की महिमा दिखाने के लिए कहा गया है।

वास्तव में नामदेव अयोनि-संभव नहीं थे। स्वाभाविक रीति से ही अपनी माता के उदर से उनका जन्म हुआ। स्वयं वे कहते है—

'मेरी माता ने मुझे जन्म दिया।'[4]
छीपे के घर मेरा जन्म हुआ।'[5]

---

१. भक्त विजय (निर्णयसागर प्रति, १९५०) अध्याय चौथा।
२. भक्तमाल (सटीक) : प्रियादास प्रणीत, पृ० ३२५।
३. देवाने दिधले शुक्ति का कमल। म्हणे उकनेल नववे मासी॥ अ० १२४५।
४. प्रसवली माता मज मलमूत्री।
—गाथा पंचक, अ० १२५४।
५. छीपे के घर जनमु दैला।
—पंजाबातील नामदेव, पृ० ८६।

गोणाई कहती है कि 'नव मास तक मैंने गर्भ का बोझ ढोया।'[1]

जाति तथा व्यवसाय

प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत हर एक व्यक्ति का व्यवसाय उसकी जाति पर ही निर्भर होता था। अत. नामदेव अपना पैतृक व्यवसाय अर्थात् 'शिपी काम' (दर्जी का पेशा) करते थे। उनके जाति तथा व्यवसाय से 'शिपी (दर्जी) होने का उल्लेख उनके गाथा के अभंगो मे पाया जाता है—

'दर्जी के कुल मे मेरा जन्म हुआ।'[2]

गोणाई को आपत्ति है कि 'नामदेव अपने पैतृक व्यवसाय की ओर ध्यान नही देता।'[3]

'मेरा मन गज है और जिह्वा कैंची। दोनो की सहायता से मैं यम का बन्धन काटता हूँ। मै कपड़ा रंगने और सिलने का काम करता हूँ।'[4]

बाल्य काल

नामदेव के बाल्यकाल के सबंध में कई चमत्कारपूर्ण तथा असाधारण आख्यायिकाएं प्रचलित है। जनार्दन रामचंद्र[5] उन्हें ऊद्धव का अवतार मानते हैं। गार्सा द तासी[6] उनको विष्णु का तथा नरहरि मालू[7] सनत्कुमार का अवतार मानते है। एक अलौकिक घटना नामदेव के चरित्र के साथ जुड़ी हुई है। वह यह कि आठ वर्ष की आयु में

---

१. नव मास करी म्या वाहिलासी उदरी।
—गाथा पंचक, अ० १२६५।

२. शिपियाचे कुळी जन्म मज झाला।
—अ० १२४३।

३. शिवण्या टिपण्या त्वां घातले पाणी।
न पहासी परतोनि मराकडे॥
—सकल संत गाथा, अ० १२६६।

४. मन मेरे गजू जिह्वा मेरी काती।
मपि मपि काटऊ जम की फांसी।
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पृ० १८।

५. कवि चरित्र, पृ० १५२।

६. हिंदुई साहित्य का इतिहास, पृ० १३१।

७. भक्त कथामृत (मराठी) नरहरि मालू

उन्होंने अपने हाथ से विठ्ठल को दूध पिलाया था और नैवेद्य भी खिलाया था। उनका मन गृहस्थी में बिलकुल नहीं लगता था।

क्या बाल भक्त नामदेव डाकू थे ?

नामदेव की सांप्रदायिक गाथा में कई अभंग प्रक्षिप्त हैं। इनमें से छप्पन चरणों के एक अभंग 'नरसी ब्राह्मणीचा दामा शेट शिंपी'[१] के कारण नामदेव के विषय में गलत-फहमी फैली हुई है।

इस अभंग को हम ती भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) जन्म और बाल्य काल चरण १ से १६।

(२) युवावस्था चरण १७ से ३०।

दुर्भाग्य से नामदेव कुसंगति में पड़ गये और डकैती करने लगे।[२]

(३) उपरति चरण ३१ से ५६।

नामदेव को अपनी करतूत पर ग्लानि हुई और वे पंढरपुर चले गये।

नामदेव के जीवन की उपर्युक्त घटना के विषय में नामदेव-साहित्य के अध्येता अपने मत इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

श्री भावे यथा श्री आजगांवकर के अनुसार यह अभंग प्रामाणिक है। श्री भावे ने नामदेव की डकैती को पुष्टि देने वाले नामदेव की पत्नी राजाई के नाम से प्रसिद्ध दो अभङ्ग उद्धृत किये है।[३] श्री आजगांवकर ने नामदेव के डाकू बनने की घटना का सविस्तार वर्णन किया है।[४]

डॉ० रानडे ने नामदेव के डाकू होने के बारे में संदेह प्रदर्शित किया है।[५]

श्री पाटसकर के अनुसार छप्पन चरणों का यह अभङ्ग रचने वाला कोई अन्य चरित्रकार है, नामदेव नहीं।[६]

श्री रं० ह० भालुंकर[७] तथा डॉ० शं० गो० तुलपुले[८] के अनुसार यह अभङ्ग

१. नरसी ब्राह्मणीचा दामा शेट शिंपी।
केशिराज रूपी मग्न असे। अ० १२४५
२. प्राक्तनाचे योगे भरलासे ओहटा। पाडितसे वाटा चोरा संगे। —वही
३. महाराष्ट्र सारस्वत (पुरवणी सह) शके १८७६, पृ० १६५-१६८।
४. श्री नामदेव महाराज आणि त्यांचे समकालीन संत, पृ० २१-२४।
५. संत वचनामृत (प्रस्तावना) पृ० १६।
६. बाल भक्त नामदेव दरोडेखोर होते काय ? पृ० २०।
७. श्री नामदेव चरित्र (पुनर्मुद्रण) प्रस्तावना, पृ० ५७।
८. पाँच संत कवी (१९६२ का संस्करण) पृ० १३६।

नामदेव महाराज का नहीं है।

मेकालिफ ने इस घटना का अनुमोदन किया है।[1]

छप्पन चरणों के प्रस्तुत अभङ्ग में प्रामाणिक अंश कितना और प्रक्षिप्त कितना इस विषय में प्रा० या० ब० पटवर्धन को संदेह है। उनका सूचित करना है कि किसी ने चार पाँच अभङ्ग एकत्रित कर उसका कर्तृत्व नामदेव के नाम पर लगा दिया।[2]

गुरु

नामदेव ने किसको अपना गुरु माना था इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। अपनी आत्मकथा में नामदेव ने अपने पारमार्थिक जीवन की तीन घटनाओं का सविस्तार वर्णन किया है—

(१) नामदेव की विट्ठल भक्ति का परिवार के लोगों द्वारा विरोध

(२) संत ज्ञानेश्वर से उनकी पहली भेंट

(३) विसोबा खेचर से प्राप्त गुरु उपदेश

ज्ञानेश्वर से नामदेव की पहली भेंट शके १२१३ के आस पास हुई हो। तब नामदेव पंढरपुर के पांडुरंग के सगुणोपासक भक्त थे। उनकी भक्ति अंध थी। इस भेंट के अवसर पर संत गोरोबा ने मुक्ताबाई के कहने पर नामदेव की परीक्षा ली और कहा कि 'निगुरा' होने के कारण यह घट कच्चा है।

उपर्युक्त घटना का नामदेव के हृदय पर बड़ा आघात हुआ। पंढरपुर पहुँच कर उन्होंने विट्ठल के सामने अपनी आंतरिक व्यथा व्यक्त की। विट्ठल ने कहा—'तुम गुरु की शरण में जाओ 'तुम्हारा भवपाश टूट जायगा।'[3]

नामदेव गुरु की खोज में निकले और औंढा नागनाथ पहुँचे। उन्होंने देखा कि खेचर मंदिर के शिवलिंग पर पैर रखकर लेटे हैं। नामदेव जिधर उनके पैर उठाकर

---

१. दि सिक्ख रिलीजन (छठा भाग) पृ० २०।

2 'It is difficult to say how much of the abnormally long abhang extending over fifty six lines is genuine history and how much later addition'
—Prof. W. B. Patwardhan's article in Fergusson College Magazine Vol III, No 4 Jan 1913.

३. जाईं नाम्या जाईं गुरुसी शरण। तुटे भव बंधन तुझे वेगीं॥
—अभङ्ग १३६७।

रखते उधर शिवलिंग घूम जाता। नामदेव विसोबा खेचर के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और उन्होंने खेचरजी को गुरू के रूप में स्वीकार कर लिया।[1]

खेचरजी ने नामदेव को ब्रह्म के लिए विवेक एवं संसार से विरक्ति का भाव धारण करने को कहा।[2]

'खेचर ने नामदेव के सिर पर हाथ रखा और कान में 'तत्वमसि' महावाक्य का उपदेश दिया, जिससे नामदेव को विदेहावस्था प्राप्त हुई। देखिये भाव-विभोर होकर खेचर ने नामदेव को कैसा अद्भुत उपदेश दिया।'[3]

नामदेव ने खेचरजी के प्रति अपनी कृतज्ञता इन शब्दों में व्यक्त की—'सद्गुरु ने मुझ पर कृपा की और आत्म-स्वरूप मुझे दिखाया। उन्होंने उसकी प्राप्ति का साधन भी मुझे दिया। उन्होंने मेरा ज्ञान-चक्षु खोल दिया। उनकी कृपा से मुझे ईश्वर प्राप्ति का मार्ग मिला। मैं उनसे उऋण नहीं हो सकता। अब मैं उनके चरण न छोड़ूँगा।'[4]

'गुरु ने अपने उपदेशों से मेरा जन्म सफल कर दिया। मेरा दुःख नष्ट हो गया और मैं अपने अन्तर्तम में ब्रह्म-सुख की अनुभूति कर उठा हूँ। गुरु की कृपा से ब्रह्म-ज्ञान रूपी अंजन प्राप्त हो गया है।'[5]

---

१. खेचर भूचर तुलसी माला गुर परसादी पाइआ।

—गुरू ग्रन्थ साहब, खालसा प्रति, पद ३१।

२. विवेक वैराग्य शोधूनिया पाहे। तेणे तुज होय ब्रह्म प्राप्ति।

—अभङ्ग १३७४।

३. श्रवणी सांगितली मात। मस्तकी ठेवियेला हात।
पदपिंड विवर्जित केला नामा ॥१॥

—नामदेवाचा गाथा, पृ० ३१३, अभङ्ग १३८।

४. सद्गुरु नायकें पूर्ण कृपा केली। निज वस्तु दाविली माझी मज।
माझें सुख मज दाखविले डोला। दिधली प्रेम कला नाम मुद्रा ॥
डोळियाचा डोला उघडिला जेणे। लेववीले लेणें आनंदाचे।
नामा म्हणे निकी सापडली सोय। न विसंबे पाय खेचराचे ॥१॥

—सकल संत गाथा, अभंग १३६०।

५. सफल जनमु मोकउ गुर कीना।
दुख बिसारी सुख अंतरि लीना ॥ १ ॥
गिआन अंजनु मोकउ गुरि दीना।
राम नाम बिनु जीवनु मन हीना ॥ २ ॥

—सं० ना० हिं० प० पद २०४।

इस घटना ने नामदेव के जीवन में महान् परिवर्तन उपस्थित किया। उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। वे अब कहने लगे—'पाषाण की मूर्ति अपने भक्तों के साथ वार्तालाप करती है, ऐसा कहने वाले तथा सुनने वाले दोनों मूर्ख हैं।'[1]

गुरु कृपा से नामदेव निर्गुणोपासक हो गये। जो नामदेव विट्ठल की मूर्ति के सामने नाचते गाते थकते न थे वे अब कहने लगे—'मैं मंदिर की मूर्ति को फूल न चढ़ाऊँगा क्योंकि मंदिर में देवता नहीं है। परमात्मा की शरण में आने से आवागमन के फेर से मेरी मुक्ति हुई।'[2]

'मैं पत्ते तोड़कर मंदिर की मूर्ति की पूजा न करूँगा। वह पत्ते-पत्ते में है। वह सर्वव्यापी है।'[3]

इस अंत.साक्ष्य के आधार पर प्रमाणित होता है कि नामदेव के दीक्षा-गुरु विसोबा खेचर थे। इसमें संदेह नहीं।

कुछ विद्वान् संत ज्ञानेश्वर को नामदेव का गुरु मानते हैं क्योंकि नामदेव ने उनका नाम बड़ी श्रद्धा से लिया है परन्तु ज्ञानेश्वर उनके दीक्षा-गुरु नहीं थे। यह निश्चित है कि ज्ञानेश्वर के सहवास के कारण नामदेव में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। स्वयं नामदेव ने कहा है—'सत्संग से मुझमें आमूल परिवर्तन हुआ।'[4]

नामदेव की समकालीन कवयित्री संत जनाबाई ने सोपानदेव को नामदेव का गुरु का नाम बताया है।[5]

सोपानदेव नामदेव के गुरु थे यह जनाबाई की श्रद्धा की वाणी है, उसमें तथ्य नहीं है। नामदेव, ज्ञानेश्वर, निवृत्तिनाथ तथा सोपानदेव आदि को बड़े आदर की दृष्टि से

---

१. पाषाणचा देव बोलत भक्तातें सांगते ऐकते मूर्ख दोघे ॥
—पाँच संत कवी, पृ० १४८।

२. पाती तोड़ि न पूजूं देवा। देवलि देव न होई ॥
नामा कहै मैं हरि की सरना। पुनरपि जन्म न होई ॥१॥
सं० ना० हिं० प० पद ३५।

३. पाती तोड़ि न पाहन पूजौ। देवल देव न ध्याऊँगा।
पाँनि पाँनि परसोतम राता। ताकूं मैं न सताऊँगा ॥
सं० ना० हिं० प० पद ६६।

४. संत संगे माझी पालट झाली।
नामदेवाचा गाथा अभङ्ग ४५७, पृ० ३६६।

५. नामयाचा गुरु। खेहा सोपान सद्गुरु ॥
—श्री नामदेवाचा गाथा अ० २७५, पृ० ५६६

देखते थे। इन तीनों भाइयों पर नामदेव की अपार श्रद्धा को देखकर ही संभवतः जनाबाई ने सोपानदेव को नामदेव की गुरु कहा होगा।

नामदेव की यात्राएँ

एक भक्त के नाते नामदेव की कीर्ति दूर तक फैली हुई थी। उनकी कीर्ति सुनकर आलंदी के संत ज्ञानेश्वर उनके पास गये और यात्रा पर चलने का उनसे अनुरोध किया। नामदेव पंढरपुर नहीं छोड़ना चाहते थे परन्तु संत ज्ञानेश्वर के सहवास का लाभ उठाने के लिए वे उनके साथ जाने के लिए तैयार हुए। उन्होंने उनके साथ उत्तर भारत के तीर्थ स्थानों की यात्रा की। यह उनकी पहली यात्रा थी। 'तीर्थावली' के अभंगों में नामदेव ने अपनी इस यात्रा का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है।

श्री देवीसिंह चौहान[1] के अनुसार नामदेव की यह प्रथम यात्रा शके १२१६ के आसपास हुई हो। उन्होंने अपने 'ज्ञानोबाची काशी यात्रा शके १२१६' शीर्षक लेख में बताया है कि काशी के दशाश्वमेध घाट पर ज्ञानेश्वर मठ है। उसमें काले पाषाण के चबूतरे पर सात फुट की ऊँचाई का एक स्तंभ है जो ज्ञानेश्वर की काशी यात्रा की स्मृति में खड़ा किया गया है। इस स्तंभ पर संवत् १३५१ और उसके चार पाँच इंच नीचे 'ज्ञानोबा' ऐसे अक्षर खुदे हुए हैं। संवत् १३५१ के समान्तर शके १२१६ आता है। ज्ञानेश्वर के साथ नामदेव जब काशी-यात्रा पर गये थे तब वे यहीं ठहरे थे।

'तीर्थावली' के अभङ्ग नामदेव-कृत होने में डॉ० शं० दा० पेंडसे को संदेह है।[2]

यात्रा से लौटने पर संत ज्ञानेश्वर ने शके १२१८ (ई० स० १२९६) में आलंदी में समाधि ले ली। अपने गुरु-तुल्य परम मित्र के वियोग का नामदेव को अपार दुःख हुआ। उनका मन अब पंढरपुर से उचट गया। वे अकेले ही पंढरपुर से निकले और सीधे पंजाब पहुँचे। यह उनकी दूसरी यात्रा थी। यदि वे किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थान में रहते तो उनको आशंका थी कि तीर्थ-यात्रा के लिए आये हुए महाराष्ट्रीय संत जन उनको घर चलने के लिए कहेंगे। अतः उन्होंने उनको पूर्णतया अज्ञात घुमान जैसा दूरस्थ स्थान पसंद किया। यहीं पर वे अपने जीवन के अंत तक रहे और यहीं रहते हुए उन्होंने अपने हिन्दी पदों की रचना की।

उत्तर के विद्वानों का विचार है कि यद्यपि नामदेव का वास्तव्य प्रमुख रूप से पंजाब में हुआ फिर भी उन्होंने दूर-दूर की यात्राएँ कीं—

---

१. इतिहास आणि संस्कृति (त्रैमासिक जनवरी १९६९)

२. ज्ञानदेव आणि नामदेव : डॉ० शं० दा० पेंडसे पृ० ३३५

नामदेव भ्रमणशील व्यक्ति थे।[१]

'तुम्हारे दर्शन की उत्कंठा लगी हुई है चित्त एक स्थान पर रहता नहीं।'[२] नामदेव ने बद्रिकाश्रम की यात्रा भी की थी।[3]

"At the age of fifty he (Namdev) became indifferent to the world He travelled through the four quarters of India."[4] "He left home and started on his second pilgrimage which extended to the holy shrines in Northern India and ultimately to the Punjab which was destined to be his resting place for ever."[5]

नामदेव की समाधि

सर्व साधारण मनुष्य की तरह उम्र पूरी होने पर स्वाभाविक रीति से नामदेव की मृत्यु हुई ऐसा किसी ने नहीं कहा। नामदेव-भक्तों का विश्वास है कि जिस प्रकार संत ज्ञानेश्वर ने समाधि ली उसी प्रकार नामदेव भी समाधिस्थ हुए।

पंजाब में नामदेव की समाधि के बारे में एक विचित्र कथा प्रचलित है— नामदेव अपना भौतिक शरीर घुमान में छोड़कर सुरत-स्वरूप पंढरपुर चले गये और वहाँ समाधिस्थ हुए। घुमान के मंदिर में उनके शरीर पर चादर डाल दी गयी थी। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि यह भेद किसी को ज्ञात न हो। तीन दिन के पश्चात् शिष्यों ने देखा कि वे पहले ही काल-वश हो चुके हैं। उन्होंने उनकी अंत्य क्रिया की और समाधि भी बनवाई।[६]

तीन स्थानों पर नामदेव की समाधियाँ बताई जाती हैं। उनके बारे में विद्वानों के मत इस प्रकार हैं—

घुमान की समाधि

'घुमान में नामदेव की समाधि का भव्य मंदिर है।'[७]

१. परिचयी साहित्य : डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृ० ८६

२. भेटीची आवडी उत्कंठित चित्त। न राहे निवांत एके ठायीं।
सकल संत गाथा, अभङ्ग १६३६

3. Selections from Hindi Literature p. 112 —by Lala Sitaram

4 Shri Swami Nemdev : by Bansidhar Shastri p. 124.

5. Shri Swami Namdev : by Bhagat Ram p. 14-16.

६. जनम साखी

७. श्री नामदेव चरित्र (पुनर्मुद्रण) प्रस्तावना रं० हु० भालेकर पृ० १०१।

'A Shrine is dedicated to his memory and is still in use at Dhoman in Gurdaspur district.'[१]

'His samadhi (tomb) was built in the same Mandir at Dhoman by his disciples The existing temple at Dhoman known as the Mandir of Shri Swami Namdev is one of the most beautiful *Shrines in the punjab.*'[२]

नरसी की समाधि

नरसी मराठवाड़ा के परभणी जिले में है। गाँव से दो फर्लाङ्ग की दूरी पर कयाधू नदी के किनारे नामदेव की समाधि है। वहाँ एक छोटा-सा मंदिर भी है। फाल्गुन वद्य ११ को वहाँ मेला लगता है। स्वयं श्री कोरटकर को अपनी जानकारी के विश्वसनीय होने में संदेह है।[3]

पंढरपुर की समाधि

नामदेव के शिष्य परिसा भागवत के एक अभंग[४] द्वारा सन् १३५० ई० में पंढरपुर में ही नामदेव की समाधि लेने की बात पुष्ट होती है।

प्रिन्सिपल दाडेकर के अनुसार नामदेव की समाधि पंढरपुर में महाद्वार के पास है। उन्होंने आषाढ वद्य १३ शके १२७२ को समाधि ली। नामदेव ने अपने एक अभंग में अपने आपको सीढ़ी का पत्थर कहा है। इस सीढ़ी के पत्थर को संतो के चरणों का स्पर्श होने से उनका उद्धार होगा।'[५] श्री दांडेकर का विचार है कि नामदेव ने सपरिवार समाधि ली। उनकी पुत्र वधू लाडाई गर्भवती होने के कारण मायके गई थी। वह अकेली पीछे रह गई।[६]

---

1. An outline of the Religious Literature of India : by J. N. Farquhar p. 299
2. Shri Swami Namdev : by Bhagat Ram p. 11,
३. नामदेवाची नरसी—केशवराव कोरटकर —भ० इ० सं० मंडल त्रैमासिक पत्रिका शके १८४८ अंक १-४।
४. आपाढ शुक्ल एकादशी। नामा विनवी विठ्ठलासी।
आज्ञा द्यावी हो मजसी। समाधि विश्रांति जागी॥
५. नामा म्हणे आम्ही पायरीचे चिरे। संत पाय हिरे देती वरी॥
श्री नामदेवाचा गाथा, पृ० ३८१ अभङ्ग २३३।
६. महाराष्ट्रीय संत : वाङ्मय व जीवन, शं० वा० दाडेकर।

नामदेव के समाधि स्थानों के बारे में अपना मंतव्य देते हुए डॉ० भगीरथ मिश्र कहते हैं—

'उक्त स्थानों और घटनाओं में से किसी एक को भी सत्य मानने के लिए ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं। पर यह बात ठीक लगती है कि उन्होंने समाधि घुमान में ली होगी। इसके लिए पहली बात यह है कि महाराष्ट्र में संत नामदेव के अंतिम काल का विवरण नहीं प्राप्त होता। दूसरी बात यह है कि जब नामदेव अपने जीवन के अंतिम दिनों में लगभग बीस वर्ष तक घुमान में रहे तो समाधि लेने के लिए पंढरपुर में आये हों यह बात संगत नहीं लगती। अधिक संभव है कि नामदेव ने घुमान में ही समाधि ली हो। उनका कोई शिष्य अस्थि या फूल लेकर पंढरपुर आया होगा और नामदेव की भक्ति के अनुसार विठ्ठल मंदिर के महाद्वार पर रख दिया होगा। उस स्थान पर बाद में समाधि बनाई गई।'[1]

ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में डॉ० मिश्र का निष्कर्ष समीचीन जान पड़ता है।

नामदेव का व्यक्तित्व

किसी कवि अथवा लेखक का साहित्यिक व्यक्तित्व उसके लौकिक व्यक्तित्व के जितना ही सत्य तथा महत्त्वपूर्ण होता है। नामदेव की मराठी तथा हिन्दी रचनाओं से उनके इन दो व्यक्तित्वों का परिचय मिलता है। आत्मनिवेदनपरक शैली में लिखे उनके अभङ्गों में उनके आचरण तथा व्यवहार का बड़ा ही मनोज्ञ चित्र अंकित हुआ है।

नामदेव का बाह्य रूप

नामदेव की देहयष्टि, उनकी शक्ल-सूरत, उनकी पोशाक आदि के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती। परंपरा से प्राप्त होने वाले उनके चित्र में उनको घुटनों तक धोती, माथे पर पगड़ी, एक हाथ में वीणा तथा दूसरे में करताल लेकर विठ्ठल के सामने कीर्तन करते हुए चित्रित किया गया है—

जनाबाई ने नामदेव के बाह्य रूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

'रस्सी की करधनी और चीथड़ों की लँगोटी पहने नामदेव चंद्रभागा के रेतीले मैदान पर कीर्तन करते हैं।'[2]

---

१. संत नामदेव की हिंदी पदावली, पृ० ३६।

२. सुंभाचा करदोरा रखट्याची लँगोटी।
नामा वाळवंटी। कथा करी॥ १॥
—नामदेवाचा गाथा पृ० ५६७, अभङ्ग २८१।

नामदेव का आंतरिक रूप

संत नामदेव एक सीधे-सादे, निष्कपट तथा परम भावुक भक्त थे। वे स्वभाव से बहुत ही ऋजु थे। वे भ्रमणशील, बहुश्रुत तथा वाक्पटु थे।

(१) भावुकता : संत ज्ञानेश्वर ने स्थान-स्थान पर नामदेव के परम भावुक होने का वर्णन किया है—

'तुम्हारा अंतःकरण भगवद्भक्ति में आर्द्र है।'[1]

'तुम पंढरीनाथ के प्रेम भाडारी अर्थात् खजाची हो।'[2]

'नामदेव तो साक्षात् प्रेम मूर्ति है।'[3]

नामदेव का मन अतीव संवेदनशील है। ज्ञानेश्वर के समाधिग्रहण के करुण प्रसग का वर्णन करते हुए उनका गला रुँध जाता है। वे कहते है—'चील आकाश में उड़ गई और घोसले में आग लग जाने के कारण उसके बच्चे झुलस गये।'[4]

(२) ऋजुता : ऋजुता नामदेव की उल्लेखनीय विशेषता है। उनकी वृति सरल, निरागस तथा नम्र है। ज्ञानेश्वर को वे अपना परिचय इन शब्दो में देते है—'मै दीन तथा मूढ़ मति हूँ। मै संतो के चरणो का दास हूँ।'[5]

ज्ञानेश्वर के साथ यात्रा पर जाने में अपनी विवशता बताते हुए वे कहते है—

'पंढरपुर के चौक का रक होकर मैं महाद्वार की रक्षा करूँगा।'[6]

(३) प्रथाध्ययन : नामदेव ज्ञानेश्वर की भाँति व्युत्पन्न नही है। उन्होने अध्यात्म विषयक ग्रन्थो का विधिवत् अध्ययन भी नही किया था। उन्होने सविनय कहा है—

---

१. प्रेमाचा जिव्हाळा तुझ्या हृदयी आला।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग ६२२।

२. पंढरीरायाचा तू प्रेम भाडारी।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग ६२५।

३. हरिदासामाजी होसी तूं आगला। प्रेमाचा पुतला नामदेव।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग १२३६।

४. नामा म्हणे देवा घार गेली उडोन। बाळे दानादान पडियेली
—सकल संत गाथा,अभङ्ग १०६७।

५. तरी मी एक दीन मूढ मतिहीन। चरणाचा रज रेणु संतांचिया।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग ६३१।

६. रंक होऊनिया पंढरी चोहटा। राखेन दारवंटा महाद्वारी।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग ६१५।

'मैं बहुश्रुत नहीं हूँ तथा ज्ञानशील भी नहीं हूँ।'[1] फिर भी वे चिंतनशील थे।

(४) वाक् चातुर्य : निम्नलिखित प्रसंगों से उनका संभाषण कौशल्य प्रतीत होता है—

(१) 'तीर्थावली' का ज्ञानेश्वर-नामदेव संवाद

(२) परसा-नामदेव संवाद

(३) नामदेव-गोणाई संवाद

अपनी शांत प्रवृत्ति तथा वाक् चातुर्य से नामदेव ने सर्वसाधारण के अंत:करण जीत लिए थे।

(५) भ्रमणशीलता :—नामदेव भ्रमणशील थे। 'नामदेव की यात्राएँ' नामक उप-शीर्षक के अन्तर्गत उनकी भ्रमणशीलता पर विचार किया गया है। नामदेव भागवत धर्म के प्रभावशाली प्रचारक थे। उनमें एक प्रकार का (Missionary Spirit) था। जीवन के उत्तरार्ध में उन्होंने पंजाब की यात्रा की।

हिंदी रचनाओं के आधार पर नामदेव का व्यक्तित्व

हिन्दी रचनाओं के आधार पर नामदेव एक भावुक भक्त नहीं रहते। वे एक विचारशील संत ज्ञात होते हैं। विसोबा खेचर से निर्गुण-निराकार का उपदेश पाकर नामदेव में महान् परिवर्तन हुआ।

ब्रह्म की सर्व व्यापकता (सर्व खलु इदं ब्रह्म)

जो नामदेव पंढरपुर के विट्ठल और विट्ठल मंदिर को एक क्षण के लिए भी छोड़ने को तैयार नहीं थे वे अब कहने लगे :—

'मंदिर में देवता नहीं होता अतः मैं उसको फूल न चढ़ाऊँगा।'[2]

मैं जिधर भी देखता हूँ उधर वही एक सर्वव्यापक और सर्वपूरक ईश्वर दिखाई देता है। सारा विश्व गोविंद-मय है। तरंग, फेन और बुदबुदा जैसे जल से भिन्न नहीं है वैसे ही यह प्रपंच (संसार) ब्रह्म की लीला है और उससे अभिन्न है। नामदेव कहते हैं—रे मानव! ईश्वर की सृष्टि को अपने हृदय में विचार कर देख।

---

१. नव्हे बहुश्रुत नव्हे ज्ञानशील।

—सकल संत गाथा, अभङ्ग ६२४।

२. पाति तोड़ि न पूजूं देवा। देवलि देव न होई।
नामा कहै मैं हरि की सरना। पुनरपि जन्म न होई॥

—स० ना० हिं० प० पद ६५।

एक ही ईश्वर घट घट और चराचर में समान रूप से व्याप्त है।''[1]

''उस सनेही राम के मिलते ही पारस के स्पर्श के समान सब कुछ कंचन हो जाता है। फिर तो 'ठाकुर' व 'जन' तथा 'जन' व 'ठाकुर' एक हो जाते है। स्वयं देव स्वयं मन्दिर व स्वयं पूजन बनकर जल व तरंग की भाँति एक आकार धारण कर लेते है और उनकी भिन्नता केवल नाम मात्र की रह जाती है।'[2]

'प्रत्येक जीव में भगवान है। भगवान के बिना अन्य कौन उसे प्रेरित कर सकता है? हाथी और चींटी एक ही मिट्टी के बने है। जड़ चेतन सब में भगवान समाया हुआ है। मुझे केवल उसी की चिंता करनी चाहिए। जीवन के निष्काम होने पर भक्त और भगवान में कोई अन्तर नहीं रह जाता। दोनों अद्वैत हो जाते हैं।'[3]

इनकी भावुकता इन पदों में इतनी मात्रा में बढ़ी हुई दीख पड़ती है कि ये अपने एक ही उद्गार को स्पष्ट करते समय अनेक उदाहरण देते भी नहीं अघाते।

उदार व्यक्तित्व

प्रायः देखा जाता है कि भिन्न-भिन्न धार्मिक संप्रदायों मे धार्मिक विचारों तथा

---

१. सभु गोविंदु है सभु गोविंदु है, गोविंद बिनु नहि कोई।
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जलतें भिन्न न कोई॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई।
कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बिचारी।
घट घट अंतरि सरब निरंतरी केवल एक मुरारी॥
—सं० ना० हिं० प० पद १५०।

२. बदहु किन होड माधऊ मोसिऊ
ठाकुर ते जनु जन तें ठाकुर खेलु परिउ है तोसिऊ॥
आपन देऊ देहुरा आपन आप लगावै पूजा
आपहि गावै आपहि नाचै आप बजावै तूरा
कहत नामदेऊ तू मेरे ठाकुर जनु ऊरा तू पूरा॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६१।

३. सभै घट रामु बोलै रामा बोलै।
एकल माटी कुंजर चीटी भाजन हैं बहु नाना रे।
असथावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे॥१॥
एकल चिंता राखु अनंता अउर तजहु सभ आसा रे।
प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुर को दासा रे॥२॥

सिद्धांतो के विषय में उदारता कम होती है। नामदेव इस नियम के अपवाद थे। उन्होंने जब देख लिया कि सगुण-भक्ति बहुत उपयोगी नही है तो उन्होंने उसका त्याग किया और निर्गुणोपासना में लगे।

'गंतव्य स्थान पर पहुँचने पर उन्होंने सीढ़ी का त्याग किया।'[१]

इस प्रकार के परिवर्तन से पता चलता है कि वे दुराग्रही अथवा पूर्वाग्रही नही थे बल्कि एक विचारशील भक्त थे। प्रामाणिक और तर्कसंगत बात को स्वीकार करने में उनको कोई हिचक नही थी। वें कट्टर नही बल्कि उदार मना थे। उनको जहाँ से जो अच्छी चीजें मिली उनको उन्होंने ग्रहण किया। कबीर के शब्दो मे—

साधू ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय॥

वे सच्चे साधु थे उन्होंने सार को ग्रहण किया और थोथे को उड़ा दिया।

संत परम्परा मे नामदेव का कार्य महान् है। संत मत की स्थापना उनके द्वारा हुई। उनके द्वारा लगाई इस बेलि को कबीर ने सींचा, विकसित और पुष्ट किया। संत पीपा ने निर्गुण पंथ तथा संत मत के सम्बन्ध में नामदेव और कबीर दोनो का महत्त्व समझा। वे कहते हैं—

जे कलि नाम कबीर न होते।
तौ लोक, वेद अरु कलि जुग मिलि करि भगति रसातल देते॥

हमसे पतित कहो क्या कहते कौन प्रतीति मन धरते।
नाना बरन देखि सुनि स्रवनो बहुमारग अनुसरते॥

नृगुणी भगति रहित भगवंता बिरला कोई पावै।
सोइ कृपा करि देहु कृपानिधि नाम कबीरा गावै॥

अपनी भगति काज हरि आपै, निज जन आप पठाया।
नाम कबीरा साँच प्रकास्या, तहाँ पीपै कछु पाया॥

पीपा का उपर्युक्त कथन सचमुच बड़े महत्त्व का है। नामदेव और कबीर ही ऐसे भक्त हुए जिन्होंने सत्य को प्रकाशित किया। निर्गुण भक्ति के लिए नामदेव और कबीर का ही नाम लिया जाता है। चूँकि नामदेव कबीर के पूर्व हुए थे इसलिए उनका महत्त्व कबीर से भी अधिक है।

---

१. पाया महल तब तजी निसरणी॥

—सं० ना० हि० प०, पद ५६।

रचनाएँ

कहा जाता है कि नामदेव ने शत कोटि अभंग बनाने की प्रतिज्ञा की थी।[1] इससे लगता है कि इनकी रचनाएँ बहुत अधिक होंगी। इनके 'शत कोटि' का अर्थ प्रचुर मात्रा मे लेना ही समीचीन है। आज नामदेव के अभंगो के पाँच छपे हुए गाथा उपलब्ध है जिनमें लगभग ढाई हजार अभंग इनके नाम पर मिलते है परन्तु नामदेव के नाम से प्रचलित सभी अभंग नामदेव के नही है। छपे हुए गाथाओ में ऐसे भी पद पाये जाते हैं जिनमें कबीर और कमाल का उल्लेख है जो नामदेव के बाद के है। जैसे 'कबीरा धूम मचाई' आदि।

इन पाँच गाथाओ में जो ढाई हजार के लगभग अभंग मिलते है उनमें से छः सात सौ अभङ्ग ही मूलतः नामदेव के होंगे, शेष सभी प्रक्षिप्त है। डॉ० तुलपुले के अनुसार नामदेव की गाथा मे विष्णुदास नामा के अभङ्गो की प्रचुर मात्रा में जो खिचड़ी हुई है उसमें से नामदेव के अभङ्ग अलग करने की कोई अचूक तरकीब नहीं है।[2] डॉ० भगीरथ मिश्र भी डॉ० तुलपुले के मत का समर्थन करते हैं।[3]

मराठी गाथा की प्रतियाँ

(१) नामदेवाची आणि त्यांच्या कुटुम्बातील व समकालीन साधूंच्या अभंगांची गाथा : इसके संकलन-कर्ता है श्री तुकाराम तात्या धरत। यह गाथा 'तत्त्व विवेचक प्रेस' बम्बई से सन् १८९४ ई० में प्रकाशित हुई। जैसा कि शीर्षक से ही विदित होता है इसमें नामदेव, उनके परिवार और तत्कालीन अन्य संतो के मराठी अभङ्ग हैं। इसके पृ० ६४५ से ६७७ तक 'हिन्दुस्तानी भाषेंत अभङ्ग' शीर्षक के अन्तर्गत नामदेव के १०६ हिन्दी पद (पद संख्या २३४५ से २४५० तक) है।

(२) 'नामदेवाची गाथा' (आवृत्ति दूसरी) रा० श्री० गोंधलेकर जगद्धितेच्छु छापाखाना, पुणें सन् १८९६.

(३) 'श्री नामदेवाचा गाथा' . इसके संकलन कर्ता ह० भ० प० विष्णु नरसिंह जोग है। यह गाथा शक १८४७ में पूना के चित्रशाला प्रेस से प्रकाशित हुई। नामदेव के नाम से प्राप्त होने वाले सभी मराठी पदों का यह अच्छा सग्रह है। इसके चौथे भाग

---

१. शत कोटी तुझे करीन अभङ्ग। म्हणे पांडुरंग ऐक नाम्या॥
श्री नामदेवाचा गाथा, पृ० ३१७, अभङ्ग १६२।

२. पाँच संत कवी : डॉ० शं० गो० तुलपुले, पृ० १३८-१३६।

३. संत नामदेव की हिंदी पदावली
—डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० ४०।

में पृ० ४५५ से ४७३ तक 'हिन्दुस्तानी पदें' शीर्षक के अन्तर्गत १०२ पद हिन्दी के हैं।

(४) 'श्री नामदेव महाराज याच्या अभङ्गाची गाथा' (जनाबाई, नारा, गोंदा, विठा, परिसा भागवत, गोणाई, राजाई, लाडाई, आऊबाई तथा लिंबाई के अभङ्गों के साथ) इसका सम्पादन श्री त्र्यंबक हरी आवटे ने किया है और सन् १८३० में यह गाथा इंदिरा प्रकाशन पूना से प्रकाशित हुई है। इस गाथा में नामदेव के मराठी अभङ्गों के अतिरिक्त उनके परिवार तथा समकालीन कुछ अन्य संतों के अभङ्ग भी दिये हैं। गाथा के आठवें भाग में पृ० ६७८ से ७०० तक (पद संख्या २३२५ से २४२६ तक) 'हिन्दुस्तानी पदें' शीर्षक से १०२ हिन्दी पद हैं। रागों के नाम इसमें नहीं हैं।

(५) 'श्री नामदेवरायाची सार्थ गाथा'

इसके संकलन कर्ता, टिप्पणीकार और प्रकाशक हैं श्री प्रल्हाद सीताराम मुकन्द। इस गाथा में मूल अभङ्गों के साथ मराठी अर्थ भी है। अब तक इसके छः भाग प्रकाशित हो चुके हैं। गाथा के पाँचवें भाग में नामदेव के ६१ हिन्दी पद हैं। ये सभी पद 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' के ही हैं।

नामदेव के मराठी अभङ्गों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) बाल क्रीड़ा (२) श्री कृष्ण लीला
(३) पंढरी महात्म्य (४) नाम महात्म्य
(५) संत महिमा (६) कलि काल के प्रभाव का वर्णन

(७) निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, ज्ञानदेव तथा मुक्ताबाई आदि के समाधि लेने के प्रसंग के अभंग।

हिंदी की रचनाएँ

अपने जीवन के उत्तरार्ध में उत्तर भारत की यात्रा करते हुए नामदेव ने हिन्दी में कुछ पदों की रचना की। वास्तविक बात यह है कि संत नामदेव की रचनाओं का अभी तक हिन्दी संसार को पता ही नहीं था। ग्रन्थ साहब के ६१ पद ही अभी तक नामदेव की सम्पूर्ण हिन्दी रचना समझी जाती थी। आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी को मराठी संतों की देन' में ११ और पद दिये हैं जो ग्रन्थ साहब से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त संत नामदेव की गाथा में १०२ हिन्दुस्तानी पद हैं जिनमें कुछ ग्रंथ साहब के हैं और कुछ और दूसरे। किन्तु नामदेव की हिन्दी रचनाएँ इतनी ही नहीं हैं।

इस संदर्भ में डॉ० राजनारायण मौर्य का मत द्रष्टव्य है—'मुझे विभिन्न प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियों से कुल ३०० पद नामदेव के प्राप्त हुए हैं। हस्तलिखित प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सेंट्रल पब्लिक लायब्रेरी पटियाला, बाबा नामदेवजी का गुरुद्वारा घुमान (गुरदासपुर) पंढरपुर, पूना विश्वविद्यालय आदि

स्थानों से प्राप्त हुई है। कुछ प्रतियाँ जयपुर में भी है। रज्जब की 'सर्वंगी' में भी नामदेव के ५० से ऊपर पद संग्रहीत है। और भी सन्त वाणियों के अनेक संग्रहों में नामदेव के पद है।"[1]

विभिन्न हस्तलिखित प्रतियो में कुल २३४ के लगभग हिन्दी के पद नामदेव के नाम पर मिलते हैं जो पूना विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'संत नामदेव की हिन्दी पदावली' नामक संकलन में संग्रहीत किये गये है। इस पदावली के सम्पादक है डॉ० भगीरथ मिश्र तथा डॉ० राजनारायण मौर्य। इनमें से एक दो पद गोरखनाथ के नाम पर प्रसिद्ध है एक दो कबीर के नाम पर और एक दो अन्य संतो के नाम पर। इन पदो में से लगभग १७०-१७५ पद अवश्य ही नामदेव के है क्योंकि उन पर स्पष्ट रूप से मराठी की छाप है।

देखना यह है कि इन रचनाओं में प्रामाणिकता कहाँ तक है। नामदेव के सौ वर्ष बाद के कबीर की रचना और पाठ निर्णय का अभी पहला प्रयास डॉ० पारसनाथ तिवारी (प्रयाग) द्वारा हो पाया है तब नामदेव की प्राप्त रचनाओं की प्रामाणिकता का निर्णय और भी कठिन माना जा सकता है।

'गुरु ग्रन्थ साहब' का संकलन सन् १६०४ में हुआ। नामदेव का रचना सम्बन्धी यही सबसे प्राचीन ग्रन्थ अब तक माना गया है। पाठ की दृष्टि से गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ सबसे भ्रष्ट है। इसके कुछ पद तो अभी तक कही भी प्राप्त नही हुए है। जैसे अन्य संत कवियों के नाम पर बहुत-सी रचनाएँ प्रसिद्ध हो गई हैं वैसे नामदेव के नाम पर भी है, इसमें कोई सन्देह नही। पर पाठशास्त्र के आधार पर लगभग १५० पद निश्चित ही नामदेव के है। ५० पद ऐसे है जो दूसरो के है, ५० ऐसे हैं जो आधे मराठी के और आधे हिन्दी के है या सम्पूर्ण मराठी के भ्रष्ट रूप में है और शेष ५० अभी तक संदिग्ध है। उनमें से कुछ गोरखनाथ, कबीर आदि के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

प्राप्त सामग्री के स्रोत

सिक्खो के धर्म ग्रन्थ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' मे नामदेव के पद मिलते है। इसके दो संस्करण देखने में आते हैं। 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' का सकलन ई० स० १६०४ (संवत् १६६१) के लगभग सिक्खो के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने किया। कहा जाता है कि यह मूल प्रति करतारपुर मे अब भी सुरक्षित है।

---

१. संत मत के आदि प्रवर्तक : संत नामदेव, पृ० ११९।
'हिन्दुस्तानी' (जनवरी—मार्च १९६२)

(१) 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' (गुरुमुखी लिपि में) यह प्रति गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर द्वारा प्रकाशित हुई है। इसमें नामदेव के कुल ६१ पद हैं। इसमें आये हुए पदों का पाठ अन्य प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों से बहुत ही भिन्न है।

(२) 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' (नागरी लिपि में) यह प्रति सर्व हिन्द सिक्ख मिशन अमृतसर द्वारा प्रकाशित हुई। यह गुरुमुखी संस्करण का नागरीकरण मात्र है। इसमें भी नामदेव के ६१ पद हैं।

(३) (Sikh Religion) मेक्स आर्थर मेकालिफ द्वारा लिखित इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण ग्रन्थ साहब का अंग्रेजी अनुवाद है। इसके छठे भाग में 'गुरु ग्रन्थ साहब' के ६१ पदों का भी अनुवाद है। यद्यपि मूल पद नहीं दिये गये हैं पर अनुवाद से पदों का परिचय मिल जाता है।

(४) 'पंजाबातील नामदेव' डाक्टर पुरुषोत्तम जोशी।

श्री जोशी ने इस पुस्तक में 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' के ६१ पदों का मूल सहित *मराठी में अनुवाद दिया है। पदों का क्रम और पाठ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' जैसा ही है।*

(५) 'हिन्दी को मराठी संतों की देन' आचार्य विनयमोहन शर्मा।

इस शोध प्रबन्ध में हिन्दी में रचना करने वाले सभी मराठी संतों की रचनाओं के साथ नामदेव के ६९ पदों का संग्रह है। इनमें से ६१ पद तो 'गुरु ग्रन्थ साहब' के ही हैं तथा ८ और हैं।

(६) 'शिखांच्या आदि ग्रन्थांतील नामदेव'

लेखक अ० का० प्रियोलकर

इस पुस्तिका में 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' के ६१ पदों का मूल सहित श्री मेकालिफ द्वारा किया हुआ अंग्रेजी अनुवाद तथा उनका मराठी भाषांतर दिया गया है।

इनके अतिरिक्त श्री वियोगी हरि द्वारा संकलित 'संत सुधा सार' में बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'संत बानी संग्रह' भाग २ में तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संग्रहीत 'संत काव्य संग्रह' में भी नामदेव के पद मिलते हैं।

इन पदों के अतिरिक्त 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' में नामदेव के नाम से निम्नलिखित तीन साखियाँ मिलती है—

(१) नामा माइआ, कहे त्रिलोचन मीत।
काहे छीपहु छाइलइ, राम न लावहु चीत॥ २१२॥

(२) नामा कहे त्रिलोचना मुख ते राम सम्हालि।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि॥ २१३॥

(३) ढूँढ़त डोलई अंध गति अरु चीन्हत नाही संत।
कहो नामा क्यो पाइअह बिनु भगतहु भगवंत॥ २१४॥

अन्य सूत्रों से सामग्री प्राप्त होने के संकेत

'संत नामदेव की हिन्दी पदावली' के आशीर्वचन में म० म० दत्त वामन पोतदार ने कहा है कि 'चालीस वर्ष पूर्व मुझे स्वयं राजवाडेजी ने एक हस्तलिखित बाड (ग्रन्थों का संग्रह) दिया था उसमें नामदेवजू के कुछ पद लिखे मिलते है। बाड में वही पद हैं जो गुरु ग्रंथ साहब मे है। यह हस्तलिखित ग्रन्थ 'भारत इतिहास संशोधक मंडल' में है जिसे शायद इस ग्रन्थ के लेखको ने नही देखा।'[1]

इसी प्रकार डॉ० रामचन्द्र मिश्र ने संकेत किया है कि 'पंजाब विश्वविद्यालय के पाण्डुलिपि विभाग में नामदेव के पद प्राप्त है जो सम्पादको के विचार और विश्लेषण की सीमा के भीतर नही आ सके है और न राजस्थान और पंजाब में अपने नाम के आगे 'नामा' लगाने वाले नामदेव के अनुयायियो में परम्परा से प्राप्त पदो का आकलन किया गया है। नामदेव की लोकप्रियता के कारण सम्भव है कि महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, गुजरात आदि के लोक जीवन में भी उनकी पदावली प्राप्त हो। वस्तुत. नामदेव को पदावली की पूर्णता के लिए इंगित सामग्री का पर्यवेक्षण भी अपेक्षित है।'[2]

इस आलोचना का महत्व स्वीकार करते हुए भी यह नही भूलना चाहिए कि किसी ग्रन्थ के संपादन में इन सारे सूत्रों से सामग्री एकत्र करना बडा कठिन कार्य है, विशेषत: परवर्ती लेखको—सम्पादको को शनै. शनै प्राप्त सामग्री का आरंभिक कार्यकर्ता को उपलब्ध हो जाना संभव नही होता।

जिन सूत्रो की ओर संकेत किया गया है, पर्याप्त खोज करने पर भी 'संत नामदेव की हिंदी पदावली' में संग्रहीत पदो के अतिरिक्त नामदेव के पद नही मिलते। यदि और कुछ पद मिलते हैं तो वे मराठी अभंगो के रूपांतर मात्र हैं। डॉ० रामचन्द्र मिश्र को यह केवल कल्पना है, कहीं नामदेव के पदो का निर्देश नही है। यदि भविष्य में ऐसे पद मिले तो उनका अध्ययन भी प्रस्तुत किया जायगा।

हिंदी रचनाओं का विषयानुसार विभाजन

नामदेव की हिंदी रचनाओं को विषयानुसार नीचे लिखे वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) ईश्वर के नाम स्मरण का आनंद
(२) ईश्वर की सर्वव्यापकता

---

१. संत नामदेव की हिन्दी पदावली : (आशीर्वचन), पृ० ८।
२. संत नामदेव और हिन्दी पद साहित्य, पृ० ९४।

(३) भक्ति से लाभ
(४) ईश्वर की विशुद्ध भक्ति
(५) स्वयं को तथा दूसरो को चेतावनी
(६) प्रार्थना और नम्रता
(७) संसार की नश्वरता
(८) गुरु और संतो का महत्त्व
(९) हठयोग

हिंदी पदो में संत नामदेव सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद दोनो के अनुसार विचार रखते हुए जान पड़ते है और उनकी भक्ति का स्वरूप भी शुद्ध निर्गुण भक्ति का ज्ञान होता है।

□□

तृतीय अध्याय

नामदेव की हिन्दी रचना में निर्गुण काव्य धारा की प्रवृत्तियाँ

(१) निर्गुण संत काव्य—आध्यात्मिक प्रेरणा का काव्य
(२) निर्गुण संप्रदाय के रूप निर्धारण में प्रेरक तत्व—
अद्वैतवाद, इस्लाम या सूफी मत
सिद्ध सम्प्रदाय, नाथ पंथ, वैष्णव धर्म
(३) निर्गुण काव्य की प्रवृत्तियाँ और नामदेव का हिंदी काव्य
१. निर्गुण भावना
२. गुरु महिमा
३. मूर्ति पूजा तथा बाह्याडम्बर का खण्डन
४. एकेश्वरवाद का प्रतिपादन
५. कथनी तथा करनी में एक रूपता
६. भक्ति और ऐहिक कार्य में एकता
७. सत्सङ्ग की प्रधानता
८. सहज अवस्था
९. हठयोग
१०. उलटवासियाँ

निर्गुण संत काव्य-आध्यात्मिक प्रेरणा का काव्य

मध्ययुगीन धर्म साधना के क्रमिक विकास को देखते हुए यह तथ्य सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि उसकी अभिव्यक्ति पर उसके पूर्व प्रचलित अनेक विचार धाराओं के प्रभाव हैं। साथ ही एक लोक सामान्य विद्रोही प्रवृत्ति के फल स्वरूप उस युग में अनेक मौलिक उद्भावनाएँ भी हुई हैं। हिन्दी का निर्गुण संत काव्य इसका सबसे पुष्ट प्रमाण है। डॉ० रामकुमार वर्मा का कथन है कि संत काव्य ने प्राचीन परंपराओं की स्थूल रूप-रेखा ग्रहण कर उसमें जीवन-गत पवित्रता के आधार पर विश्व धर्म को स्वाभाविक प्रेरणा का रंग भरा है।[1] यदि ऐसा कहा जाय कि संत काव्य ने जन भाषा का आश्रय लेकर परवर्ती राम और कृष्ण की भक्ति के लिए काव्य का क्षेत्र प्रशस्त किया तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि जहाँ तक उनकी उपासना-पद्धति, विषय, भाव, भाषा, अलंकार, छंद, पद आदि का संबंध है ये संत सौ फीसदी भारतीय परंपरा में पड़ते हैं। उनके पारिभाषिक शब्द, उनकी रूढि विरोधिता, उनकी खण्डनात्मक वृत्ति और उनकी अक्खड़ता आदि उनके पूर्ववर्ती साधकों की देन है; परन्तु उनमें आत्मा उनकी अपनी है। उसमें भक्ति का रस है और वेदांत का ज्ञान है।[2]

निर्गुण संत काव्य आध्यात्मिक प्रेरणा का काव्य है इसलिए उनमें अपने इस मूल भाव के साथ ही लोक समन्वय और स्वदेशी-विदेशी के भेदभाव की प्रतिक्रिया अन्य क्षेत्रों की तुलना में कम है। यद्यपि यह मुसलमानी प्रतिक्रिया नहीं है तथापि मानवता के स्तर पर सूफियों की प्रेम पद्धति और ऐकेश्वर वाद की लोक सामान्य झलक उसमें भी है किन्तु यह उसका मूल स्वर नहीं बन सका।

वैष्णव मत के लोकव्यापी विस्तार से जिस समय संपूर्ण देश अभिभूत होकर भगवान् की भक्ति में अपने आप को तिरोहित कर रहा था उस समय उत्तर भारत में

---

१. हिंदी साहित्य (द्वितीय खंड) 'संत काव्य', पृ० १८८।

२. हिंदी साहित्य की भूमिका।

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४२।

नैतिक जीवन को लेकर साधनात्मक प्रयोगों का बोलबाला था। साधक को अपनी शुद्धता के लिए गुरु गोरखनाथ का अलौकिक व्यक्तित्व एक देवत्व का पर्याय मात्र रह गया था।

गुरु गोरख का नाथ संप्रदाय जन भाषा में अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन कर चुका था किन्तु उसकी भाषा में दो बातों की कमी थी। पहली यह कि वह भाषा केवल सिद्धांत-सम्मत थी, उसमें काव्यात्मकता का अभाव था और दूसरी यह कि नाथ संप्रदाय एक सीमित सम्प्रदाय होने के कारण अपनी भाषा को व्यापक नहीं बना सका था। इस प्रकार निर्गुण सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा करते हुए जन-जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियों में सामान्य भाषा के माध्यम से संत काव्य हिन्दी के भक्ति काव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन सका।[1]

यहाँ संक्षेप में उन परिस्थितियों तथा प्रेरणाओं पर विचार कर लेना आवश्यक है जिनका निर्गुण संप्रदाय का रूप निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। निर्गुण संप्रदाय का दृष्टिकोण उस बौद्ध धर्म के दृष्टिकोण से मिलता जुलता है, जो शताब्दियों तक वैदिक धर्म से संघर्ष करता रहा। बौद्ध धर्म से महायान का विकास हुआ, महायान से मंत्रयान और मंत्रयान से वज्रयान का, जो तान्त्रिक बौद्ध धर्म में परिणत हुआ। इसी वज्रयान की प्रतिक्रिया में नाथ संप्रदाय का विकास हुआ और नाथ संप्रदाय के प्रेरणा-मूलक तत्वों को ग्रहण कर संत सम्प्रदाय अवतरित हुआ। इस प्रकार बौद्धों के शून्यवाद से लेकर नाथ संप्रदाय की अवधूत भावना तक संत काव्य में सभी विचार सरणियाँ पोषित होती रहीं।

बौद्ध धर्म से प्रेरित इस विचार धारा के विकास के कारण ही यह सम्भव हो सका कि संत काव्य समस्त वैदिक परंपरा के कर्मकांडों का विरोध कर सका जो कालांतर में वैष्णव धर्म में भक्ति के साधन थे। इसीलिए अवतार, मूर्ति, तीर्थ, व्रत, माला आदि निर्गुण संप्रदाय के संतों को ग्राह्य नहीं हो सके जो कर्मकाण्ड के प्रतीक बने हुए थे।

दूसरी ओर शून्य, काया-तीर्थ, सहज समाधि और योग जिसके अंतर्गत इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियाँ, षट् चक्र, सहस्र दल कमल, चंद्र और सूर्य तथा जीवन को स्वाभाविक और अंत:करण-जनित श्रद्धा और रागात्मिका वृत्ति की प्रधानता संत काव्य में हो सकी। अतः यह स्पष्ट है कि संत काव्य अपने मौलिक विचारों की कोटि में बौद्ध धर्म की परंपरा के अंतर्गत है तथा उसका सम्बन्ध बौद्ध धर्म के परवर्ती सम्प्रदायों से होता हुआ प्रत्यक्ष रीति से नाथ संप्रदाय से है।

---

१. हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड) पृ० १८८।
—'संत काव्य' शीर्षक डॉ० रामकुमार वर्मा का लेख।

बौद्ध धर्म की विचार धारा से संत संप्रदाय का संबंध निरूपित हो जाने पर यह देख लेना उचित होगा कि वैदिक साहित्य की परंपरा में वैष्णव धर्म का प्रभाव संत काव्य पर कितनी मात्रा में अथवा किस रूप में पड़ा।

विक्रम की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में रामानंद का प्रभाव उत्तरी भारत में व्यापक रूप से पड़ा। भक्ति का स्रोत जो दक्षिण में फूट पड़ा और उत्तर तक प्रवाहित हुआ उसने समस्त उत्तरी भारत को आप्लावित कर धर्म के क्षेत्र में भक्ति की ओर आकर्षित किया।[1] यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भक्ति का जन-व्यापी प्रभाव दक्षिण के अलवार संतो से ही ईसा की छठवीं शताब्दी में आरंभ हो चुका था। इनके गीत बहुत ही लोकप्रिय हुए। सर्व साधारण जनता के लिए भी वेद-विहित याज्ञिक अनुष्ठान की अपेक्षा भक्ति का यह रागात्मक रूप अधिक आकर्षक था।

निर्गुण संप्रदाय के रूप निर्धारण में प्रेरक तत्व

निर्गुण संत मत के सिद्धांतों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पर भिन्न-भिन्न संप्रदायों और आचार्यों की छाप पड़ी हुई है। संतो ने इन संप्रदायों की मुख्य-मुख्य तथा उपयोगी बातों को ग्रहण किया। संत मत पर निम्नलिखित सम्प्रदायों का प्रभाव पड़ा है।

अद्वैतवाद

संत साहित्य के पीछे जो दार्शनिक प्रेरणा रही है उसके संबंध में विद्वानों ने प्रायः वेदांत और उपनिषदों में प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्मवादी विचार धारा की ओर संकेत किया है। संत साधक और उनके अग्रणी कबीर को लोगों ने यही समझा है कि वे जीव, आत्मा, ब्रह्म और प्रकृति संबंधी अपनी मान्यताओं को स्थिर करने में मुख्य रूप से प्राचीन हिन्दी ग्रन्थों और विशेष रूप से निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों और महात्माओं से अनुप्राणित हुए थे। प्राचीन वैदिक और उपनिषद् काल की परंपरा तो निर्गुण ब्रह्म के प्रतिपादन के साथ ही अद्वैतवाद का प्रतिपादन समझा जाता है। शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन संबंधी कुछ विशेष वचन जिन्हें महावाक्य[2] कहा जाता

१. भक्ति द्राविड़ी ऊपजी लाये रामानंद।
परगट कियो कबीर सप्त द्वीप नव खंड ॥

२. प्रज्ञान ब्रह्म। (ऐ० उपनिषद्)
तत्वमसि। (छांदोग्य उपनिषद् ६।८।७)
अहं ब्रह्मास्मि। (बृहदारण्यक उपनिषद् १।४।१०)
अयमात्मा ब्रह्म। (छांदोग्य उपनिषद् २)

है स्पष्ट रूप से अद्वैतवाद और निर्गुण ब्रह्म के पर्याय को स्वीकार करते हैं। उपनिषदों और वेदांत में स्पष्ट रूप से ब्रह्म की व्याख्या करते हुए उन लक्षणों का वर्णन किया गया है जिन्हें हम निर्गुण ब्रह्म में मानते हैं।

संत कवियों ने शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित मायावाद, विवर्तवाद अथवा शुद्ध ज्ञान वाद को नहीं ग्रहण किया वरन् उपनिषदों के स्वस्थ, यथार्थवादी और लोकरक्षक चिंतन को ग्रहण किया और प्रचारित किया जिसमें हृदय और बुद्धि, ज्ञान और कर्म का समन्वय किया गया था।[1]

इस्लाम या सूफी मत

सूफी संतों का आगमन तो ग्यारहवीं शताब्दी में आस पास से शुरू हो गया था किन्तु हिंदी साहित्य में सूफी मत का प्रतिपादन व्यापक रूप से संत साहित्य में ही देखने को मिलता है। संतों पर सूफी मत का अधिक प्रभाव पड़ने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि इसमें बहुत से मुसलमान भी थे और यह स्वाभाविक ही है कि उनका संपर्क और झुकाव सूफी मत की ओर अधिक हुआ हो। कबीर, दादू, बुल्लेशाह, यारी साहब आदि अनेक मुसलमानों ने संत परंपरा को ग्रहण किया और सूफी धर्म की 'प्रेम की पीर' से अपनी कविता को रस सिक्त और कोमल बनाया। संत साहित्य में भाव पक्ष की जो कुछ भी सुन्दरता दीख पड़ती है उसका बहुत कुछ कारण सूफी संतों का दर्द और प्रेम की मधुर और करुण व्यंजना है।

मुसलमान संतों के अतिरिक्त भी जो दूसरे संत थे, वे बहुधा जाति और परम्परा गत ज्ञान के कारण धार्मिक और सांप्रदायिक रूढ़ियों से मुक्त थे। उन पर भी सूफी धर्म का रंग गहरा चढ़ा। मलूकदास भी इस प्रेम के रङ्ग में इतने डूबे हैं कि वे गुलाम के समान उस प्रियतम के दर्शन की लालसा में दरबार में खड़े हैं।[2]

संत साहित्य पर सूफी मत का प्रभाव तीन रूपों में देखने को मिलता है। प्रायः सभी कवियों ने प्रेम की महत्ता पर बहुत विस्तार और उत्साह से प्रकाश डाला है। उन्होंने बतलाया है कि प्रेम जप तप, तीर्थ और साधना सभी से बड़ा है। दूसरा रूप

---

१ इण्डियन फिलासफी भाग २ डॉ० राधाकृष्णन, पृ० २२४-२५।

२ तेरा मैं दीदार दिवाना
घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूँ सुन साहेब रहमाना।
हुआ अलमस्त खबर नहिं तन की पिया प्रेम पियाला
ठाढ़ होउँ तो गिर गिर परता तेरे रंग मतवाला॥
—मलूकदास की बानी (बेलवेडियर प्रेस) पृ० ७।

है संयोग की आनंदावस्था का चित्रण और तीसरा है वियोग के करण विदग्ध रूप का चित्रण ।

सिद्ध संप्रदाय

सिद्ध साहित्य की विचार धारा का संत साहित्य पर विचार और शैली दोनो दोनों ही दृष्टियों से बड़ा प्रभाव है । भगवान् बुद्ध द्वारा अनुप्राणित तथा अशोक द्वारा प्रचारित बौद्ध धर्म को आगे चलकर वज्रयान और मंत्रयान द्वारा कलंकित किया गया । ये वज्रयानी सिद्ध रहस्यात्मक उक्तियां कहा करते थे । इनका धर्म 'महासुहवाद' था । इनकी अटपटी वाणी —'काया तरुवर पंच बिडाल', 'गंगा जमुना माँझि वहैरी एक नाडी' आदि योग की ओर आध्यात्मिक ढंग से संकेत करती है । इन्हीं की चलाई प्रणाली से संत साहित्य की सृष्टि हुई । इसी परंपरा का विकसित रूप गोरखनाथ के नाथ *संप्रदाय में तथा व्यापक एवं पुष्ट रूप ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति शाखा में पाया जाता है,* जहाँ संत काव्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा प्रतीत होता है ।

वज्रयान के सिद्धों और निर्गुणियों में यह समता है कि दोनों ही ने तत्कालीन काव्य भाषा की उपेक्षा कर जन भाषा में ही अपनी रचनाएँ की । दोनों ने अन्तः साधना पर जोर दिया और पण्डितों का तिरस्कार कर शास्त्रों को निरर्थक ठहराया ।[1]

शून्यवाद, सुरति, निरति, *इडा, पिंगला, सुषुम्ना* आदि को इंगला, पिंगला, सुखमना आदि बनाकर कबीर ने इसी मत से ले लिया है । सिद्धों ने जिसे 'काया तरुवर पंच बिडाल' कहा केवल उन्हीं पाँच विकारों को निर्गुण धारा के संतों ने भी लिखा । शैली की दृष्टि से भी सिद्धों की 'संधा भाषा' में जो 'कूट' और प्रतीक है उन्हीं से कबीर के रूपक और उल्टवासियों का निर्माण हुआ है ।

इस प्रकार वज्रयानी सिद्धों तथा वाममार्गियों ने नाथ पंथ का तथा नाथ पंथी योगियों ने कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण सन्त मत के प्रचार के लिए पहले से ही रास्ता *तैयार कर दिया था ।*

नाथ पंथ

भारतीय धर्म साधना में दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में जिन विभिन्न साधनाओं का बोलबाला था उनमें नाथ पंथ की साधना पद्धति का स्वर अत्यन्त प्रभावशाली कहा

---

१. (अ) अवणा गमण ण तेन विखंडिअ ।
तो विणिलज्ज भणइ हनुँ पंडिअ ।।—सरहपा,
(आ) मे कहता हूँ आखिन देखी । तू कहता है कागद लेखी । कबीर

जायेगा। नाथ पंथ की साधना को 'हठयोग' की साधना भी कहा गया है जो योग दर्शन का ही एक प्रकार है।

सन्त सम्प्रदाय का सीधा सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय से है। सन्त सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय से आई हुई नाथ सम्प्रदाय की विचारधारा मूल रूप से ग्रहण की। नाथ सम्प्रदाय की आचारनिष्ठा, विवेक-सम्पन्नता, अंध विश्वासों को तोड़ने की उग्रता एवं परम्परागत कर्मकांडों की निरर्थकता सन्त सम्प्रदाय में सीधी चली आई। यहाँ तक कि उलटबाँसियों की कुतूहलजनक शैली भी सन्तों को नाथ सम्प्रदाय से ही प्राप्त हुई।

डॉ० कोमलसिंह सोलंकी[1] के अनुसार नाथ पंथ की मूल प्रवृत्तियों को हम संक्षेप में इस प्रकार रख सकते हैं—

(१) चारित्रिक उत्कर्ष और पवित्रता का आग्रह
(२) स्मार्त आचारों की अवहेलना
(३) निर्गुण भावना में विश्वास
(४) योग साधना का आध्यात्मिक स्वर
(५) ज्ञान और अक्खड़ता की प्रधानता
(६) लोक भाषा द्वारा अभिव्यक्ति और व्यक्तिगत आदर्श की प्रतिष्ठा।

निर्गुण सन्त कवियों की वाणियों में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग है उनमें जो रूढ़ि-विरोधिता, खण्डनात्मक वृत्ति और अक्खड़ता है वह सब नाथ पंथी योगियों और सिद्धों की ही देन है। किन्तु हिन्दी का निर्गुण सन्त काव्य ठीक वही नहीं है जो नाथ पंथी योगियों की रचनाओं में उपलब्ध है। निर्गुण सन्त कवि भक्ति के मर्मस्पर्शी गायक हैं। योग और ज्ञानमूलक अभिव्यक्ति के साथ भक्ति भावना का अनुकूल वातावरण पाकर निर्गुण सन्त काव्य लोक-जीवन में जिस व्यापक प्रभाव को लेकर अवतरित हुआ, वह उसकी अपनी विशेषता ही मानी जायगी। फिर भी सन्त सम्प्रदाय के लिए अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने में नाथ पंथ का महत्त्वपूर्ण योग है इसे कोई अस्वीकार नहीं करेगा।

वैष्णव धर्म

मध्ययुग में वैष्णव धर्म का बहुत अधिक प्रचार था। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भागवत है। भागवत में विविध प्रकार के अवतारों की चर्चा मिलती है। अवतारवाद को सर्वाधिक मान्यता देते हुए भी भागवत् निर्गुण ब्रह्म के महत्त्व को नहीं भूली। सन्तों को वैष्णव धर्म का अवतारवाद का यह सिद्धांत मान्य न था।

---

१. नाथ पंथ और निर्गुण सन्त काव्य, पृष्ठ १२०।

वैष्णव धर्म में विष्णु और उनके भक्तों के नामों की बड़ी प्रतिष्ठा है। भगवान् विष्णु के सहस्र नाम बतलाये गये है। सन्तों ने अपने निर्गुण ब्रह्म के लिए हरि, गोविंद, गोपाल, माधो, राम आदि सैकड़ो वैष्णवी अभिधान प्रयुक्त किये हैं। इन समस्त अभिधानों में उन्हे राम, गोविंद और हरि विशेष प्रिय थे। सन्तों द्वारा भगवान् के इन वैष्णवी नामो का प्रयोग उन पर वैष्णव धर्म के प्रभाव के परिणाम-स्वरूप ही है।

वैष्णव धर्म की सदाचार-प्रियता का सन्तो पर बहुत प्रभाव पड़ा। निर्मलता तथा सात्विकता की अभिव्यक्ति उन्होंने विविध सद्गुणों के आचरण पर बल देकर की है।[1] वास्तव मे सन्त वैष्णव धर्म की सदाचरण-प्रियता और सात्विकता से बहुत अधिक प्रभावित थे।

सन्तों ने वैष्णव धर्म के अनुकरण पर भक्ति को अन्य साधनो की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ ठहराया है।[2] प्रेम भगति और भाव भगति का उपदेश तो उन्होने अपनी रचनाओ में सर्वत्र दिया है।[3] यहाँ पर हम केवल इसी बात पर बल देना चाहते है कि वैष्णवों की सदाचरण-प्रियता और प्रेम भगति ने सन्तों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

नामदेव की हिन्दी कविता और निर्गुण काव्य की प्रवृत्तियाँ

समस्त निर्गुण काव्य का अनुशीलन और अध्ययन करने पर कुछ सामान्य विशेषताएँ समान रूप से सभी सन्तो मे प्राप्त होती है जिन्हें हम निर्गुण काव्य की प्रवृत्तियाँ कह सकते है। नामदेव की रचनाओ में ये सारी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। नीचे इन्ही का विवेचन संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) निर्गुण भावना

यह निर्गुण भावना उपनिषद् काल से चली आई है। नामदेव ने भी इसे अपनाया है। निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हुए वे कहते है—

वह निर्गुण ब्रह्म अनेक और एक सब कुछ है। मैं जिधर देखता हूँ उधर वही है। 'माइया मोहिया' बिरला ही इस बात को समझ सकता है। वह व्यापक राम सात

---

१. निर्मल तन मन आत्मा निर्मल मनसा सार।
निर्मल प्राणी पंच करि दादू लंघै पार॥
—दादू बानी भाग, १ पृ० ४।

२. बिना भक्ति थोथे सभी जोग जुक्ति आचार।
सहजोबाई की बानी, पृ० ३२।

३. भाव भगति सूँ हरि न अराधा। जनम मरन की मिटी न साधा॥
—कबीर ग्रंथावली, पृ० २४४।

सहस्र मणियों में एक सूत की भाँति सब में ओत-प्रोत है।[1] जिस प्रकार तरंग, फेन और बुदबुद जल से भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार संसार के नाना रूप भी उस एक ही के रूप हैं जो सब में समाया हुआ है। यह संसार परमात्मा की लीला है। विचार करने पर भी वह भिन्न सिद्ध नहीं होता। वस्तुतः सब कुछ गोविंद-मय है। केवल वह एक मुरारी घट-घट वासी है।[2]

सर्वत्र राम ही राम है। घट-घट में वही बोल रहा है। स्थावर, जंगम, कीट, पतंग सब में वही समाया हुआ है। एक ही मिट्टी से हाथी, चींटी तथा नाना प्रकार की वस्तुएँ बनती हैं। निष्काम की अथवा अनासक्त की दशा उपलब्ध होने पर साम्य भाव आ जाता है और स्वामी-सेवक भाव जाता रहता है।[3]

नामदेव का गोविंद (विट्ठल) निराकार एवं सर्वव्यापी है। ब्रह्म ज्ञानी ही इस बात को समझ सकता है। नामदेव के अनुसार हिन्दू अन्धा है और मुसलमान काना है (दोनों में यथार्थ को देखने की क्षमता नहीं रह गई है)—इन दोनों में ज्ञानी चतुर है। हिन्दू मन्दिर में भगवान की पूजा करता है और तुर्क मसजिद में। नामदेव कहते हैं—मैं तो ऐसे भगवान् की आराधना करता हूँ जो न मन्दिर में है न मसजिद में।[4]

---

१. मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणि-गणा इव। गीता ७, ७।

२. एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
माइआ चित्र बिचित्र बिमोहित, बिरला बूझै कोई॥ १॥
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंदु बिनु नहि कोई।
सूतु एकु मणि सत सहस जैसे ओति पोति प्रभु सोई॥ २॥
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जलतें भिन्न न होई।
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला, बिचरत आन न होई॥ ३॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १५०।

३. सभै घट रामु बोले रामा बोलै। राम बिना को बोलै रे॥ १॥
एकल माटी कुंजर चींटी भाजन है बहु नाना रे।
असथावर जंगम कीट पतंगम घटि-घटि रामु समाना रे॥ २॥
एकल चिंता राखु अनंता अउर तजहु सभ आसा रे।
प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुर को दासा रे॥ ३॥
—पंजाबातील नामदेव, पृ० १२१।

४. हिन्दू अन्धा तुरकू काणा दोहाते गिआनी सिआणा।
हिन्दू पूजे देहुरा मुसलमाणु मसीत॥
नामे सोई सेविआ जह देहुरा न मसीत॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पृ० २०८।

ठाकुर को स्नान कराने के लिए मैं जल से भरा घडा लाया, उस जल में बयालीस लाख जीव रहते हैं, जिनमें भगवान् का निवास है, फिर मै उन्हें कैसे स्नान कराऊँ ? मैं जिधर भी जाता हूँ उधर भगवान् है जो परमानन्द मे लीन हो सदैव लीलाएँ करता है। इधर भगवान् है, उधर भगवान् है, भगवान् के बिना संसार मे कुछ भी नहीं है। नामदेव कहते है—हे भगवन् ! पृथ्वी के जल-थल आदि सभी स्थानों मे तुम व्याप्त हो।[1]

ज्ञानी भक्त सब भक्तो में श्रेष्ठ होता है। अपना व्यक्तित्व अपने इष्टदेव के चरणों पर समर्पित कर देने पर वह स्वयं ईश्वर हो जाता है। उसका अपना अलग अस्तित्व नहीं रहता। इसीलिए कहा गया है कि 'शिवो भूत्वा शिव यजेत्' अर्थात् स्वयं विट्ठल होकर उसकी भक्ति करना ही पराकोटि की भक्ति है। 'सर्व खलु इद ब्रह्म' की अनुभूति होने पर नामदेव कहने लगे कि केवल मन्दिर ही में परमात्मा का वास नहीं है। वह सारे संसार में व्याप्त है। अत: मै फूलों तथा पत्तियों से उसकी पूजा न करूँगा। हरि की शरण में जाने पर आवा-गोन के फेर से मेरी मुक्ति हुई।[2]

कबीर तथा अन्य सन्त कवियो को रचनाओं मे भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। सन्त काव्य धारा की मूल भावना निर्गुण की उपासना है। सन्त कवियो ने भगवान् के सगुण और निर्गुण इन दो रूपो में से निर्गुण रूप का निर्वाचन किया। उनका निर्गुण बौद्ध साधकों के शून्य से पृथक् है। वह संसार के कण-कण में व्याप्त है, वही प्रत्येक सांस में है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह केवल अनुभवगम्य ही है। उसी को गूँगे का गुड कहा गया है। कबीर के अनुसार वह पुस्तकीय विद्या से प्राप्त नहीं हो सकता, वह प्रेम से प्राप्त है।[3]

---

१. आनीले कुंभ भाराईले उदक ठाकुर कउ इसनानु करउ।
बइआलीस लख जो जल महि होते बीठलु भैला काई करउ ॥ १ ॥
जत्र जाउ तत बीठलु भैला। महा आनन्द करे सद केला ॥ २ ॥
ईभे बीठलु ऊभे बीठलु बीठल बिनु संसार नही।
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिओ तू सरब मही ॥ ३ ॥
—पंजाबातील नामदेव, पृ० ८३।

२. पाती तोडि पूजूँ देवा। देवलि देव न होई।
नामा कहै मैं हरि को सरना। पुनरपि जनम न होई।
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ६५।

३. अकथ कहानी प्रेम की कछु कही न जाई।
गूँगे केरी सरकरा बैठे मुसकाई ॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १२०।

परम तत्व की अभिव्यक्ति एक दुर्लभ कार्य है। सन्तों ने इस बात को स्वीकार किया है कि वह जैसा कहा जाता है वैसा ही उसका पूर्ण रूप में भी होना सम्भव नहीं है, वह जैसा है, वैसा ही है।[1]

वास्तव में परम तत्व का कोई उपयुक्त विचार ही नही कर सकता। गुरु नानक के अनुसार वह वाणी और बुद्धि दोनों की सीमा से परे है।[2]

दादू उस अव्यक्त ब्रह्म को बाहर और भीतर प्रत्येक दिशा में देखते है। उनके अनुसार उसको छोड़कर दूसरा कुछ है ही नही।[3]

सहजोबाई ने एक स्थान पर लिखा है कि उसका कोई नाम नहीं है फिर भी सब नाम उसी के है। उसका कोई रूप नही है फिर भी सब रूप उसी के हैं।[4]

दादू ने उस नूर-स्वरूपी (ज्योति स्वरूप) ब्रह्म का जिसस वे सब खेलत है, सुदर वर्णन किया है।[5]

सत रज्जब ने भी घट में ही उस व्यापक ब्रह्म का देखा है।[6]

यद्यपि उस पर ब्रह्म को यथार्थ रूप में कोई नही जान सकता तब भी सतों ने

---

१. जस कहिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोई।
कहत सुनत सुख उपजे, अस परमारथ होई॥
—कबीर ग्रन्थावली पृ० २३१

२. सोचे सोच न होवई, जे सोचे लखवार।
—ग्रन्थ साहब, पृ० १

३. दादु देखौं दयाल को बाहरि भीतरि सोई।
सब दिसी देखौं पीव कौ दूसर नाहीं होई॥
—दादू दयाल की बानी भाग १, पृ० ३३।

४. नाम नहीं और नाम सब, रूप नही सब रूप।
—सन्त सुधासार, पृ० १६१।

५. नूर सरीखा नूर है तेज सरीखा तेज।
जोति सरीखी जोति है दादू खेले सेज।
—दादू दयाल की बानी, भाग १ पृष्ठ ५६।

६. सब घट घटा समानि है, ब्रह्म बिज्जुली माहिं।
रज्जब तिनके कौन में सो समझै कोई नाहिं॥
—सत काव्य, पृष्ठ ३३६।

उसे तत्, परम तत्, परम पद, अभै पद, सहज, अ ंत, सीत्र, ब्रह्म आदि कई नाम दिये हैं।[१]

कबीर के अनुसार ब्रह्म देश, काल और अवस्था से परे अर्थात् सकल अतीत है। उसे व्यक्त करने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार की चेष्टाएँ की किन्तु फिर भी उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली।[२]

(२) गुरु महिमा—हृदय को शुद्ध रखने के लिए कुछ कार्य विधेय हैं और कुछ वर्ज्य हैं। संत काव्य में बार-बार हृदय की पवित्रता के लिए विधि निषेध के अंतर्गत गुण-ग्रहण और दोष परिहार पर उपदेश दिये गये हैं। विधि निषेध का वास्तविक ज्ञान तब तक नहीं होता जब तक कि गुरू का मार्गदर्शन प्राप्त न हो। निर्गुण सम्प्रदाय में गुरू का स्थान सर्वोपरि है। नवीन साधकों के लिए तो गुरु परमेश्वर से भी बड़ा हुआ करता है क्योंकि गुरु कृपा द्वारा ही शिष्य भगवत्कृपा की ओर उन्मुख होना सीख पाता है।

जिस प्रकार संपूर्ण संत साहित्य में गुरु को सर्वश्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार नामदेव ने भी गुरु का स्थान सर्वोपरि माना है। सत्य का अन्वेषण और ज्ञान की प्राप्ति, बिना गुरु-कृपा के संभव नहीं है। नामदेव के लिए गुरु का शब्द बैकुंठ की सीढ़ी के समान है।[3] वे अपने मन को चेतावनी देते हुए दुःख का कारण भी स्पष्ट कर देते हैं—तूने अनेक बार पशु होकर मानव देह धारण किया। चौराशी लाख योनी में भ्रमण करता रहा परन्तु कहीं भी तुझे शांति नहीं मिली। सत् गुरु की शरण में जाकर तूने राम नाम का उच्चार नहीं किया।[४]

---

१. कबीर साहित्य की परख—परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ९१।

२. अलख निरंजन लखै न कोई। निरभै निराकार है सोई॥
सुंनि अस्थूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यो नहीं पेखा॥
बरन अबरन कथ्यो नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्यो समाई॥
आदि अंत ताहि नहीं मधे। कथ्यौ न जाई आहि अकथे।
अपरंपार उपजै नहीं बिनसै। जुगति न जानियै कथियै कैसे॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २३०।

३. गुरू को शब्द बैकुंठ निसरनी। —संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २९।

४. अनेक बार पसु ह्वै अवतर्यो।
लप चौरासी भरमत फिर्यो॥ १॥
पायो नहीं कहीं बिश्राम।
सत् गुरु सरनि कह्यो नहीं राम॥ २॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १२४।

यह निश्चित है कि बिना गुरु प्रसाद के बुद्ध प्राप्त नहीं होता।[1]

सद्गुरु की कृपा से ही नामदेव ने साधु का जीवन ग्रहण किया।[2]

'गुरु कृपा से जीव के सभी संशय मिट जायेंगे, वह यम यातना से मुक्त हो जायेगा। उसे निर्वाण पद प्राप्त होगा। गुरु को छोड़कर वह कहीं अन्यत्र न जायेगा। नामदेव कहते हैं कि मैं तो केवल गुरु ही की शरण में जाऊँगा जिससे सभी प्रकार का हित संभव है।'[3]

ईश्वरोन्मुखता के कारण नामदेव का जीवन सफल हो गया जिसमें दुख के स्थान पर वह सुख की अनुभूति हुई है।[4]

अपने एक कूटात्मक पद में नामदेव कहते हैं कि सद्गुरु ने उनको निर्वाण पद का मार्ग बताया।[5]

अपने गुरु विसोबा खेचर का उन्होंने बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है। कहते हैं कि *उनके कृपा-प्रसाद ही से मैंने तुलसी की माला पाई। उन्होंने सद्गुरु होकर मुझे परम तत्त्व का साक्षात्कार कराया।*[6]

---

१. प्रणवत नामदेव गुर प्रसादे। पाया तिनही लुकाया॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६४।

२. गुरु के मेहेर से नामा भए साधु।
देखत रोगे लगे जन हे भोदु॥
—सत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १८५।

३. जउ गुरदेउ त संसा टूटै।
जउ गुरदेउ त भउ जल तरै।
जउ गुरदेव न जनमि न मरै।
बिनु गुर देउ अवर नही जाई।
नामदेउ गुर की सरणाई।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २११।

४. सफल जनमु मोकउ गुर कीना।
दुख बिसारि सुख अंतरि लीना॥
—सत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २०४।

५. सत् गुरु बतोया पद निरबाना।
—सत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७६।

६. खचर भूचर तुलसी माला गुर परसादी पाइआ।
नामा प्रणवै परम तत् है सति गुर होइ लखाइआ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २०६।

निमिष मात्र में नर किस प्रकार नारायण हो जाता है यह बात मुझे सद्गुरु ने बताई।[1]

जिन पर सद्गुरु का अनुग्रह हुआ वे सब भव सागर पार हुए।[2]

साधना का मार्ग रहस्यमय है। जब तक कोई ऐसा गुरु नहीं मिल जाता जो साधना में सफलता प्राप्त कर चुका है तब तक कोई भी साधक अपनी साधना को मर्यादित नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त गुरु के महत्त्व का एक कारण और भी है। गुरु की आध्यात्मिक शक्ति शिष्य के लिए प्रबल प्रेरणा का कार्य करती है।

कबीर ने गुरु के महत्त्व का वर्णन मुक्त कण्ठ से किया है। वे कहते हैं कि वे लोग अंधे हैं जो गुरु के विषय में कुछ और कहा करते हैं। यदि परमेश्वर रुष्ट हो जाय तो गुरु हमें बचा सकता है किन्तु यदि स्वयं गुरु ही रुष्ट हो जाय तो फिर अपनी रक्षा की कोई आशा नहीं रह जाती।[3]

कबीर के लिए तो गुरु तथा गोविन्द दोनों में कोई भेद नहीं है। गुरु तो गोविन्द का दूसरा रूप ही है। वे कहते हैं कि गुरु और गोविन्द दोनों मेरे समक्ष खड़े हैं मैं किसके चरण पकड़ूँ? मैं तो अपने गुरु की ही बलिहारी जाऊँगा जिन्होंने मुझे गोविन्द के दर्शन कराये।[4]

गुरु को परमेश्वर-स्वरूप कहा जाता है। कबीर साहब ने कहा है कि गुरु और गोविन्द में कोई अन्तर नहीं, केवल आकार मात्र से ही भिन्नता लक्षित होती है। अपने अहं भाव का त्याग कर के जीते जी मर जाओ तभी तुम्हें वह परमेश्वर प्राप्त होगा।[5]

---

१. नर ते सुर होइ जात निमख में सतिगुर बुधि सिखलाई॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २०५।

२. जिह गुरु मिलै तिह पारि उतारै।
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २१५।

३. कबीर ते नर अंध हैं गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहिं ठौर॥
—कबीर वचनावली, पृष्ठ ३१।

४. गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागौं पाँव।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥
—कबीर वचनावली, पृष्ठ ३०।

५. गुरु गोविन्द तो एक है दूजा यहु आकार।
आपा मेटि जीवित मरै, तो पावै करतार॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ३।

संत रज्जब कहते है कि गुरु-कृपा से ऐसी दृष्टि प्राप्त होती है जिससे शिष्य प्रगट तथा गुप्त बात को पहचान सकता है जिसे न कोई देख सकता है न पहचान सकता है।[1]

गुरु की महत्ता का वर्णन करते हुए नानक कहते है कि गुरु-कृपा से इंद्रादिक देवता, सनक, सनंदन से तापस तथा कितने ही जन मुक्त हो गये।[2]

शिष्य अपने गुरु की सेवा द्वारा मन को ज्ञान के अमृत में स्नान करा कर ६८ प्रधान तीर्थों का फल पा जाता है और उससे उपदेश रूपी रत्न भी पा लेता है।[3]

सद्गुर का मर कर जीने का रहस्य मुझे बहुत पसंद आया।[4]

दादू दयाल गुरु की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—मुझे सच्चा और समर्थ गुरु मिल गया जिसने परम तत्त्व से मेरा परिचय करा दिया।[5]

जो अपने आप जगत्-जाल में उलझ रहे हैं उनको सारा जगत् उलझा हुआ ही दीखता है और जो स्वरूप दर्शन द्वारा सुलझ गया है उसे सब कुछ सुलझा हुआ दीखता है। इस प्रकार का महाज्ञान अथवा महामनन ही 'गुरु ज्ञान विचार' है।[6]

दरिया साहब (मारवाड़ वाले) कहते हैं कि गुरु के उपदेश से सारा संशय

---

१. जन रज्जब गुर की दया दृष्टि परापति होय।
पगरट गुप्त पिछानिये जिनहि न दीखे कोय॥

—संत काव्य, पृष्ठ ३३५।

२. गुरु के सबदि तरे मुनि केते इंद्रादिक ब्रह्मादि तरे।
सनक सनंदन तपसी जन केते गुरु परसादि पारि परे।

—संत काव्य, पृष्ठ २१०।

३. अम्रितु नीरु गिआनि मन मजनु अठसठि तीरथ संगि गहे।
गुरु उपदेसि जवाहर माणक, सेवे सिखु सो खोजि लहै॥

—संत काव्य, पृष्ठ २१०।

४. सति गुरु मिले सुमरणु दिखाए। मरण रहण रंसु अंतरि भाए।
गरबु निवारी गगन पुरु पाए।

—संत काव्य, पृष्ठ २११।

५. साचा समरथ गुरु मिल्या, तिन तत दिया बताई।

—सन्त काव्य, पृष्ठ २९६।

६. दादू आपा उरझें उरझिया दीसै सब संसार।
आपा सुरझें सुरझिया, यहु गुर ग्यान विचार॥

—संक्षिप्त संत सुधा सार, पृष्ठ २७५।

मिट गया। गुरु ने हरिनाम की औषधि देकर तन मन को निरोग किया।[1]

मूर्ति पूजा तथा बाह्याडाम्बर का खंडन

कालान्तर में बौद्ध धर्म दो भागों में बंट गया—हीन यान और महायान। आगे चलकर महायान के भी दो टुकड़े हो गये।,वज्रयान और सहजयान। बुद्ध ने तो मंत्र, तंत्र तथा जादू टोनो को 'मिथ्या जीव' कह कर तिरस्कृत ही किया किंतु आगे चल कर उन्हो के अनुयायियो ने इन्हे निर्वाण प्राप्ति का एक प्रमुख अंग मान लिया।

सिद्धों के वज्रयान की 'सहज साधना' ही नाथ संप्रदाय के रूप में पल्लवित हुई। इन दोनो संप्रदायो को एक ही विचार-धारा की दो उर्मियाँ कह सकते है। सिद्ध संप्रदाय दोनों ने बहिःसाधना के विपरीत अन्त साधना पर जोर दिया और 'घट' के भीतर ही परम तत्त्व के उपलब्ध होने की बात कही। जिस प्रकार अन्तःसाधना पर इन दोनों पंथो में जोर दिया गया उसी प्रकार बाह्य आडम्बरो के तीव्र विरोध पर भी क्योंकि वाह्याडम्बर अन्त.साधना का प्रबल शत्रु है।

तीर्थ स्थान, देवार्चन आदि बाह्याचार का खण्डन करते हुए सिद्ध मत में कहा गया है कि बोधिसत्वों को ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि की पूजा नही करनी चाहिये। पत्थर आदि देवताओ की भी पूजा नहीं करनी चाहिए, न तीर्थ ही जाना चाहिए क्योंकि बाह्य पूजा से मोक्ष नही मिलता।[2]

भिन्न-भिन्न तीर्थों में घूम कर अनेक देवताओं की पूजा वा आराधना को योगियो के भी मूर्खता कहा है।[3]

---

१. सत गरु सबदा मिट गया दरिया ससय सोग।
औषद दे हरिनाम का तन मन किया निरोग॥
—संक्षिप्त संत सुधा सार, पृ० ४२२।

२. ब्रह्म विह्णु महेसुर देवा। बोहिसत्त ना करहु सेवा॥
देव ने पूजहु तित्थ ण जाना। देव पूजा ही तित्थ ण जावा॥
"सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ पन्थ के पारस्परिक साम्य और वैपम्य" शीर्षक लेख में उद्धृत।
—'साहित्य संदेश' मार्च १६५३।

३. न्हाइबे को तीरथ न पूजिवे को देव।
भणंत गोरख अलख अभेद॥
—'साहित्य संदेश' मार्च १६५३, पृ० ३६६।

हिंदू और मुसलमान दोनों में तीर्थ व्रतादि पाखंडो की सिद्धों और नाथों दोनों ने कटु आलोचना की है।

मूर्ति पूजा आदि पूजा की विधियों और बाह्याडम्बरों का निरस्कार सिद्धों तथा हठयोगियों दोनों ने किया। इन्ही की परंपरा के कारण संत मत में बाह्य विधानों के प्रति घोर उपेक्षा बुद्धि का पूर्ण प्रचार था। मुसलमानों के कारण संतों की इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार संत मत पर मुसलमानी प्रभाव मूर्ति पूजा के खंडन के रूप में मिलता है।

यद्यपि प्रथमतः नामदेव विट्ठल मूर्ति के उपासक थे परन्तु बाद में अपने दीक्षा गुरु विसोबा खेचर से निर्गुण निराकार ब्रह्म का उपदेश पाकर वे गद्गद हुए। उनकी भक्ति में जो अंध भाव था वह दूर हो गया। अपने मराठी के एक अभंग में वे कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति अपने भक्तों के साथ बातें करती है ऐसा कहने वाले तथा सुनने वाले दोनों भी मूर्ख हैं।[1]

नामदेव के अनुसार भैरउ, भूत तथा शीतला की उपासना और पूजा व्यर्थ है। वे कहते हैं कि मैं तो मात्र भगवान की भक्ति करता हूँ।[2]

नामदेव ने बाह्याचारों और मिथ्याडम्बरों का घोर विरोध किया है। वे अपने मन को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे मन। अश्वमेध यज्ञ, तुला दान, प्रयाग के संगम में स्नान, गया में पिण्ड दान आदि सभी बाह्याचार एकनिष्ठ भक्ति के समक्ष हेय है। हे मन! तू सभी भेदों का त्याग कर और निरंतर गोविन्द का स्मरण कर। तू निश्चय ही संसार सागर से तर जायेगा। इसमें संदेह नहीं।[3]

भगवान् की पूजा के लिए जल, पुष्प माला, नैवेद्य, दूध आदि का प्रबंध आडम्बर

---

१ पाषाणाचा देव बोलत भक्तांतें।
सांगते एकते मूर्ख दोघे।

—पाँच संत कवी, पृ० १५०।

२ भैरऊ भूत सीतला धावै। खर वाहन उहु छार उडावै॥
हऊ तउ एक रमईआ लेअऊ। आन देव बदलावनि देहऊ॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २०७।

३ असुमेध जगने। तुला पुरख दाने। प्राग इस्नाने॥
तऊ न पूजहि हरि कीरति नामा॥
अपुने रामहि भजु रे मन आलसीआ॥
सिमरि सिमरि गोबिंद। भजु नामा तरसि भव सिंध॥

—पंजाबातील नामदेव, पृ० १०४।

पूर्ण है। भले ही पुजारी इन्हे विशुद्ध और पवित्र समझे। कीटो, भ्रमरों, बछड़ो आदि के द्वारा ये पहले ही जुठना दिये गये है। इससे वे अपवित्र और अशुद्ध है। फिर ये पूजा की सामग्री कैसे हो सक्ते हैं ?[1]

करोड़ो तीर्थ यात्राएँ, पिण्ड दान तथा अन्य सभी प्रकार के दान व्यर्थ है। नामदेव अपने मन को प्रबोधित करते हुए कहते है कि हे मन। तू पाखण्ड को छोड़ दे, कपट न कर तथा नित्य मनोयोग से हरि नाम ले।[2]

मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए वे कहते हैं—एक पत्थर पूजा जाता है और दूसरा ठुकराया जाता है। यदि एक में देवत्व को अनुभूति है तो दूसरे में क्यो नही ?[3]

संत नामदेव का यह तार्किक मतव्य सहज भक्ति की मान्यता और आडम्बर पूर्ण मूर्ति पूजा की व्यर्थता प्रतिपादित करता है।

योग, यज्ञ, तप, होम, नेम-व्रत आदि वाह्याडम्बर किस काम के ? हे मन ! तू राम नाम जप।[4]

---

१. आणिले पुहुप गूँथिले माला बाल गोविंद हि हार रचूँ।
पहली वास जुं भंवरे लोनो, जूठणि भेला काइं करुँ॥
आणिले तंदुल रांधिले पीरा बाल गोविंद हि भोग रचूँ।
पहली दूध जु बछा बिटाल्या जूठणि भेला काइ करूँ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६१।

२. बानारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै
अगनि दहै काइआ कलपु कीजै।
असुमेध जगु कीजै सोना परमादानु दीजै।
रामनाम सरि तऊ त पूजै॥
छोडि छोडि रे पाखंडा मन कपटु न कीजै।
हरिका नामु नित नित ही लीजै॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १५६।

३. एकै पाथर कीजै भाउ। दूजै पाथर धरीए पाउ॥
जे ओहु देउ त ओहु भी देवा। कहि नामदेऊ हम हरि की सेवा॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १५२

४. भइया कोई तू ले रे रांम नाम।
जोग जिग तप होम नेम व्रत ए सब कोने काम॥ टेक॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १३८।

बिना प्रभु पर पूर्ण विश्वास किए तीर्थ व्रत आदि व्यर्थ है। एकादशी का व्रत एक साधन है। नामदेव कहते हैं कि मै जब गन्तव्य स्थान पर पहुँचा तो मैंने सीढी का त्याग किया।[१]

ढोंगी भक्तों पर नामदेव को तरस आता है और वे व्यंग्यपूर्वक कहते हैं—उस भक्त का क्या कहना जो बिना प्रतीति के पत्थर को पूजता है। नहाता धोता है, गले में तुलसी की माला पहनता है परन्तु उसका अंत करण कोयले-सा काला है।[२]

मूर्ति पूजा और बलि का खण्डन नामदेव ने बार बार किया है।[३]

यदि कोई शरीर को लगे कीचड को कीचड ही से स्वच्छ करना चाहे तो उसका यह प्रयास व्यर्थ होगा। जो भीतर से मलिन और बाहर से स्वच्छ है वह धोखेबाज है। नामदेव कहते हैं कि हे मन ! सुरभी को छोडकर भेड़ की पूँछ पकड कर तू भव-सागर को कैसे पार कर सकेगा ?[४]

लोगो के आडम्बर पर नामदेव को बहुत क्षोभ होता है।[५]

---

१. तीरथ बरत जगत् की आस।
फोकट कीजे बिन बिसवास ॥ २ ॥
एकादशी जगत् की करनी।
पाया महल तब तजी निसरनी। —संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५६

२. भगत भला बाबा काइला। बिन परतीतें पूजे सिला ॥ टेक ॥
न्हावै धोवै करै सनान। हिरदै आँधिन माथै कान ॥ १ ॥
गलि पहिरै तुलसी की माला। अंतरगति कोइला सा काला ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २४।

३. पाहन आगै देव कटीला। वाको प्राण नहीं वाकी पूजा रचीला ॥
निरजीव आगै सरजीव मारै। देषत जनम आपनो हारै ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ४७।

४. लागी पंक पंक लै धोवै निर्मल न होवै जनम बिगोवै।
भीतरि मैला बाहरि चोषा। पाणी पिंड पषाले धोषा।
नामदेव कहै सुरही परहरिये। भेड पूँछ कैसे भवजल तरिये।
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २२।

५. मन थिर होइ वा रे न होइ। ऐसा चिह्न करै संसार।
भीतरि मैला घूतिग फिरै। क्यूँ उतरै भव पार ॥ टेक ॥
रुद्राष सपा जप माला मंडै। ताको मरम न जानै कोई।
आप न देषै और दिपावै। कपट मुक्ति क्यो होई ॥ १ ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६४।

हिन्दू धर्म और समाज की बुराइयों पर कबीर ने भी कुठाराघात किया है। हिन्दुओं के तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा आदि से उन्हें बेहद चिढ़ है। मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए वे कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति को पूजने से यदि परमात्मा मिल सकता है तो मैं पहाड़ की पूजा करूँगा। उसकी अपेक्षा तो यह चक्की भली जिसका पीसा सारा संसार खाता है।[1]

जो लोग पत्थर की मूर्ति बनाकर उसे कर्तार समझकर उसकी पूजा करते हैं वे पाप की धारा में डूब जाते हैं।[2]

तीर्थ और व्रत बेल के समान संपूर्ण संसार पर छाए हुए हैं। कबीर ने इन बाह्याचारों को जड़ से ही नष्ट कर दिया। इस विष को कौन खायगा ?[3]

भक्ति से रहित जप-तप तथा तीर्थों एवं व्रतों पर विश्वास करना भी भ्रम है। ये सब तो सेमर के फूल के समान हैं जो देखने में बड़ा आकर्षक पर वस्तुतः सारहीन है।[4]

हे जीवात्मा ! केशों के मुड़ाने से भी कुछ नहीं होता। बंधन का कारण तो केश नहीं मन के विकार हैं। तू उस मन को क्यों नहीं मारता जिसमें विषय-विकार भरे पड़े हैं।[5]

केवल वैष्णव बनने से काम नहीं चलता। बिना विवेक के संसार की कोई

---

१. पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
   ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार ॥

—साखी संग्रह, पृष्ठ १८३।

२. पाहण केरा पूतला करि पूजै करतार।
   इही भरोसे जे रहे बूड़े काली धार ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ४३।

३. तीरथ त सब बेलडी, सब जग मेल्या छाइ।
   कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाइ।

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ४४।

४. जप तप दीसैं थोथरा तीरथ व्रत बेसास।
   सूवै सैंबल सेविया यो जग चल्या निरास ॥

—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ४४।

५. केसन कहा बिगाडिया, जे मूंडै सौ बार।
   मन कौं काहे न मूंडिए जामै विषै विकार ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ४६।

साधना सफल नहीं हो सकती। छापा तिलक लगाने से ही सफलता नहीं मिल सकती।[1]

एकेश्वरवाद का प्रतिपादन

जिन परिस्थितियों ने निर्गुण पंथ को जन्म दिया था, एकेश्वरवाद उनकी सब से बड़ी आवश्यकता थी। वेदांत के अद्वैतवादी सिद्धांतों को मानने पर भी हिन्दू बहुदेववाद में बुरी तरह फँसे हुए थे। एक अल्लाह को माननेवाले मुसलमान भी स्वयं एक प्रकार से बहुदेववादी हो रहे थे। अतएव निर्गुणवादियों ने हिन्दू और मुसलमानों को एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया और बहुदेववाद का विरोध किया।

वारकरी सम्प्रदाय में एक देवोपासना का ही महत्व है। नामदेव ने बहुदेववाद का विरोध किया है और एकेश्वरवाद का प्रतिपादन। अपने 'गोविन्द' का परिचय देते हुए उन्होंने कहा है—'वह एक है और अनेक भी है, वह व्यापक है और पूरक भी है। मैं जहाँ देखता हूँ वहाँ पर वही दीख पड़ता है। माया की चित्र विचित्र बातों द्वारा मुग्ध होने के कारण सभी कोई इस रहस्य को समझ नहीं पाते। सर्वत्र गोविन्द ही गोविन्द है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं। वह सहस्रों मणियों के भीतर ओत प्रोत धागे की भाँति इस विश्व में सर्वत्र वर्तमान है। नामदेव का कथन है कि इस बात को अपने हृदय में भली भाँति समझ लो कि मुरारी ही एक मात्र घट घट में और सर्वत्र एक रस भाव से व्याप्त है।[2]

---

१. वैसनो भया तो का भया बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनाइ करि दगध्या लोक अनेक॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ४६।

२ एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई॥
माइआ चित्र बिचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई।
सभु गोविन्द है सभु गोविन्दु है गोविन्द बिनु नहि कोई॥
सूत एकु मणि सत सहस जैसे ओतिपोति प्रभु सोई॥
जलतरंग अरु फेन बुदबुदा जलतें भिन्न न कोई॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई॥
मिथिआ भरमु अरु सुपनु मनोरथ सति पदारथु जानिआ॥
सुक्रित मनसा गुर उपदेसी जागत ही मनु मानिआ।
कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बिचारी॥
घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥

—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १५०।

संत नामदेव उस एक मात्र राम के प्रति ही अपनी भक्ति का प्रदर्शन करते हैं। उनका कहना है कि 'जिस प्रकार नाद को श्रवण कर मृग उसमें निरत हो जाता है और उसका ध्यान मर जाने तक नही टूटता, जिस प्रकार बगला मछली की ओर दृष्टि लगाये रहता है, उसी प्रकार मेरी दृष्टि भी उसी एक 'राम की ओर लगी हुई है। जहाँ देखता हूँ वहाँ वही है उसके सिवा और कुछ भी नहीं।'[१]

इसीलिए उन्होंने उस एक को ही भक्ति को अपनाया था और अन्य देवी-देवताओं को पूजा को व्यर्थ बतलाया था। उनका कहना है कि जो लोग भैरव का ध्यान करते है वे भूत होंगे और जो शीतला का ध्यान करते है गधा उनका वाहन होगा और निरंतर धूल उडायेंगे। अब रहा मै, मैं तो मात्र भगवान की भक्ति करता हूँ—भगवान की तुलना में मै अन्य देवताओ की उपेक्षा करता हूँ।[२]

अन्य एक स्थान पर वे लिखते है—'एक राम को वंदना करने पर मै और किसी की वंदना न करूँगा। राम-रसायन प्राशन कर मै अन्य देवताओ के सामने न घिघियाऊँगा। नामदेव कहते है कि एक मात्र राम मेरे जीवन मे रमे हुए है। अन्य देवता निकम्मे है।[३]

उस एक के प्रति अपनी अनन्य भावना व्यक्त करते हुए नामदेव कहते है—'मैं अन्य देवी देवताओ को नही जानता। तू सुख का सागर है। मेरे प्राण, माता-पिता, गुरु आदि तुम ही हो। तुम मेरे सर्वस्व हो, अन्य कोई नहीं।'[४]

---

१. नादि भ्रमे जैसे मिरगाए। प्रान तजे वाको धिआनु न जाए॥
ऐसे रामा ऐसे हेरउ। राम छोड़ि चितु अनत न फेरऊ॥
जह जह देखऊ तह तह नामा। हरिके चरन नित धिआवै नामा॥
—पंजाबातील नामदेव, पृ० १०५।

२. भैरऊ भूत सीतला धावै। खर बाहन उहु छार उडावै॥
हुऊ तऊ एक रमईआ लेअऊ। आन देव बदलावनि देहुऊ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद २०७।

३. राम जुहारि न और जुहारौ। जीवनि जाइ जनम कत हारौं।
आन देव सौं दीन न भाषौ। राम रसाइन रसना चाषौं।
भणत नामदेव जीवनि रामा। आन देव फोकट बेकामा॥
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ३०।

४. *आन न जानौ देव न देवा। जित जित प्राण तित ही तेरी सेवा॥१॥*
तूं सुष सागर आगर दाता। तूं ही मेरे प्राण पिता गुर माता॥२॥
नामौं भणै मेरे सब कुछ साईं। मनसा वाचा दूसर नाहीं॥३॥
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १२६।

कबीर ने ब्रह्म को निर्गुण एवं अरूप बताया है। कई स्थलों पर उन्होंने एक विशेषण से ब्रह्म को विशिष्ट करके उसका वर्णन किया है। यथा—

जिसने उस एक को जान लिया, उसने सब कुछ ही जान लिया। यदि उस एक को जाने बिना अन्य अनेकों विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया, तो वह अज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं।[१]

कबीर कहते हैं कि एक ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त न करके यदि अनेकों ज्ञान प्राप्त कर लिए तो उनसे कुछ नहीं होता। एक से सब हो जाते हैं पर सबसे एक नहीं बनाया जा सकता।[२]

केवल एक राम की आशा ही उचित है अन्य आशाएँ तो व्यर्थ हैं। जो लोग ईश्वर की आशा को छोड़कर अन्य की आशा करते हैं वे उन लोगों के समान हैं जो पानी में रह कर भी प्यास मरते हैं।[३]

इस कलियुग में मनुष्य अनेक मित्रों को बनाता है लेकिन ये सब दुख-दुख देने वाले होते हैं। परन्तु जिनका हृदय एक से बँध जाता है वही निश्चिंत सो सकता है।[४]

हमने तो एक ही को समझा है, जो दो कहते हैं उनको तथा जिन्होंने उस एक को नहीं पहचाना, उन्हें नरक ही मिलता है।[५]

ब्रह्म में एक विशेषण के प्रयोग के आधार पर कबीर को एकेश्वरवादी कहा जाता है।

---

१. जे वो एक जाणियाँ, तौ जाण्या सब जाण।
जे ओ एक जाणियाँ, तो सबही जाण अजांण॥
—कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १६।

२. कबीर एक न जाणियाँ, तो बहु जाण्या क्या होइ।
एक तें सब होत है, सब तें एक न होइ।
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १६।

३. आसा एक जु राम की, दूजी आस निरास।
पाणी माहे घर करें, ते भी मरें पियास॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १६।

४. कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुतज मीत।
जिन दिल बँधी एक सूँ, ते सुखु सोवै नचींत॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २०।

५. हम तो एक-एक करि जाना।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नाहिन पहिचाना॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १०५।

कबीर भगवान को विश्वकर्ता, रक्षक, नियन्ता आदि व्यवहार के लिए मानते हैं। भगवान का यह स्वरूप कबीर के लिए गौण है। कबीर का ब्रह्म घट-घट वासी एक सर्वव्याप्त तत्व है। उसका रक्षक, संहारक स्वरूप तो केवल जगत् व्यवहार के लिए है।[1]

कबीर ने इस्लामी एकेश्वर तथा अपने ब्रह्मैक्य के अंतर को स्पष्ट कर दिया है।[2] एक खुदा या अल्लाह संख्या में बंध जाता है परन्तु कबीर का सत्य तत्व सर्वव्यापी है और संख्या से अतीत है।

जब प्रभु सर्वत्र व्याप्त है तब उसे मंदिर या मसजिद की परिधि में नहीं बांधा जा सकता।[3]

अखण्ड एवं सर्वत्र व्याप्त सत्ता को भेद-बुद्धि से दो या अनेक कहना मोटी बुद्धि अथवा मूर्खता का काम ही कहा जा सकता है।[4]

निर्गुणी एकेश्वर के भक्त को अलंकारिक भाषा में पतिव्रता नारी कहते हैं। कबीर की दृष्टि में बहुदेववादी उस व्यभिचारिणी स्त्री के समान है जो अपने पति को छोड़कर जारों पर आसक्त रहती है।[5]

चरनदास कहते हैं कि सिर टूट कर पृथ्वी पर भले ही लोटने लगे, मृत्यु भले ही आ उपस्थित हो परन्तु राम के सिवा किसी अन्य देवता के सामने मेरा सिर न झुके।[6]

---

१. कहै कबीर विचारी करि ये ऊले ब्योहार।
याही थैं जे अगम है सो बरति रह्या संसारि॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २४३।

२. मुसलमान कहै एक खुदाइ,
कबीरा को स्वामी घटि घटि रह्यौ समाइ॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २००।

३. खालिक खलक, खलक में खालिक सब घट रह्या समाई॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १०४।

४. कहै कबीर तरक दोइ साधै ताकी मति है मोटी॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १०५।

५. नारि कहावै पीव की रहै और संग सोय।
जार सदा मनमें बसै, खसमखुसी क्यों होय॥
—संत बानी संग्रह, पृष्ठ १८।

६. यह सिर नवे त राम कूँ नाही गिरयो टूट।
आन देव नाहि परसिए यह तन जायो छूट॥
—संत बानी संग्रह, पृष्ठ १४७।

दादू के राम और अल्लाह, अलख, इलाही सब एक ही हैं।[१]

कबीर कहते हैं कि जिन्होंने एक परमात्मा को माना उन्हीं को सत्य का साक्षात्कार हुआ। जो उससे लौ लगाते हैं वे आवा-गौन के फेर से मुक्त हो जाते हैं।[२]

कथनी तथा करनी में एकरूपता

अपनी तीव्र सामाजिक चेतना के कारण संत व्यावहारिकता एवं आदर्श में संतुलन स्थापित करने के पक्षपाती थे। इसलिए उनके साहित्य में किसी भी प्रकार की अतिवादिता के प्रचार की गंध नहीं मिलती। व्यवहार और आदर्श के साथ ही इन संतों ने विचार और आचरण में भी सामञ्जस्य लाने पर जोर दिया। उनके साहित्य में भी केवल काल्पनिक बातों और विचारों का ही प्राचुर्य नहीं है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है अपने अनुभव के आधार पर तथा अपने उपदेशों पर आचरण करके ही लिखा है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों एवं उनके दैनिक आचरण में कोई विरोध कदाचित ही मिले।

सांसारिक व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वे कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं। संतों के अनुसार मनुष्य को वैसा ही आचरण करना चाहिए जैसा वह उपदेश देता हो। सभी निर्गुण कवियों में इस ढंग की बात मिलती है। नामदेव ने भी 'करनी के बिना कथनी' की आलोचना की है। उनके अनुसार भक्त और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। जो इस प्रकार का अन्तर मानता है वह नर पशु है। जो परमात्मा को छोड़कर वेद-विधि से कार्य करता है वह जल भुन कर मर जाता है। व्यर्थ बातें तो बहुत बढ़ बढ़कर बनाता है किन्तु विरला ही कोई उनको कार्यान्वित करता है।[३]

---

१. एकै अलह राम है समरथ साईं सोइ।
मैदे के पकवान सब खाता होइ सो होइ॥

—संत काव्य, पृष्ठ २६६।

२. एक-एक जिनि जाणिया तिनहिं सब पाया।
प्रेम प्रीति ल्यौ लीन मन, ते बहुरि न आया॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १६।

३. भगवंत भगता नहीं अंतरा।
द्वै करि जानें पसुवा नरा॥ टेक॥
छाड़ि भगवत वेद विधि करै।
दाझै भूजै जामें परै॥ १॥
कथनी बदनी सब कोई कहै।
करनी जन कोई बिरला रहै॥ २॥

जब तक अंत:करण शुद्ध नहीं है तब तक ध्यान, जप आदि के करने से क्या लाभ ? साँप केंचुली छोड देता है परन्तु विष नहीं छोड़ता।[१]

पाखंड पूर्ण भक्ति से राम नहीं रीझते, रीझते है तो आँख के अंधे ही।[२]

जब तक अंत.करण शुद्ध न हो तब तक नहाने धोने से क्या लाभ ? गले में तो तुलसी की माला है और अंत.करण कोयले सा काला है।[३]

नाचने गाने तथा घिस घिस कर चंदन लगाने से क्या लाभ ? यदि तूने स्वयं को नही पहचाना तो समझना होगा कि भ्रम में पडा तेरा मन चारो ओर भटक रहा है।[४]

कबीर ने 'करनी बिना कथनी' की निन्दा की है। उनके अनुसार जब तक मनुष्य के वचन और कर्म में सामंजस्य नहीं होता तब तक उसका सारा परिश्रम व्यर्थ है। जो लोग कहते कुछ है और करते कुछ है वे मनुष्य नहीं पशु है और अत समय वे नरक को प्राप्त होते हैं।[५]

केवल बाह्य रूप से राम नाम की रट लगाने से कुछ नहीं होता जब तक हृदय में उसका महत्त्व नहीं जाना जाता। कबीर कहते है कि मनुष्य राम नाम का कीर्तन बड़े जोर से मुख उठाकर करता है। वह वास्तविकता को न पहचान कर बिना सिर

कहत नामदेव ममता जाइ।
तौ साध संगति में रहा समाई ॥ ३ ॥

—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ११७।

१. काहे कू कीजे ध्यान जपना। जो मन नाही सुध अपना॥
साँप काँचली छाडैं विष नही छाडै। उदिक में बग ध्यान माडै॥

—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २३।

२. पाषड भगति राम नही रीझै। बाहरि आधा लोक पतो जै॥

—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २१।

३. न्हावे धोवै करै सनान। हिरदै आपिन माथै कान ॥१॥
गलि गलि पहिरै तुलसी की माला। अंतरगति कोइला सा काला ॥२॥

—सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २४।

४. का नाचीला का गाईला। का घसि घसि चंदन लाईला ॥टेक॥
आपा पर नहिं चीन्हीला। तौ चित चितारै डहकीला ॥१॥

—सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २०।

५. जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चाले नाहिं।
मानिष नहि ते स्वान गति, बाध्या जमपुर जाहिं॥

—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ३८।

के शरीर के समान कार्य करता है।[1]

कबीर साहब कहते हैं कि कथनी खाँड के समान मीठी है परन्तु करनी अर्थात् कृति प्रत्यक्ष जहर का घूँट है। मनुष्य यदि लंबी-चौड़ी बातें बनाना छोड़कर कृति को महत्त्व दे तो विष का अमृत बन जाये।[2]

कबीर साहब ने अपनी एक साखी में बतलाया है कि वास्तव में 'सहजशील' के ही अभ्यास में मेरे 'मत' का सार आ जाता है। इस 'सहजशील' का परिचय देते हुए वे एक स्थान पर कहते हैं कि इसके लिए कम से कम सती, संतोषी, सावधान, शब्दभेदी तथा सुविचारवान होने की आवश्यकता है जो सद्गुरु के प्रसाद अथवा उसकी कृपा पर निर्भर है।[3]

इनमें से 'सुविचार' का गुण हमारे भीतर सारग्राहिता की भावना जागृत करता है तथा उसी प्रकार कथनी और करनी के बीच सामंजस्य बनाये रखने का भी यत्न करता है। इस प्रकार के सहजशील का अभ्यास निरंतर होता रहना चाहिये। इसके सफल हो जाने पर ही हमें उस सहजावस्था की भी उपलब्धि हो जाती है जिसमें 'अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्णतः अपने कहने में आ जाती हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हमें स्वयं परमात्मा का ही स्पर्श अथवा प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।'[4] अब कथनी एवं करनी में कोई अंतर नहीं रह जाता। जैसा मुख से निकलता है वैसा ही अपना दैनिक व्यवहार भी चलता है।

संत रज्जब करनी तथा कथनी की एकरूपता पर बल देते हुए कहते हैं कि औषधि बिना पथ्य के तथा पथ्य बिना औषधि का किस काम का ? यदि नामस्मरण

---

१. करता दीसै कीरतन ऊँचा करि करि तूंड।
जाणे बूझे कुछ नहीं यौंही आंधा रूंड॥
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ३८।

२. कथनी मीठी खाँड सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष तें अमृत होय॥
—कबीर वचनावली, पृष्ठ २४।

३. सती संतोषी सावधान सब्द भेद सुविचार।
सतगुरु के प्रसाद थैं सहजशील मत सार॥
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ६३।

४. जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल॥
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ३८।

और कृति में मेल न हो तो दोनो की प्रशंसा नही होती ।[1]

मनुष्य भजन और साखी गाकर आनंदित होता है कि उसने ईश्वर की भक्ति कर ली। लेकिन यह सब व्यर्थ है जब तक उस परम तत्त्व के नाम का ध्यान नही किया। उसके कंठ में यम का फंदा अवश्य पड़ेगा ।[2]

भक्ति और ऐहिक कार्य में एकता :

भक्ति और सासारिक कार्यों को संतो ने अलग अलग नही समझा। भक्ति और जीविका के कर्मों में कोई विरोध नही क्योंकि भक्ति हृदय से होती है और कर्म हाथों से। इसीलिए उन्होने श्रम और भक्ति दोनों को एक दूसरे का पूरक माना है। श्रम से भक्ति सहज होती है और भक्ति से श्रम सहज। संतो ने नाम-स्मरण और श्रम साथ साथ किया।

इस प्रकार नामस्मरण और कर्म का समन्वय नये वेदात की अद्वितीय विशेषता है। कबीर[3] भजन और बुनकरी, नामदेव भजन और दर्जी का काम, रैदास भजन और मोची का काम, सेना भजन और नाई का काम साथ-साथ करते थे। रैदास ने[4] अपनी समस्या का समाधान करते हुए कहा कि सब प्रतिवाद छोड़कर अहर्निश हरि स्मरण करना चाहिए।

प्राचीन वेदात में भक्ति केवल साधन है, साध्य नही है। इसके विपरीत नया वेदात भक्ति को परम साध्य मानता है। यही एक मात्र सार वस्तु है। यह भजन है या नाम की साधना है। भक्त निशि-दिन भजन करता है। इसका भजन अजपा जप है।

---

१. औषध बिना पथ्य का करै पथ्य बिना औषधि आदि ।
यूँ सुमिरण सुकृत अमिल, उभै न पावहि दादि ॥
—संत काव्य, पृष्ठ ३४० ।

२. पद गाऐ मन हरषियां, साषी कह्यां आनंद ।
सो तत नाव न जाणिया, गलमे पड़िया फंध ॥
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ३८ ।

३. 'हम घरि सूतु तनहि नित ताना'
—गुरु ग्रन्थ साहब, राग आसा, पद २६ ।

'बुनि बुनि आप आपु पहिरावउ'
—गुरु ग्रन्थ साहब, राग भैरऊ, पद ७ ।

४. अहनिसि हरि सुमरिये छाँडि सकल प्रतिवाद ।
—संक्षिप्त संत सुधा-सार, पृष्ठ ६६ ।

भजन के बिना वह जी नहीं सकता। यही उसकी रहनी है। यह भाव-भक्ति है। इसी को प्रेम लक्षण भक्ति भी कहा जाता है।

नामदेव की भक्ति भी भाव-भक्ति है। वे भी भक्ति तथा ऐहिक कार्य की एकता पर बल देते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका का काम करते समय हरि भजन या नाम स्मरण भी करते रहना चाहिए। नामदेव कहते हैं कि मेरा मन गज है और जिह्वा कैंची है। मैं मन रूपी गज और जिह्वा रूपी कैंची की सहायता से यम का बंधन काटता हूँ। मैं कपड़ा रँगने और सिलने का काम करता हूँ—घड़ी भर के लिए भी भगवन्नाम विस्मृत नहीं करता हूँ।[1]

नामदेव के विचार से राम का ध्यान संसार के सभी आवश्यक कार्य करते हुए करना चाहिए। उनका कथन है कि 'मेरा मन राम नाम से इस प्रकार बिंधा हुआ है जैसे स्वर्ण तौलते समय सुवर्णकार का ध्यान तुला की ओर बना रहता है। जिस प्रकार युवतियाँ सिर पर पानी से भरे घड़े लेकर आपस में मनोविनोद करती हुई चलती है किंतु उनका ध्यान सदा घड़ों पर ही रहता है, जिस प्रकार माता का मन घरेलू झंझटों में फँसे रहने पर भी पलने में पौढ़ाये हुए अपने बालक की ओर रहता है उसी प्रकार मेरा मन उसमें लगा रहता है।'[2]

भाव भगति का प्रतिपादन करते हुए नामदेव एक अन्य स्थान पर कहते हैं कि हृदय में सच्चा भाव नहीं है और नामदेव हरि का नाम लेता है। हे केशव! पानी के बिना नाव कैसे तरेगी?[3]

---

१. मन मेरो गजु जिह्वा मेरी काती।
मपि मपि काटउ जम की फासी ॥१॥
रागनि रागउ सीवनि सीवउ।
राम नाम बिनु घरीय न जीवउ ॥२॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १८।

२. ऐसे मन राम नामै बेधिला। जैसे कनक तुला चित राषिला ॥टेक॥
आनिलै कुंभ भराइलै उदिक, राजकुँवारि पुलंदरिये।
हसत विनोद देत करतालो चित सू गागरि राषिला॥
भणत नामदेव सुनो तिलोचन, बालक पालनि पौढ़िला।
अपनै मंदिर काज करती, चित सू बालक राषिला॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६।

३. अभि अतर नहीं भाव, नाम कहै हरि नाद सू।
नीर बिहूणी नाव, कैसे तिरिबौ केसवे॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पृष्ठ ११४ (साखी १)

अंत.करण तो काला है और बाहर भक्ति का दिखावा करता है। नामदेव कहते हैं कि हरि भजन के बिना उसे निश्चय ही नरकवास मिलेगा।[1]

अंतःकरण तो परमात्मा से अनुरक्त है परन्तु बाहर से उदास है। भाव भक्ति के कारण मुझे परमात्मा का साक्षात्कार हुआ।[2]

भाव-भगति को कबीर ने 'हरि सूं गठ जोरा' कहा है।[3] उनके अनुसार 'भगति' या भक्ति से तात्पर्य 'हरि नाम का भजन' मात्र है। अन्य बातें अपार दुःख से भरी हुई हैं।[4] नारद के समान कबीर ने भी भक्ति को कर्म, ज्ञान तथा योग से श्रेष्ठ कहा है। वे उसे मुक्ति का एक मात्र उपाय मानते हैं।[5] जब तक भाव-भक्ति न करोगे तब तक भव सागर कैसे पार कर सकते हो?[6]

कर्मकांड को कबीर पाखंड ही के अंतर्गत मानते है क्योंकि परमात्मा की भक्ति तन को स्वयं ही अपने अनुकूल बना लेगी। भक्ति की सच्ची भावना होने से कर्म भी अनुकूल होने लगेंगे। परन्तु केवल माला जपने से अथवा पूजा पाठ करने से कुछ नहीं

---

१. अभि अंतरि काला रहै, बाहरि करै उजास।
नाम कहै हरि भजन बिन, निहचै नरक निवास॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, साखी २, पृष्ठ ११४

२. अभि अंतरि राता रहै बाहरि रहै उदास।
नाम कहै मै पाइयो, भाव भगति बिसवास॥
संत नामदेव की हिंदी पदावली, साखी ३ पृष्ठ ११४

३. कहै कबीर तन मन का ओरा।
भाव भगति हरि सूं गठ जोरा॥
—कबीर ग्रन्थावली, पद २१३, पृष्ठ १६०

४. भगति भजन हरि नाँव है दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरण सार॥
—कबीर ग्रन्थावली साखी ४, पृष्ठ ५

५. भाव भगति विसवास बिन कटै न संसै मूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नहो रे मूल॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २४५

६. जब लग भाव भगति नहो करिहौ।
तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ।
—कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ २४५

हो सकता। यह तो मानो और भी अधिक माया में पड़ना है।[१] जब तक भगवान को भाव-भक्ति से रिझा न लिया जाय तब तक जप, तप, व्रत, संयम, स्नान आदि से क्या लाभ?[२]

सत्संग की प्रधानता

पुरानी व्यवस्था ज्ञानमूलक समाज व्यवस्था को पक्षपाती थी। उसने चातुर्वर्ण्य का समर्थन किया जिससे कालांतर में अनेक जातियाँ बनी। कबीर जाति-पाँति के नियमों के कट्टर विरोधी थे। उनकी दृष्टि में सब मनुष्य समान थे तथा भगवद् भक्ति का सबको समान अधिकार था। 'जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई' उक्ति इसी सिद्धान्त की द्योतक है।

जो हरि का भजन करता है वही हरिजन है। मनुष्य मात्र को हरिजन होना चाहिये। संतो की जाति नही होती। सभी लोगों को संतो के चरित्र से शिक्षा लेनी है।[३]

जीवोत्पत्ति की दृष्टि से भी जाति व्यवस्था अप्राकृतिक है। पुराना वेदांत मानव को उद्भिज्ज मानता है किंतु कबीर के अनुसार सभी मानव योनिज हैं। भिन्न शरीरों को धारण करने तथा वंशानुगत क्रमानुसार किसी जाति के परिवार विशेष में जन्म ग्रहण करने के कारण लोग एक दूसरे को अपने से भिन्न मान लेते हैं। उस एक मात्र सत्य के प्राकृतिक नियमों पर विचार करने से दो व्यक्तियों में कोई मौलिक अंतर नहीं दीख पड़ता।

निर्गुण मत जाति व्यवस्था का उन्मूलन करता है। अलगाव की प्रथाओं का खण्डन करता है, बाह्य आडम्बरों के निराकरण की अपील करता है और अंत में भक्ति पूर्ण कथनी, करनी और रहनी की व्यवस्था करता है। इससे उसने एक नया समाज बनाया जो 'सत्संग' के नाम से प्रसिद्ध है। यह सत्संग एक समतामूलक, भक्तिमूलक तथा निजी आर्थिक व्यवस्था वाला संगठन है।

---

१. जप तप पूजा अरचा जोतिग जग बौराना।
कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मन ही मन न समाना॥

२. क्या जप क्या तप संयमो क्या व्रत क्या इस्नान।
जब लग जुक्ति न जानिये भाव भक्ति भगवान॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ३२६

३. संतन जात न पूछो निरगुनियाँ।
हिंद तुर्क दुइ दीन बने हैं कछु नहीं पहचनियाँ॥

—संक्षिप्त संत-सुधा सार, पृष्ठ ४८

यह सत्संग विरक्त साधुओं की जमात नहीं है। यह गृहस्थ भक्तों का संगठन है। उनको यह उत्पादक श्रम तथा अध्यात्म दोनों की शिक्षा देता है। प्रत्येक भक्त को उत्पादक श्रम करना चाहिए। नामदेव, कबीर, रैदास सेना आदि भक्तों ने जीवन पर्यंत अपना पेशेवर कार्य किया। नया वेदांत कर्म और अध्यात्म भावना का समन्वय करता है। सत्संग इस समन्वय को मूर्त रूप देता है।

सत्संगति को भक्ति का प्रमुख साधन माना जाता है। अध्यात्म रामायण में तो इसे प्रथम साधन कहा ही है। इस साधन को नामदेव ने विशेष महत्व दिया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में उसके आदर्शों का प्रतिपादन किया है।

संतों के सहवास के लिए नामदेव आतुर हैं। वे अपनी आंतरिक अभिलाषा इस प्रकार *व्यक्त करते है—आज मुझे कोई हरि का दास मिले तो परम सुख होगा।* वह मेरे मन में भाव-भगति जाग्रत करेगा, मेरे मन की दुविधा दूर करेगा तब आत्मज्ञान का प्रकाश फैलेगा। नामदेव कहते है कि जब मेरा मन उदास रहता है तब संत समागम से मुझे अपार सुख होता है।[१]

संसार में ऐसा भक्त विरला ही होता है। हे पंडितो! तुम वेद तथा पुराणों का अनुशीलन कर देखो। दही बिलोकर निकाला घृत फिर दही से एक रूप नहीं होता अग्नि लकड़ी के जितने हिस्से को जलाती है वह फिर लकड़ी नहीं हो सकता। पारस के स्पर्श से जो लोहा सोना बनता है वह फिर से लोहा नहीं हो सकता। पलाश चंदन से बेढ़े जाने पर चंदन होता है। इसी प्रकार जो लोग निष्काम भाव से राम से लौ लगाते है वे राम रूप हो जाते हैं।[२]

---

१. आज कोई मिलसो मुनै राम सनेही।
तब सुख पावै हमारी देही ॥टेक॥
भाव भगति मन में उपजावे। प्रेम प्रीति हरि अंतरि आवै ॥१॥
आपा पर दुविधा सब नासै। सहजै आतम ग्यान प्रकासै ॥२॥
जन नामा मन परा उदास। तब सुप पावै मिलै हरिदास ॥३॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १०२

२. ऐसे जगर्थं दास नियारा।
वेद पुरान सुमृत किन देषो पंडित करउ विचारा ॥ टेक ॥
दधि विलोइ जैसे घृत लीजे। बहुरि न एकठ थाई ॥
पावक दार जतन करि काढ्या, बहुरि न दार समाई ॥१॥
पारस परसि लोहु जैसे कंचन बहुरि न थ्यंबक होई।
आक पलास बेधीया चंदन, कास्ट कहै नहीं कोई ॥२॥

जो जितना ही हरि के भक्तों से दूर रहेगा वह हरि (परमात्मा) से भी उतना ही दूर रहेगा। नामदेव कहते है कि हरि के उस दास अथवा भक्त की मुक्ति कैसे होगी ?[1]

जो अंधे के समान स्थान स्थान पर टटोलता है और संतो को पहचानता नहीं, नामदेव कहते है कि बिना हरि के भक्तो से परिचित हुए वह भगवान को कैसे पा सकता है ?[2]

नामदेव कहते है कि सब से 'निरवैरता' रखने वाला साधु पूजने योग्य होता है।[3]

हीन जाति में पैदा होने की बात नामदेव को खटकती थी।[4] अपने एक पद में वे कहते है—हे परमात्मा ! मेरी जाति हीन है वह किसी से सही नहीं जाती।[5]

मैंने छीपे के घर जन्म लिया। मुझे गुरु का उपदेश मिला। साधु संतों के प्रसाद से मुझे भगवान के दर्शन सुलभ हो गये।[6]

जे जन राम नाम रंगि राता, छाड़ि करम की आसा।
वे जन रामे राम समाने, प्रणवत नामदेव दासा॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ८२

१. जेता अंतर भगत सूं तेता हरि स होइ।
नाम कहे ता दास की मुक्ति कहाँ तै होइ॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, साखी ६

२. डिग डिग ढूंढे अंध ज्यूँ चीन्है नाही संत।
नाम कहे क्यूँ पाइये बिन भगता भगवंत॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, साखी ७

३. समज्या पटक यूं बणै इहु तौ बात अगाधि।
सब्हनि सूं निरवैरता पूजन कूं ऐ साध॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, साखी १०

४. हीन दीन जात मोरी पंढरी के राया।
ऐसा तुमने नामा दरजी काहे को बनाया।

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १८४

५. दया मेरी हीन जाति है। काहू पै सही न जाती हो।

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५३

६. छीपे के घर जनमु दैला गुर उपदेस भैला।
संतन के परसादि नामा हरि भेटुला॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १५१

मुझे भला जाति-पाँति से क्या लेना-देना ? मैं तो दिन-रात राम नाम जपता हूँ। मेरी सोने की सुई और चाँदी का धागा है। नामदेव कहते हैं कि मेरा चित्त भगवान मे लगा हुआ है।[1]

कबीर भी इस सत्संग के पुरस्कर्ता थे। इस साधन को उन्होंने विशेष महत्त्व दिया है। वे कहते हैं कि यह शरीर मन के साथ रहता है अर्थात् यह पंछी हो रहा है। जहां पर मन हो वहीं शरीर उड़ जाता है। वास्तव में जो जिस संगति में रहता है उसे उसी प्रकार का फल भी मिलता है।[2] एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं कि सत् पुरुष के समीप बैठना कभी निष्फल नहीं होता। चंदन का वृक्ष यदि छोटा भी हो तब भी उसको कोई नीम नहीं कह सकता।[3]

कबीर साहब कहते है कि यह संसार काजल की कोठरी के समान है। इसमें पैठ कर जो बिना कालिख लगाये बाहर निकल आये उसकी बलिहारी है।[4]

अगर तुझे प्रेम की पीर की अनुभूति करना है तो पक्के साधु की संगति कर। कच्ची सरसो को कोल्हू में पेलकर क्या फायदा ? उससे न खली मिलती है न तेल।[5]

यों तो उन्होंने स्थान स्थान पर साधुओं के गुणों का वर्णन किया है किंतु एक स्थल पर अत्यन्त संक्षेप में उसकी विशेषताएँ निर्देशित कर दी है—ये (संत) 'निरवैरी' अर्थात् किसी से किसी प्रकार की शत्रुता न रखने वाले होते है, 'निहकाम' होने के

---

१. का करौ जाती का करौं पाती। राजाराम सेऊँ दिन राती।
मुइने की सुई रूपे का धागा। नामे का चितु हरि सू लागा॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १८

२. कबीर तन पंषी भया जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ।
जो जैसी संगति करै सो तैसे फल खाई॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ४८

३. कबीर संगति साध की कदे न निष्फल होइ।
चदन होसी बावना, नीव न कहसी कोइ॥
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ४९

४. काजल केरी कोठरी, तैसा यहु संसार।
बलिहारी ता दास की पैसि ज निकसणहार॥
—संक्षिप्त संत-सुधा-सार, पृष्ठ ७३

५. लौहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल॥
—संक्षिप्त संत-सुधा-सार, पृष्ठ ७३

कारण किसी वस्तु की कामना न रखते हुए नि स्वार्थ होते हैं, उन्हें 'साई सेती नेह' अर्थात् परमात्मा के प्रति पूर्ण प्रेम की भावना रहा करती है और वे सारे 'विषिया सू न्यारा' अथवा अलग रहने के कारण निलिप्त व अनासक्त रहा करते है ।[1]

सहज अवस्था

सहज समाधि की स्थिति में भाव-भगति से ओत-प्रोत स्वभाव को कबीर ने 'सहज सील' की संज्ञा दी है और बतलाया है कि किस प्रकार उक्त श्रेणी तक पहुँचे हुए महापुरुष की प्रकृति एक निराले ढग की हो जाती है, जिसमें कुछ विशिष्ट गुणो का समावेश रहा जाता है ।

नामदेव ने कई बार 'सहज' शब्द का प्रयोग किया है । उनके अनुसार बाह्य कर्म काण्डो से कोई लाभ नही । बिना प्रभु पर पूर्ण विश्वास किये तीर्थ व्रत आदि व्यर्थ है । अत लोगो के आडम्बर पर उनको क्षोभ होता है । वे सहज कर्म करना चाहते हैं।

नामदेव सहज साधना को ईश्वर प्राप्ति का सबसे उत्तम मार्ग बतलाते थे । सहज से उनका अभिप्राय उस निष्काम भक्ति में था जो बिना किसी साधना और कर्म के तथा बिना पाखंड के सच्चे और सरल हृदय से की जाती है । हृदय में ईश्वर-प्रेम की सच्ची अनुभूति ही साधक की सहज अवस्था कही जाती है ।

नामदेव कहते है—हे परमात्मा ! वेणु बजती है और सारा आकाश गूँज उठता है, जिससे अनहद-नाद उत्पन्न होता है । लोग अपने आप को नही पहचानते और भ्रम में डोलते रहते हैं । चन्द्र और सूर्य नाड़ी को सम कर जीव ब्रह्म से मिल सकता है । मैं सुषुम्ना को तारा मण्डल में लाता हूँ और तृष्णा पर काबू करता हूँ । बिना सायास के मुझे गगन-मण्डल में स्थान मिला है । अन्तर ध्वनि पर मैं अपने मन को केन्द्रित करता हूँ । यह स्थान किसी योगी को बड़ी कठिनाई से मिल सकता है । मैं फूलो तथा पत्तियो से हरि की पूजा न करूँगा क्योंकि वह मन्दिर में नही है । मैंने हरि के चरणो पर अपने आपको समर्पित कर दिया है, अब मेरा पुनर्जन्म न होगा ।[2]

---

१. निरवैरी निहकामता साई सेती नेह ।
विषिया सू न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ॥
—साध, साषीभूत कौ अंग, कबीर ग्रथावली, पृष्ठ ५०

२ देवा बेनु बाजै गगन गाजै । सबद अनाहद बोलै ।
अतरि गति की जानै नाही । मूरिष भरमत डोलै ॥ टेक ॥
गगन मडल मैं रहनि हमारी । सहजि सुनि गृह मेला ।
अतरि धुनि मैं मन बिरमाऊँ । कोई जोगी गम लहैला ॥

'पतंग आकाश में उड़ी तब मैने उसे न देखा । जब तक मनुष्य जय-अपजय की बात सोचता है तब तक उसको परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती । कहना-सुनना जब समाप्त हो जाता है तभी उसका परिचय मिलता है । जिन्होंने उसका गुणगान किया वे गये । जो इस संसार को छोड़कर चले गये उनका दूसरों ने गुणगान किया । मैं ऐसे प्रभु का गुण गाता हूँ जिसका गुण अब तक किसी ने नहीं गया । नामदेव कहते हैं—मैं निष्काम होकर सदा सहज समाधि में मग्न रहता हूँ ।'[1]

योगी का शासन युग-युग तक चलता है । वह श्वास का निरोध करता है । वह अमृत का पात्र भर कर उसका पान करता है । जब योगी ने इस अमृत को प्राप्त करने का प्रयत्न किया तो उसके पिता ने उसको ऐसा करने से परावृत किया और उसकी माता वियोग से मर गई । नातेदारों ने उससे जो अपेक्षाएँ रखी थीं वे पूरी न होने के कारण उन्होंने उसका त्याग किया । योगी अपने चर्मचक्षु बन्द कर अन्त:चक्षु से देखने लगा । निष्काम होकर वह पंचेन्द्रियों के दासत्व से मुक्त हुआ । नामदेव कहते हैं—योगी ने सहज समाधि लगा कर निरंजन की सेवा की ।[2]

'परमात्मा सारे संसार में व्याप्त है अतः लोग उसके बारे में कुछ कह तथा सुन सकते हैं । उसको अभेद-रूप समझने से अभेद रूप में तथा भेद-रूप समझने से भेद रूप

पाती तोड़ि न पूजूं देवा । देवलि देव न होई ।
नामा कहै मैं हरि की सरना । पुनरपि जन्म न होई ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६५ ।

१. देवा गगन गुडी बैठी मैं नाहीं तब दीठी ॥ टेक ॥
जब लगि आस निरास बिचारै तब लगि ताहि न पावै ॥ १ ॥
कहिबौ सुनिबौ जब गत होइबौ तब ताहि परचौ आवै ॥ २ ॥
गाये गये गये ते गाये अगई कूँ अब गाऊँ ॥ ३ ॥
प्रणवत नांमा भए निहकामा, सहजि समाधि लगाऊँ ॥ ४ ॥
संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६६

२. जोगी जन ग्याइ जुगे थुगि जीवै ।
आकास बाँधि पाताल चलावै, आप भरे भरि पीवै ॥ टेक ॥
अमृत पात पिता परमोध्यौ माइ मुँई करि सोय ।
भाई बंध की आस न पूगी भाजि गए सब लोग ॥ १ ॥
वाहिली मूँदिलै माहिली चौदिलै पंच की आस मिटाइ रे ।
भणत नामदेव सेवि निरंजन सहज समाधि लगाइ रे ॥ २ ॥
संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६७

में उसकी प्राप्ति होती है। उसको सहज रूप समझने से वह सहज प्राप्त हो सकता है। उसको सुख अथवा दुख रूप समझने से सुख अथवा दुख में उसकी प्राप्ति हो सकती है। ज्ञान तथा ध्यान रूप समझने से वह ज्ञान तथा ध्यान रूप में प्राप्त हो सकता है। नामदेव कहते है—'यदि मै कहूँ कि मैंने उसका साक्षात्कार कर लिया तो मै झूठा और यदि मै कहूँ कि मैंने उसे नहीं देखा तो मेरा कथन सत्य से दूर होगा। जब मैं कहता हूँ कि वह अगम है तो उसकी खोज निरर्थक है। तब उसके बारे में पूछना न पूछने के बराबर ही है।'[१]

नामदेव अपनी मुक्तावस्था का वर्णन इस प्रकार करते है—'हे देव! तुम्हारा डंका बजा। पखावज, वीणा आदि बाद्यो के मेल से एक ही सुर निकला। मेरे पैरो में लोहे की बेड़ी पड़ी है। भव सागर का भय दूर हुआ। मुक्ति मेरी दासी हुई है। बकरी जब सिंह को खाने लगी तब वह पीठ दिखाकर भागा। नामदेव कहते हैं कि मैंने बाहर जाते हुए भीतर देखा और इस प्रकार अपनी भक्ति निभाई।'[२]

सतो की दृष्टि में सहजशील की साधना ही उनके मत का सार है। इस सहजशील का संक्षेप मे परिचय देते हुए कबीर एक स्थान पर कहते है कि इसके लिए कम से कम सती, सतोषी, सावधान, सब्द भेदी तथा सुविचारवान होने की आवश्यकता है जो

---

१ जहाँ-तहाँ मिल्यो सोई। ताथै कहै सुनै सब कोई॥ टेक॥
अभेदै अभेद मिल्यौ। भेदै मिल्यौ भेदू।
सहज सोई सहज मिल्यो। पेल मिल्यौ पेदू॥ १॥
दुष सोई दुषै मिल्या। सुषै सुष समाना।
ग्यान सोई ग्यान मिल्यो। ध्यानै मिल्यौ ध्याना॥ २॥
दष्यौ कहूँ तौ निपट झूठा। सुनी कहूँ तो झूठा रे।
नामदेव कहै जे अगम भण। तौ पूछ्या ही अण-पूछ्या रे॥ ३॥
संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७३।

१ देवा तेरा नीसान बाज्या हो।
ताल पषावज अरु बेनां अवसर साज्या हो॥ टेक॥
लोहा ताता बदन कीन्हौ पाय परी है बेरिया।
भौ सागर की सबया छूटी, मुक्ति भई है चेरियां॥ १॥
सिंघ भागा पूठि फेरी, षाण लागी छेरिया।
बाहरि जाता भीतरि पेष्या नामै भगति निबेरिया॥ २॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६८

सद्गुरु के प्रसाद अथवा अपार कृपा पर निर्भर है ।[१]

सब प्रकार की समाधियों में सहज समाधि को सर्वोत्तम एवं उत्कृष्ट कहा गया है क्योंकि इसमें साधक को आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान, धारणा आदि क्लिष्ट साधना करने की आवश्यकता नहीं होती । योग-युक्ति के द्वारा मन को अन्तर्मुखी किया जाता है । मन केन्द्रीभूत हो जाने पर अपने विकारों से शून्य हो जाता है । केन्द्रीभूत मन सहजवृत्ति में परिवर्तित हो जाता है । मन साधना की उत्कृष्ट अवस्था सहज समाधि है । इसमे मन की सभी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होकर अन्तर्निहित हो जाती हैं ।

संतों के अनुसार जिस साधना के लिए विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता वही साधना सहज साधना है ।[२]

दादू इस सहज साधना के लिए सुमिरन का मार्ग बताते है ।[३]

कबीर कहते है कि ईश्वर प्राप्ति को सभी सरल बताते है लेकिन उस सरल को जानता कोई नही । जिन भक्तों को सरलतापूर्वक ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है उसी को वास्तविक सहजावस्था कहते है ।[४]

कबीर अच्छी तरह जानते थे कि यह दैनंदिन व्यवहार की दुनिया और साधारण मानव जीवन कितना ही तुच्छ और हेय क्यों न हो यदि आत्मा-विस्मृतकारी परम उल्लासमय साक्षात्कार किया जा सकता है तो इसी के द्वारा किया जा सकता है । वे सगुण और निर्गुण के झगड़े को व्यर्थ बताते हैं । वे कहते हैं—हे संतो ! मैं धोखे की बात किस से कहूँ ? गुण मे ही निर्गुण है और निर्गुण में गुण । इस सीधे रास्ते को छोड़कर कहाँ बहता फिरता जाय ?[५]

---

१. सती संतोषी सावधान सबद भेद सुविचार ।
सतगुरु के प्रसाद थें, सहजसील मत सार ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ६३ ।

२. कहि कबीर राम नाम न छोड़ी सहजे होइ सु होइ रे ।

कबीर ग्रन्थावली, पृ० २६६ ।

३. साँसे साँस सम्हालता, इक दिन मिलि है आई ।
सुमिरन पैड़ा सहज का सतगुरु दिया बताय ॥

संत वाणी संग्रह भाग १, पृ० ७८ ।

४. सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हे कोइ ।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलै, सहज कहीजे सोइ ॥

कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४२ ।

५. संतो धोखा कासूं कहिये ।
गुण मैं निरगुण निरगुंण मे गुंण है बाट छाँड़ि क्यो बहिये ।

कबीर ग्रन्थावली, पद १८०, पृ० १४६ ।

कबीर ने सहज समाधि को सर्वोत्तम बताया है। आँखें मूँदे बिना, कान बन्द किये बिना ही इसकी सिद्धि हो जाती है। सहजभाव के साथ खुली आँखों से भगवान् को देखना ही सहज समाधि है। एक बार यदि यह सिद्ध हो जाय तो साधक निरन्तर परमानन्द का रस पान करने में तल्लीन रहता है।[1]

यहाँ कबीर ने उन्मनि रहनी को सहज समाधि कहा है। इस स्थिति में द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है। यह अद्वैतावस्था है, सम्पूर्ण विश्व आत्ममय हो जाता है। जीवन के सभी क्षेत्रों में सहज रूप में आत्म दर्शन उपलब्ध होता रहता है। योगी परिपूर्ण हो जाता है। उसका मन विकार-रहित होकर केन्द्रीभूत हो जाता है।

हठयोग की साधना

संतों की साधना पद्धति के विषय में विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुमान किये हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार संतों की साधना को वस्तुत आत्मविचार की साधना कहना उपयुक्त होगा।[2] संतों की साधना के स्वरूप निर्धारण में संत कबीर का प्रमुख हाथ है। डॉ० त्रिगुणायत का अनुमान है कि संत कबीर ने योग के क्षेत्र में प्रचलित समस्त योग साधनाओं की परीक्षा करके अपना स्वानुभूतिमूलक सहज योग प्रतिपादित किया जिसका पर्यवसान प्रपत्तिमूलक भक्ति योग में हुआ।[3]

संतों ने जिस आत्मविचार को प्रधानता दी है उसके साथ ही अनेक परम्परागत साधनाओं को भी अपने अन्दर पल्लवित पाया है जिनका प्रभाव मध्य-युग की साधना पद्धति पर विशेष रूप से था। ये साधनाएँ मुख्यतः हठयोग की साधनाएँ तथा तांत्रिक

---

१. सन्तो सहज समाधि भली।
साँई तै मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अंत चली॥
आँख न मूँदू कान न रूँधूं, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस हँस देखूं सुन्दर रूप निहारूँ॥
जँह जँह जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत, पूजूँ और न देवा॥
शब्द निरन्तर मनुवा राता, मलिन वचन का त्यागी।
कहै कबीर यह उनमनि रहनी, सो परगट करि गाई।
सुख दुख के इक परे परम सुख, तेहि में रहा समाई॥
—संक्षिप्त संत-सुधा-सार, पृ० ४९।

२. कबीर साहित्य की परख, पृ० ६६।

३. कबीर की विचारधारा, पृ० २६८।

उपासनाएँ थी। तान्त्रिक उपासनाएँ लोकविरोधी होने के कारण संतों को कभी ग्राह्य न न हो सकी। इसका कारण सम्भवतः यही है कि संत अपनी मूल विचारधारा में समस्त धर्म साधनाओ के विकृत एवं जटिल रूप को बाह्याचार ही समझते थे। डॉ० हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की साधना पद्धति पर दृष्टिपात करते हुए एक स्थल पर ठीक ही लिखा है कि कबीर यौगिक क्रियाओ को भी बाह्याचार ही मानते थे। वे उन सारी क्रियाओं को सहजावस्था की प्राप्ति का कारण नही मानते थे।[१] यही कारण है कि संत योग की साधनाओ को अपनो साधना का मूल हेतु न मान सके। स्वयं कबीर अनहद का बजना स्वीकार तो करते है पर वही एक परम सत्य नहीं है, सत्य है उसे बजाने वाला।[२]

सतो मे हठयोग का विलिष्ट रूप नही मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि हठयोग के जटिल रूप का वर्णन केवल परम्परा निर्वाह मात्र है। यथार्थ में तो मन, वायु तथा बिंदु की साधना में से किसी एक ही साधना को जब नाथ पंथियो ने स्वीकार कर लिया तब संतों ने चंचल मन को प्राणायाम की क्रियाओं से अपने अधीन करने के लिए योग की मूल स्थिति को स्वीकार कर लिया। योग की परिभाषा भी चित्तवृत्तियों के निरोध को लेकर चलती है।[३]

हठयोग की भावना सतों में बहुत पहले से चली आई है। नामदेव ने भी इसे अपनाया है। योगी विसोबा खेचर से दीक्षा लेने के उपरात प्रतीत होता है कि नामदेव कुंडलिनी योग साधना में प्रवृत्त हुए और तभी से उनके पदो तथा अभङ्गो में उसका उल्लेख होने लगा। नामदेव कहते है—

जहाँ ब्रह्मनाद रूपी सूर्य का प्रकाश है वहाँ संसार के सूर्य, चन्द्रमा आदि दीपक धूमिल हो जाते है, गुरु-कृपा से मैंने उसको जान लिया है। नामदेव कहते है कि इसके फलस्वरूप मुझ जैसा भक्त भगवान के सहज रूप में समा गया है।[४]

---

१. कबीर—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६३।

२. बाजे जंत्र नाद धुनि हुई। जो बजावै सो थौरे कोई।
बाजो नाचै कौतिग देखा। जो नचावै सो किनहु न पेखा ॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २३१।

३. योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। योग दर्शन १, २।

४. जह अनहत सूर उजारा। तह दीपक जलै छंछारा।
गुरु परसादी जानिआ। जनु नामा सहज समानिआ ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २००।

इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों से सम्बन्धित प्राणायाम को मैं रोक रखूँगा। चन्द्र और नाड़ियों को सम कर मैं ब्रह्म की ज्योति में मिल जाऊँगा।[१]

योगी दीर्घ-जीवि होते हैं। उनका शासन दीर्घ काल तक चलता है। वह साँस का निरोध कर उसको नीचे के भाग तक ले जाता है। और लबालब भरे हुए अमृत पात्र से अमृत प्राशन करता है। नामदेव कहते हैं कि हे साधक! तू सहज समाधि लगाकर निरंजन की सेवा कर।[२]

अपने दिव्य अनुभव का वर्णन करते हुए नामदेव कहते हैं। कि हे परमात्मा! गुड्डी (पतंग) उडी और आकाश में समा गई। बोलने वाला डोरी में समा गया। आवागमन का फेर मिट गया। यह गुडी कागज की नहीं है। उसने सहज आनंद की प्राप्ति होती है।[३]

हे विट्ठल! भौंरे को कमलिनी प्राप्त नहीं होती अतः वह जनम जनम ठगा जाता है। मेंढक कुमुदिनी के पास रहता है उसको उसका बुरा-भला कोई स्वाद नहीं मिलता। पुष्प की सुगंध पर लुब्ध भ्रमर सौ योजन का चक्कर काट कर आता है। पचासों विषयों का त्याग करने पर भक्ति उत्पन्न होती है और फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।[४]

---

१. इडा पिंगला सुषमनि नारी। पवना मंझि रहाऊँगा।
चंद सूर दोउ सम करि राषूँ। ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊँगा।
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६६।

२. जोगी जन न्याइ जुगे जुगि जीवै।
आकास बाँधि पाताल चलावै आप भरे भरि पीवै॥ टेक॥
भणत नामदेव सेवि निरंजन सहज समाधि लगाइ रे॥
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ६७।

३. देवा आज गुडी सहज उडी, गगन माँहि समाई।
बोलनहारा डोरी समांना। नहीं आवै नहीं जाई।
कागद थैं रहित गुडी। सहज आनन्द होई॥
संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७७।

४. बीठला भँवरा कँवल न पावै। तातै जन्म जन्म डहकावै॥ टेक॥
दादुर एक बसै पदमणितलि। स्वाद कुस्वाद न पावै।
पहुप बास का लुब्धी भौरा। सौ जोजन फिरि आवै॥ १॥
उपजी भगति पचीसूँ परिहरि। बहोरि जन्म नहीं आवै।
अषंड मंडल निराकार मैं। दास नामदेव गावै॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७८।

साक्षात्कार परमार्थ सोपान की अंतिम सीढ़ी है। साक्षात्कार होने के पहले साधक बहुत बेचैन रहता है, व्याकुल रहता है। उसकी आँखो के सामने अँधेरा छा जाता है। इसी को ईसाई साधको मे Dark night of the Soul कहा जाता है। साक्षात्कार की परम उल्लासमयी घड़ी का वर्णन करते हुए नामदेव कहते हैं कि जहाँ वह दिव्य काति झिलमिल झिलमिल चमक रही है, जहाँ तूर ढोल, दमामे आदि बाजो के बजने पर अनहद नाद सुनाई देता है, जहाँ कोटि सूर्यों की तेजोराशि प्रकाशित हो रही है वहाँ दास नामदेव का मन निश्चल होता है।[1]

यद्यपि चित्त की वृत्तियों का निरोध एक कठिन कार्य है फिर भी संतों के लिए योग का आकर्षण सदैव बना रहा है। संत कबीर इडा-पिंगला के माध्यम से गगन मडल में घर बनाने की बात करते हैं।[2] धर्मदास ने हठयोगजनित शून्य महल में झरनेवाले रस को अपनी साधना का एक अग माना था।[3]

वास्तव मे योग मार्ग भी भक्ति मार्ग के ही आश्रित है। यदि भक्ति नही है तो योग मार्ग वृथा ही है।[4]

यद्यपि संतों ने हठयोग और कुण्डलिनी योग की चर्चा की है किन्तु वह उनका लक्ष्य नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि हठयोग की क्रियाओ का संतो के आविर्भाव काल में विशेष प्रभाव था। परपरागत रूप में हठयोग की क्रियाएँ उत्तर भारत में व्याप्त थी। संतों में भी इनका निर्वाह मात्र हुआ है। हठयोग का यही रूप हमें संतो

---

१. झिलिमिलि झिलिमिलि नूरा रे। जहँ बाजे अनहद तूरा रे॥ टेक॥
ढोल दमामां बाजे रे। तहाँ शब्द अनाहद गाजे रे॥ १॥
फिर राया जोति प्रकासो रे। जहाँ आपै आप अविनासी रे॥ २॥
जहाँ सूरिज कोटि प्रकासा रे। तहाँ निहचल नामदेव दासा रे॥ ३३॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १७०।

२. अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीजै॥
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ११०।

३. झरि लागै महलिया गगन घहराय खन गरजै खन बिजुली चमकै।
लहर उठै शोभा बरनि न जाय। सुन्न महल से अमृत बरसै॥
—संत काव्य पृष्ठ २४६।

४. हिरदै कपट हरि सूँ नही साचौ।
कहा भयौ जे अनहद नाच्यौ।
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १८२।

की वाणियों में मिलता है ।

उलटवासियाँ

'उलटवासी' की व्युत्पत्ति का ठीक पता नहीं चलता । इसकी रचना का प्रमुख उद्देश्य किसी बात का किसी विपरीत वा असाधारण कथन के द्वारा वर्णन करना है। तदनुसार 'उलटवासी' शब्द को भी 'उलटा' तथा 'मश' जैसे दो शब्दों को जोडकर बनाया गया, माना जा सकता है । इस दशा मे इसका तात्पर्य उस रचना से होगा जिसमे किसी न किसी अश में उलटी बातें मिलती हो ।

नामदेव की अधिकाश आध्यात्मिक उक्तियाँ उलटवासियों के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं । उलटवासियो की शैली के कारण उनकी शुष्क और नीरस दार्शनिक उक्तियो में एक विचित्र चमत्कार का समावेश हो गया है । चमत्कार काव्य का प्राण माना जाता है । नामदेव की उलटवासियो में व्यजना के विविध रूप भी परिलक्षित होते है । प्राय सभी उलटवासियों मे एक विशेषता पाई जाती है । उनमें विरोध भावना के साथ प्रतीक शैली और रूपक शैली का सुदर समन्वय दिखाई देता है ।

अपनी एक उलटवासी में कहते है—'कितने अचरज की बात है कि पतुरिया बज रही है और मादल नामक वाद्य नाच रहा है । अग्नि जल में डूब गया । चींटी ब्याई और उसने हाथी को जन्म दिया । यह देखकर मुझे अचमा हुआ । मदमत्त हाथी को तुरत काबू मे लाया गया । पंछी बिना पख के उड़ा और कुमुदिनी की डाली पर जा बैठा । कड़वी निबौरी मुझे मीठी लगती है । मक्खी अपनी आँखों में अजन आजने लगी । नामदेव कहते है कि गुरु कृपा से जो खोजता है वह पाता है ।'[1]

---

१. देवा पातुर बाजे मादल नाचे । येवढा अचमा दीठा ।
पूछी पड़िया पडिशा । जल वैसदर बूठा ॥ टेक ॥
चीटी ब्याई हस्ती जाया । येवढा अचमा पाया ।
ऊभी ऊभी नाथीला । मैमत घूमत आया ॥ १ ॥
पांइन पखि बिनाही उड़िया । कैर डाली बैठा ।
नीब सदाफल सुफल फलिया । सो मोहि लागै मीठा ॥ २ ॥
ससै सीग मद्धे पुरी । भेड तडका काना ।
माखी काजल सारन लागी । ऐसा ब्रह्म गियान्ना ॥ ३ ॥
गाई वियाई बछी जाई । गाई बछो कूं धावे ।
प्रणवत नामदेव गुरु परसादे । जो पोजे सो पावे ॥ ४ ॥
—सत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १०१ ।

एक ऐसी आश्चर्यजनक घटना घटी कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। चीटी की आँखों में गजेन्द्र समा गया। कोई कहता है कि वह (परमात्मा) पास ही है तो कोई कहता है कि दूर। पानी में रहने वाली मछली खजूर के पेड़ पर चढ़ सकती है? कोई कहता है कि वह इंद्रियों के अधीन है तो कोई कहता है कि यह मुक्त है। मूर्ख को वह सहज समाधि द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। कोई वेद पुराणा का स्मरण करने के लिए कहता है। सद्गुरु ने निर्वाण पद का वर्णन किया। नामदेव कहते है कि जिस परम तत्त्व की रूपरेखा नहीं है उसका वर्णन मै कैसे कर सकता हूँ?'[1]

'पंडितो इस पद का अर्थ बताओ। मै जब सात वर्ष का था तब मेरी माता पाँच वर्ष की थी। अगम्य तथा अलक्ष्य का विचार कर देखो। खरगोश ने कुत्ते को छिपाया। जल की मछली आकाश पर चढ़ गई। गाय बाघ का पीछा कर रही है। बूंद मे समुद्र नाचता है और बूंद समुद्र में समा गई। नामदेव का एकमात्र सहारा तू ही है। तू अलक्ष्य है। मुझे देखा नहीं जा सकता।'[2]

'आहिस्ता आहिस्ता भोजन कैसे किया जाय, यह कहा नहीं जा सकता। हम खायें और निर्मल होवें। पहले मै अपनी माता को ही खा गया। तत्पश्चात् सगे जामात को खा गया। सूर्य को निगल गया तब चंद्र को उगाल दिया। फिर मैं श्वशुर को खा जाऊँगा। तत्पश्चात् पंच लोक निगल जाऊँगा। नामदेव कहते हैं कि यह सिद्धों का योग है।[3]

---

१. अदबुद अचंभा कथ्या न जाई। चोटी के नेत्र कैसे गजिंद्र समाई।
कोई बोलै नेरे कोई बोलै दूरि। जल की मछली कैसे चढै षजूरि ॥ १ ॥
कोई बोलै इंद्री बाध्या कोई बोलै मुक्ता। सहजि समाधिन चीन्हे मुगधा। २।
कोई बोलै वेद सुमृत पुराना। सतगुरु कथीया पद निरवाना ॥ ३ ॥
कहै नामदेव परम तत है ऐसा है। जाकै रूप न रेप वरण कहो कैसा ॥४॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७६।

२. पाडे एह अरथि लगाई।
सात वरस को मोहि हो। तब पाँच बरस की माई ॥ टेक ॥
अगम अलेप विचारि देषो। ससु स्वान छिपाई।
मीन जलकी गगन चढ़ीयौ। बाघ पेरै गाई ॥ १ ॥
समंद भीतरि बूँद जावै। बूँद समंद समाई।
नामदेव के ऐक सोई। अलप लष्यो न जाई ॥ २ ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १०४।

३. धीरे धीरे षाइबौ कथन न जैबो। आपन पैबौ तब नृमल ह्वै बो ॥
पहली षैहौं आई माई। पीछे षैहौं सगा जंवाई ॥ १ ॥

'मैं झूठ नहीं बोलता। मैंने कोह्ले (एक तरकारी) के बराबर एक मोती देखा। बकरी ने शेर को जन्म दिया। यह देख कर बिल्ली भयभीत हो खड़ी हुई। खरगोश ने कुत्ते को मार डाला। हम विराट् देश में गये। गधी ने इतना दूध दिया कि उससे चौदह रजन भर गये। उड़ते हुए पक्षियों में मैंने एक चाटी भी देखी, जिसकी कटोरी बराबर आँखें थी। विष्णुदास नामदेव कहते हैं कि यह जीव का कथन है कि उसको मोक्ष अथवा मुक्ति नहीं।'[1]

कबीर अपनी उलटवासियों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। ये उलटवासियाँ बहुधा अटपटी बानियों के रूप में रची गई रहती है जिसके कारण इनके गूढ़ आशय को शीघ्र न समझ पानेवाला इन्हें सुनकर आश्चर्य में अवाक् रह जाता है। इन पर ध्यानपूर्वक विचार कर लेने पर जब वह इनके शब्दों के पीछे निहित रहस्य को जान पाता है तब उसे अपार आनन्द मिलता है।

यहाँ कबीर साहब की एक दो उलटवासियों के उदाहरण देकर उनके साधारण स्वरूप का परिचय कराया जाता है। अपनी एक उलटवांसी में कबीर कहते हैं—

'हरि के पकाये हुए नमकीन वड़े को जिस किसी ने जला डाला वही वस्तुतः उसे पा सका नहीं तो जो ज्ञान-हीन था उसे बार-बार जन्म लेकर धोखे में रहना पड़ा।'[2]

उगलिवा चंदा गिलिवा सूर। फुनि मैं पेहो घर को ससूर।
फुनि मै पेहो पंचो लोग। भणत नामदेव ये सिध जोग ॥ २ ॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १४७।

१. लटकि न बोलूं बाप वर्तमान गाढ़ी।
कोल्हा ऐवडा मोतीडा मे डोले देपोला ॥ टेक ॥
छेली मेली वाघ जैता मांजरीया भे ठाढे।
उडत पंपि मैं लवर पेप्या नर सूजे है हाडे ॥ १ ॥
घावलियाचे पोटें मापणियाचें पोटें।
संपै सुनहा मारिला तहाँ मीडर अभिला लोटे ॥ २ ॥
अम्हे जगेला धाट देस तहाँ माभी दूध दैला।
ब्रजे आटे गाभीला जहाँ चौदह रजन भरिला ॥ ३ ॥
विस्नदास नामईयो यूं प्रणजै ये है जीव जोव वो उक्ती
सटवयो आछे सांगीला। ताछे मोक्ष न मुक्ती ॥ ४ ॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६५।

२. हरि के षारे वडे पकाये, जिनि जारे तिनि षाये।
ग्यान अचेत फिरे नर लोई, ताथे जनमि जनमि डहकाये ॥टेक॥

—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ९२।

यदि इस उलटबाँसी की इन दो पंक्तियों पर थोड़ा सा ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा कि कबीर जिस 'घड़े' की ओर संकेत कर रहे हैं वह किसी ऐसी वस्तु का प्रतीक है जो नष्ट कर देने पर ही समुचित उपयोग में लायी जा सकती है। वह वस्तु (नर-देह) मानव-जीवन से भिन्न नहीं है जिसमें आमूल परिवर्तन लाने पर ही जीवन्मुक्त की सहज दशा उपलब्ध हो पाती है।

'कबीर ग्रन्थावली' के अंतर्गत उलटबासी का एक अन्य पद इस प्रकार आता है : 'हे अवधू! जागते समय नींद में नहीं आना चाहिए। ऐसा करना चाहिए जिसमें न तो हम काल का ग्रास बनें, न हमारा शरीर जरा के कारण जीर्ण हो सके। इसके लिए चाहिए कि गंगा उलट कर समुद्र को सोख ले, चंद्रमा सूर्य को निगल जाय, रोगी नव ग्रहों को मार डाले और जल में बिंब प्रकाशित हो उठे। डाल के पकड़ने से मूल नहीं दीख पड़ता और मूल के पकड़ने पर फल की प्राप्ति हो जाती है। बाँबी उलटकर सर्प को लग जाती है और पृथ्वी महारस का पान करती है। गुफा में बैठे रहने पर सारा संसार दीखने लगता है, बाहर कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। मनुष्य उलटकर बाण चलाने वाले को ही मार डालता है और यह आश्चर्य बिरला ही बूझ पाता है औंधा घड़ा जल में नहीं डूबता, सीधा रहने पर पूरा-पूरा भर जाता है और जिसके प्रति जगत् घृणा प्रदर्शित करता है उसी के प्रसाद से निस्तार होता है।[1]

एक और उलटबासी को अर्थ-सहित देखिये—

'ऐ भाई! एक अचंभा देखो। सिंह खड़ा गाय को चरा रहा है। पहले पुत्र हुआ और तत्पश्चात् माता हुई। गुरु शिष्य के पाँव पकड़ रहा है। जल में रहने वाली मछली पेड़ पर जाकर जनती है। मुर्गे ने बिल्ली को पकड़ कर खा लिया। बैल तो खड़ा ही रहा और गोनी गृह में प्रवेश कर गई। बिल्ली कुत्ते को दबोच ले गई। पेड़

---

१. अवधू जागत नींद न कीजै।
काल न खाइ कलप नहीं व्यापै देही जुरा न छीजै॥ टेक॥
उलटी गंग समुंद्र हि सोखै ससिहर सूर गरासै।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मे ब्यंब प्रकासै॥
डाल गह्या थै मूल न सूझै, मूल गह्या फल पावा।
बंवई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा।
बैठि गुफा मै सब जग देख्या, बाहरि कछु न सूझै।
उलटै धन कि पारधी मार्‌यो, यहु अचिरज कोई बूझै।
औंधा घड़ा न जलमै डूबै, सूधा सूभर भरिया।
जाकौ यहु जग घिणा करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया।
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १४१-१४२।

की जड को ऊपर रख और डाली, पत्ती आदि को नीचे कर दे। इस जड़ में फूल खिले हैं। इस पद को जो समझ जाये, वह त्रिलोक को समझ सकता है।'[1]

इस पद का आध्यात्मिक पक्ष में उत्तर होगा—

ज्ञान द्वारा वाणी समृद्ध होती है। प्रथम जीव उत्पन्न हुआ और पश्चात् माया प्रकट हुई। शब्द जीवात्मा की शरण में जाता है। कुण्डलिनी जागृत होकर मेरुदण्ड पर चढ़कर फलवती होती है। कायाने अज्ञानी (सुग्गा या कुत्ता) को नष्ट कर दिया। पंच प्राण तो घरे ही रह गये, स्वरूप की सिद्धि घर में बस गई। मूल तो मस्तिष्क में है जिसमें कमल खिले है और शाखा आदि नीचे हैं। ऐसा शरीर में वृक्ष का बोध कर, तब तीनो लोको का ज्ञान प्राप्त होगा।

कबीर साहब कहते हैं कि हठयोगियो का ज्योति के दर्शन आदि का उपर्युक्त ढंग से परिचय दे देना तथा इसी पर संतुष्ट होकर अपने को अमरत्व का अधिकारी तक समझ बैठना उनमें किसी कमी का होना सूचित करता है। आत्मोपलब्धि की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे सफल हो जाने वाले व्यक्ति में अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए क्षमता नही रहती।

इस प्रकार हम देखते है कि नामदेव के पश्चात् हिंदी निर्गुण काव्य की जो प्रवृत्तियाँ है वे नामदेव की हिंदी रचनाओ में मिलती है। नामदेव की रचनाओ में इन प्रवृत्तियो और तत्संबंधित विषयो पर संक्षेप में कहा गया है। नामदेवोत्तर कालीन संतों ने इन पर विस्तारपूर्वक कहा है।

□□

---

१. एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढा सिंघ चरावै गाई ॥ टेक ॥
पहलें पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लगै पाई।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई ॥
तलि करि साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति जड लागे फूल।
कहै कबीर या पद कौं बूझै ताकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझै ॥
—कबीर ग्रंथावली, पद ११, पृष्ठ ९२।

चतुर्थ अध्याय

नामदेव की दार्शनिक विचारधारा

भारतीय दर्शन—आत्मा की श्रेष्ठता

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत

विदेशी दार्शनिक सिद्धांतों का प्रभाव

संत कवियों पर अन्य विचार-धाराओं का प्रभाव

नामदेव पर अन्य दर्शन एवं विचार-धाराओं का प्रभाव

वैष्णव मत का प्रमुख उपादान—भक्ति तत्त्व

भगवान का लोकरक्षक एवं लोकरंजक स्वरूप

महाराष्ट्रीय वारकरी सम्प्रदाय

वारकरी सम्प्रदाय का उदय

वारकरी मत के सिद्धांत

(१) विट्ठल (२) भक्ति तथा अद्वैत ज्ञान (३) भगवत् रूप

वारकरी पंथ के सिद्धांत की विशेषता

नामदेव की रचनाओं में प्राप्त उनके दार्शनिक विचार

१. (अ) ब्रह्म (ब) ब्रह्म परंपरा (क) नामदेव का ब्रह्म वर्णन

२. जीवात्मा (आत्म दर्शन)—आत्म परंपरा—

(अ) जीव सम्बन्धी नामदेव के विचार

(ब) जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध

(स) जीव की एकता और अद्वैतता

३. माया-माया की परंपरा

नामदेव का माया वर्णन

४. जगत्—जड़ जगत् का भौतिक स्वरूप

नामदेव का ऐहिक तत्त्व विचार

नामदेव का लौकिक जीवन विषयक दृष्टिकोण

अभेद भक्ति—अद्वैतपरक भक्ति कल्पना—

निर्गुण-सगुण की एकता—ज्ञानोत्तर भक्ति

सर्वं खलु इदं ब्रह्म—वात्सल्य भक्ति—

भक्ति और साधना सम्बन्धी व्यावहारिक विचार

नामदेव की दार्शनिक विचारधारा

भारतीय दर्शन

इस संसार में आकर जीवन संग्राम में अपने को विजयी बनाना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। अन्य जीवित प्राणियों के समान मनुष्य भी अपने को जीवित बनाये रखने के लिए अपने परिवेश से निरंतर संघर्ष करता रहता है। परन्तु वह विवेक-प्रधान जीव होने के कारण प्रत्येक अनुष्ठान के अवसर पर अपनी विचार शक्ति का उपयोग करता है। शांत चित्त से विचार करने पर प्रतीत होगा कि प्रत्येक मानव दृश्य या अदृश्य जगत् विषयक कतिपय श्रद्धाओं, विचारों तथा कल्पनाओं का एक समुदाय मात्र है। निखिल मानवीय कार्य विधानों की आधारशिला मानवीय विचार है। गीता कहती है कि श्रद्धाओं के अनुरूप ही मनुष्य होता है।[1] उसकी कार्य प्रणाली निश्चित होती है तथा उसी के अनुरूप उसे फल की उपलब्धि होती है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य की एक दृष्टि होती है, उसका एक दर्शन होता है।

सृष्टि विभिन्न रूपा होकर भी एक है। अंग्रेजी में इसका नाम ही युनिह्वर्स (Universe) है जिसे हिंदी में एकात्म काव्य कहा जा सकता है। वेद तो इसे देव का काव्य कहता है। काव्य की संगीतात्मक, भावात्मक एवं कल्पनात्मक एकता उसके जनक चेतन तत्व की एकरूपता को प्रकट करती है। इसी प्रकार सृष्टि का काव्यत्व (Harmony) उसके एक स्रष्टा होने का संकेत देता है जो चेतन है।[2] ब्रह्म विद्या में इन सभी बातों पर विचार किया जाता है।

अध्यात्म विद्या भारतीय मनीषियों की प्रतिष्ठा की वस्तु रही है। सभी ज्ञान तथा विषयों में इसे सर्वोत्कृष्ट कहा जाता रहा है। कठोपनिषद् में इस विद्या के संबंध में लिखा है—

'ब्रह्म विद्या बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलती और बहुत से इसे सुनकर समझ ही नहीं पाते। इस गूढ़ अध्यात्म विद्या का वर्णन करनेवाला भी कठिनाई से

---

१. यो यच्छ्रद्धः स एव सः। गीता १७।३

२. भक्ति का विकास, डॉ० मुंशीराम शर्मा, पृ० ११।

मिलता है और इसे जानने की इच्छा रखने वाला तो विरला ही होता है।[1]

ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए की गयी जिज्ञासा- ब्रह्म जिज्ञासा कही जाती है, इसी लिए वेदान्त ब्रह्म सूत्र का आरंभ 'अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा' से किया गया है।

ब्रह्म विद्या अथवा ब्रह्म ज्ञान हर किसी को उपलब्ध नहीं होता। मुण्डकोपनिषद में कहा है—

'परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। यह जिसको स्वीकार कर लेता है उसके लिए ही अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।[2]

मुण्डकोपनिषद ने ब्रह्म विद्या को सर्व विद्या प्रतिष्ठा बतलाया है।[3] भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपनी व्यापक विभूतियों के वर्णन के अवसर पर समस्त विद्याओं में अध्यात्म विद्या (दर्शन शास्त्र) को अपना स्वरूप बतलाकर उसकी महत्ता पर्याप्तरूपेण प्रदर्शित की है।[4]

संक्षेप में जीव, जगत्, और परमात्मा का स्वरूप तथा उनके पारस्परिक संबंध निश्चित करना दर्शनशास्त्र का उद्दिष्ट है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र अंतिम सत्य (Ultimate reality) के उद्घाटन का प्रयत्न करता है। पर इस अंतिम सत्य के स्वरूप के संबंध में सभी दार्शनिक सहमत नहीं हैं।

भारतवर्ष में दर्शन तथा धर्म का, तत्वज्ञान तथा भारतीय जीवन का घनिष्ट संबंध है। ताप त्रय—आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक—से संतप्त मानव की शांति के लिए, क्लेशमय संसार से आत्यंतिक दुःख निवृत्ति के लिए भारत में दर्शन शास्त्र का आविर्भाव हुआ है। दर्शन शास्त्र के द्वारा सुचिंतित आध्यात्मिक तथ्यों पर ही भारतीय धर्म की दृढ़ प्रतिष्ठा है।

---

१ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

—कठोपनिषद् १।२।२।

२ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्॥

—मुण्डकोपनिषद् ३।२।३।

३ स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह।

—मुण्डकोपनिषद् १।१।

४ अध्यात्म विद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।

—गीता १०।३२

इस भारतीय दर्शन की धारा सुदूर वैदिक काल से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है। इस धारा में कभी भी विराम नहीं आया। लगातार ब्रह्म, जीव और माया के संबंध में विचार होता चला आ रहा है। सभी दर्शनों ने लगभग यही निष्कर्ष दिया है कि ब्रह्म कोई अलभ्य तथा अलौकिक और अद्भुत पदार्थ नहीं है प्रत्युत प्रत्येक प्राणी अपने भीतर नियामक (अंतर्यामी) आत्मा के रूप में उसी की सत्ता का अनुभव किया करता है। इसी लिए ब्रह्म का साक्षात्कार करने तथा उसे पहचानने का सबसे बड़ा उपाय है आत्मा को पहचानना और उसका साक्षात्कार करना।

आत्मा की श्रेष्ठता

जगत् के समस्त प्रिय पदार्थों में श्रेष्ठ पदार्थ आत्मा ही है। प्रियतम होने के कारण ही पुत्रवत्सला, करुणामयी माता की भाँति श्रुति उपदेश देती है कि आत्म तत्त्व का साक्षात्कार करो।[१] मुक्ति की कल्पना में पर्याप्त मतभेद होने पर भी विभिन्न दार्शनिक इस विषय में नितांत एकमत है। आत्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना ही मोक्ष है।[२]

आत्मा का ज्ञान कराना, चाहे वह ब्रह्म से भिन्न हो या अभिन्न हो प्रत्येक दर्शन का लक्ष्य है। इस संदर्भ में दार्शनिक-शिरोमणि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को जो आध्यात्मिक उपदेश दिया वह भारतीय धर्म तथा दर्शन के इतिहास मे सदा अमर रहेगा। उन्होंने कहा 'पति के लिए पति प्यारा नहीं है बल्कि आत्मा के लिये। पत्नी के लिए पत्नी प्यारी नहीं है, बल्कि आत्मा के लिए। पुत्र के लिए पुत्र प्यारा नहीं है बल्कि आत्मा के लिए। संसार की समस्त वस्तुएँ अपने लिये प्यारी नहीं होती बल्कि आत्मा के लिए। अत. सबसे प्रिय वस्तु आत्मा ही है। इस लिए इस आत्मा का प्रत्यक्ष करना चाहिए, श्रवण करना चाहिए, मनन करना चाहिए तथा निदिध्यासन (सतत् ध्यान करना) चाहिए। क्योंकि आत्मा के दर्शन से, श्रवण से, मनन से तथा विज्ञान से सब कुछ जाना जा सकता है।'[३]

---

१. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः।

—बृहदारण्यकोपनिषद् ४।१।१५।

२. आत्मन. स्वरूपेणावस्थितिः मोक्षः।

३. न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया पिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति।

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न दार्शनिक सिद्धात

भारतवर्ष आदि काल से ही एक धर्म प्रधान देश रहा है। यहाँ के ऋषियो ने समय समय पर धर्म तथा दर्शन की विस्तृत विवेचना की है। मध्ययुग के पूर्व भी यहाँ अनेक आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न दार्शनिक सिद्धात प्रचलित थे। इनमें प्रमुख शकराचार्य का अद्वैतवाद तथा मायावाद था। उन्होने जैनो, बौद्धो तथा मडन मिश्र आदि कर्मकाडियो से शास्त्रार्थ करके अपने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उसके अनुसार सब कुछ ब्रह्म है। यह ससार असत्य है, भ्रम है।[१] जिस प्रकार हम अँधेरे में रस्सी को देखकर साँप की कल्पना कर भयभीत होते है उसी प्रकार इस ससार को असत्य जान ममता, मोह के बधन में पड़कर हम दु ख भोगते है। उनके अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई अतर नही। जीव ब्रह्म का ही रूप है जो माया के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। इस प्रकार शकराचार्य 'अह ब्रह्मास्मि' के सिद्धात को माननेवाले थे। उन्होने बौद्ध दर्शन के स्थान पर अपने दार्शनिक सिद्धातो को रखा जो अब तक किसी न किसी रूप में चले आ रहे है।

वैष्णव आचार्यों की परम्परा में सर्वप्रथम नाम नाथमुनि का आता है। नाथ मुनि का आविर्भाव नवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा दसवी शताब्दी के प्रारम्भ काल में हुआ। कहा जाता है कि सर्वप्रथम उन्होने ही आडवार भक्तो के पदो का सकलन किया। उनकी परम्परा में पुण्डरीकाक्ष एव राम मिश्र नामक दो अन्य आचार्य हुए। तत्पश्चात् यामुनाचार्य तथा प्रसिद्ध स्वामी रामानुजाचार्य इस सम्प्रदाय के आचार्य हुए। रामानुजाचार्य के पश्चात् भी थी सम्प्रदाय की परम्परा आगे चलती रही। इनकी चौथी या पाँचवा शिष्य परम्परा में सुप्रसिद्ध स्वामी रामानद हुए।[२]

शकराचार्य ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के लिए उपयुक्त न था। अत स्वामी रामानुजाचार्य ने एक अन्य मत विशिष्टाद्वैत की स्थापना की। जिसके अनुसार जीव (चित्) और जगत् (अचित्) ब्रह्म के ही विशेष है। माया उसी ब्रह्म की शक्ति है। जीव भक्ति द्वारा ब्रह्म का चिरतन सामीप्य प्राप्त कर लेता है जो उसका परम लक्ष्य है। जैसा कि अद्वैतवाद में माना जाता है, जीव अपने अस्तित्व को ब्रह्म में खो नही देता।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रिय भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रिय भवति।
आत्मा वा रे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि।
आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इद सर्वं विदितम्।
—बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।५।

१ ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर।

२ हिन्दी साहित्य की भूमिका डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४७।

आचार्य रामानुज के महान् व्यक्तित्व के कारण वैष्णव सम्प्रदाय की लोकप्रियता बहुत बढ़ी। उन्होंने शंकराचार्य के मायावाद का खण्डन किया तथा यह सिद्ध किया कि ब्रह्म को एकता अद्वितीय नहीं है अपितु वह चिन्मय आत्मा तथा जड प्रकृति से विशिष्ट है।[1]

अन्य वैष्णव आचार्यों का लक्ष्य भी शंकराचार्य के मायावाद तथा विवर्तवाद से पीछा छुड़ाना था जिसके अनुसार भक्ति अविद्या ठहरती है। शंकराचार्य ने केवल निरूपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की है। वल्लभाचार्य ने ब्रह्म में सर्व धर्म माने है। सारी सृष्टि को उन्होंने लीला के लिए ब्रह्म की आत्मकृति कहा है। अक्षर ब्रह्म अपनी आविर्भाव तथा तिरोभाव की अचिंत्य शक्ति से जगत् के रूप में परिणत होता है और उससे परे भी रहता है। ब्रह्म सत्, चित्, तथा आनन्द से युक्त है। जीव में आनन्द का तथा जड़ में चित् तथा आनन्द दोनों का तिरोभाव रहता है। माया कोई वस्तु नहीं। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है जो पुरुषोत्तम कहलाते हैं। वे अपने भक्तों के लिये 'व्यापी वैकुण्ठ' में (जो विष्णु के वैकुण्ठ से ऊपर है) अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते रहते है। भगवान् की इस 'नित्य लीला सृष्टि' में प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है। शंकर ने निर्गुण को ही ब्रह्म का पारमार्थिक रूप कहा था और सगुण को व्यावहारिक या मायिक। किन्तु वल्लभाचार्य ने बात उलटकर सगुण रूप को ही असली पारमार्थिक रूप बताया और निर्गुण को उसका अंशतः तिरोहित रूप कहा।

प्रायः सभी वैष्णव आचार्यों ने (मध्व, निम्बार्क, रामानुज, विष्णु स्वामी) वेदान्त सूत्रों के प्रतिपादित अद्वैतवाद को लेकर चलते हुए मूल सिद्धान्तों में कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन भी किये है। फलस्वरूप अलग-अलग सिद्धान्तों की स्थापना हुई। वास्तव में सभी ने सिद्धान्त की दृष्टि से अद्वैतवाद को माना है किन्तु साथ ही साथ व्यवहार की दृष्टि से द्वैताद्वैतवाद का भी सहारा लिया है।

विदेशी दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव

वैष्णव आचार्यों के दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त तत्कालीन मुसलमान सभ्यता के कारण विदेशी दार्शनिक सिद्धान्तों का भी प्रचार हुआ। मध्ययुग में हिन्दू और बौद्ध धर्म के बाद इस्लाम धर्म की ही मान्यता और प्रतिष्ठा थी। शासक वर्ग का धर्म होने के कारण उसका प्रसार व प्रचार और भी अधिक बढ़ा। शासक वर्ग का धर्म शासित वर्ग को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है। यद्यपि सन्त लोग

---

१. भारतीय दर्शन : डॉ० बलदेव उपाध्याय, पृ० ४६५।

सब प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक बंधनों से मुक्त थे फिर भी वे अपने युग की क्रियाओं और प्रति क्रियाओं की उपेक्षा नहीं कर सके। यह अवश्य है कि उन पर इस्लाम का प्रत्यक्ष और गहरा प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता। इस्लाम एक आस्था-प्रधान धर्म है उसमें बुद्धिवादिता के लिए कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत सन्त मत की आधारभूमि बुद्धिवादिता रही है। अतएव वे कोरी आस्था में, जो अंधविश्वास की सीमा तक पहुँच गयी थी, विश्वास नहीं करते थे। इसीलिए उन्होंने कोरे आस्था-प्रधान इस्लाम धर्म का महत्त्व हृदय से नहीं स्वीकार किया। इस्लाम का जो कुछ प्रभाव उन पर दिखाई पड़ता है वह अधिकतर परम्परागत संस्कार जनित और वातावरणमूलक है। फिर भी मुसलमानों के एकेश्वरवाद तथा सूफी सन्तों के सर्वेश्वरवाद का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा। सूफियों के अनुसार यह संसार ब्रह्म कृत है। संसार में उसी का स्वरूप प्रगट हुआ है। सूफियों ने यद्यपि माया को स्थान नहीं दिया फिर भी शैतान के अस्तित्व को माना है जो जीव को भ्रम में डालकर ब्रह्म से मिलने में बाधा पहुँचाता है।

सन्त कवियों पर अन्य विचार-धाराओं का प्रभाव

साहित्य समाज का दर्पण होता है। वह अपने युग की प्रत्येक विचारधारा से प्रभावित होता है। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग के पूर्व, भारतवर्ष में अनेक दार्शनिक विचार धाराओं का प्रचार था। जनता पर इन सभी सिद्धान्तों का मिले-जुले रूप में प्रभाव पड़ा। फलतः इस काल में जो साहित्य रचा गया वह पूर्णतः धार्मिक साहित्य रहा। साथ-साथ ब्रह्म, जीव, माया, जगत् आदि सम्बन्धी दार्शनिक विचारों की भी विवेचना होती रही।

सन्त कवियों पर कई विचार धाराओं का प्रभाव पड़ा। वे योग मार्ग, नाथ पंथ, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत आदि सभी विचार धाराओं से प्रभावित हुए। उन्होंने वेदान्त से ज्ञान तत्त्व, सूफियों से प्रेम तत्त्व, वैष्णवों से भक्ति तत्त्व, योगियों की बानियों से सुरति निरत आदि शब्द अपना लिए। इस प्रकार सन्त काव्य में विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त नहीं मिलते वरन् सभी का मिश्रित रूप से उन पर प्रभाव पड़ा है।

नामदेव पर अन्य दर्शनों एवं विचारधाराओं का प्रभाव

(क) वैष्णव परम्परा का प्रभाव

वैष्णव मत अत्यन्त प्राचीन मत है। भगवान् के विष्णु और उनके अवतारों की उपासना ही इस मत की प्रमुखता है।

विष्णु इस मत के परम आराध्य हैं। ऋग्वेद में विष्णु से सम्बन्धित सूक्त हैं।

विष्णु अन्य देवताओं की अपेक्षा मानवोचित गुणों से विभूषित है। उनमें अत्यन्त व्यापकत्व, अतुलनीय पराक्रम, विश्व धारण सामर्थ्य, अमृतत्व, पोषण-शक्ति, अवतार-धारणा-शक्ति आदि की प्रतिष्ठा है।

कालांतर में विष्णु के दिव्य गुणों में वृद्धि होती गयी और वे शील, शक्ति एवं सौंदर्य इन तीनों विभूतियों से प्रतिष्ठित किये गये। इस प्रकार विष्णु के निर्गुण एवं सगुण दोनों स्वरूपों का विकास हुआ।

डॉ० भांडारकर के अनुसार वैष्णव मत का प्रारम्भिक नाम ऐकान्तिक धर्म था।[1] भगवद्गीता इसका प्रमुख आधार ग्रंथ था। इसने साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया और यह पांचरात्र या भागवत् धर्म के नाम से प्रसिद्ध हो गया। आगे चलकर नारायणीय धर्म से इसका सम्मिलन हुआ। कालांतर में उस पर योग एवं सांख्य दर्शन का भी प्रभाव पड़ा।

पाँचवी शताब्दी में इसका प्रभाव कम हो गया। छठी तथा सातवी शताब्दी में आलवार भक्तों के रूप में इसका पुनः स्फुरण हुआ। मध्ययुग के आचार्यों ने इसको पल्लवित किया। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बार्काचार्य तथा वल्लभाचार्य आदि ने इस मत को अच्छी प्रगति दी।

वैष्णव धर्म का अपना विस्तृत साहित्य है। महाभारत का नारायणीयोपाख्यान, गीता, भागवत्, नारद भक्ति सूत्र, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, विष्णु पुराण, पद्म संहिता और लक्ष्मी तन्त्र आदि इसके प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

वैष्णव धर्म के सभी ग्रन्थों में भगवान् के दोनों-निर्गुण एवं सगुण-स्वरूपों का वर्णन मिलता है। निर्गुण ब्रह्म से क्रमशः सगुण भगवान् का विकास हो जाता है।

महाराष्ट्र का वारकरी सम्प्रदाय 'भागवत् सम्प्रदाय' है। बहुत प्राचीन काल से महाराष्ट्र भागवत् धर्म का मुख्य क्षेत्र बना हुआ है। अपनी लोकप्रियता तथा विपुल प्रचार के कारण वारकरी पंथ महाराष्ट्र का सार्वभौम पंथ है।

महाराष्ट्रीय संतों की परंपरा का उदय संत ज्ञानेश्वर से माना जाता है। वारकरी अर्थात् वैष्णव संप्रदाय के प्रधान प्रवर्तक यही माने जाते है। इस संप्रदाय में पंढरपुर के विट्ठल (पांडुरंग) की उपासना पर ही सबसे अधिक बल दिया गया है। भगवान् विट्ठल विष्णु के ही प्रतिरूप समझे जाते है। इसलिए यह संप्रदाय वैष्णव संप्रदाय कहा जाता है। संत ज्ञानेश्वर के अतिरिक्त नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि अन्य महाराष्ट्रीय संतों ने भी इस संप्रदाय का प्रचार किया।

---

१. वैष्णविज़म शैविज़म एण्ड अदर मायनर रिलीजस सेक्ट्स
—डॉ० आर० जी० भांडारकर—पृ० ६८-१०० ।

उत्तर भारत में भागवत धर्म की पताका फहराने वाले पहले संत नामदेव थे। वे परम वैष्णव थे। उन्होंने हरि के दासों (वैष्णवों) की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। संत (वैष्णव) सदा सुखी हों। उनको दीर्घायु प्राप्त हो। उनको अहंकार का स्पर्श न हो। पांडुरंग का नाम जिनकी वाणी के लिए थाती बन गया है, ऐसे संतजनों की नामदेव मंगल कामना करते हैं।[1]

वैष्णव मत का उपादान—भक्ति तत्व

वैष्णव मत का दूसरा प्रमुख उपादान भक्ति तत्व है। वैष्णव धर्म की इस भक्ति में प्रेम का विशेष महत्व है। वैष्णव धर्म का प्रेम प्रधान भक्ति तत्व नामदेव को पूर्णतया मान्य है। उनकी भक्ति प्रेमा भक्ति है। उन्होंने स्थान स्थान पर इस भक्ति की महिमा का वर्णन किया है—

'मैं बावली हूँ, राम मेरे पति है, मैं बड़े मनोयोग से रच-रच कर उनके लिए शृङ्गार करती हूँ।'[2]

'हे प्रभु! तुम्हारे सामीप्य के लिए मैं व्यग्र हूँ। जैसे बछड़े के बिना गाय व्याकुल रहती है, और पानी के बिना मछली तड़पती है—ठीक वैसे ही राम नाम के बिना बेचारा नामदेव पीड़ित है।'[3]

'जैसे मारवाड़ी को जल और ऊंट को वनस्पति प्रिय है वैसे ही मेरे मन को ईश्वर प्रिय है। जैसे पत्नी को पति प्रिय है वैसे ही ईश्वर मेरे मन को प्रिय है।'[4]

---

१. आवल्प आयुष्य व्हावें तया कुला। माझिया सकला हरिच्या दासा।१।
कल्पनेची बाधा न हो कोणे काली। हे संत मंडली सुखी असो।२।
अहंकाराचा वारा न लागो राजसा। माझ्या विष्णु दासा भाविकासी।३।
नामा म्हणे तया असावें कल्याण। ज्या मुखी निधान पांडुरंग।४।
—सकल संत गाथा, अभंग ८८३।

२. मैं बउरी मेरा रामु भरतारु
रचि रचि ताकउ करउ सिंगारु। —सं० ना० की हिं० प०, पद २७४।

३. मोहि लागी तालाबेली। बछरे बिनु गाइ अकेली।
पानीआ बिनु मीनु तलफै। ऐसे राम नामा बिनु बापुरो नामा॥
—पंजाबातील नामदेव, पद २६।

४ मारवाड़ी जैसे नीरु बालहा, बेलि बालहा करहला।
जिउ कुरंक निसि नादु बालहा तिउ मेरै मनि रामईआ॥
—सं० ना० की हिं० प०, पद २०२।

पत्नी (जीव) का पति (ब्रह्म) के प्रति कैसा प्रेम होना चाहिए इसके लिए नामदेव ने क्षुधा और तृषातुर, लोभी एवं कामी व्यक्ति और माता तथा सुत के प्रेम का आदर्श उपस्थित किया है।[1] आदि वैष्णव भक्ति के अनुरूप ही है।

भगवान का लोकरक्षक एवं लोकरंजक स्वरूप

भगवान् के लोकरक्षक एवं लोकरंजक स्वरूप की प्रतिष्ठा वैष्णव मत की विशेषता है। नामदेव में भी यह विशेषता पाई जाती है। वे कहते हैं कि हे ईश्वर! तुम्हारी कृपा से पत्थर समुद्र पर तैर उठे थे। फलस्वरूप तुम्हारा स्मरण करने से भक्त भवसागर क्यों न तर जायेंगे ?[2]

इस प्रकार यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि नामदेव वैष्णव मत से प्रभावित हैं जिसके फलस्वरूप उन्होंने वैष्णवों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की।

(ख) महाराष्ट्रीय वारकरी संप्रदाय—महाराष्ट्र का भागवत धर्म जो वारकरी पन्थ के नाम से प्रसिद्ध है पूर्ण रूप से वैदिक है। यह वारकरी पंथ चतुर्व्यूह के सिद्धान्त को बिलकुल नहीं मानता। अद्वैत ज्ञान के साथ भक्ति का मंजुल सम्मिलन वारकरी पंथ की विशेषता है। इस पंथ के देवता श्री विट्ठल (श्री पाण्डुरंग) हैं जो श्रीकृष्ण के बाल रूप माने जाते हैं।

वारकरी संप्रदाय का उदय

इस सम्प्रदाय का उदय कब हुआ इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। संत तुकाराम की शिष्या बहिणाबाई ने एक अभङ्ग में[3] वारकरी पंथ के मंदिर के

---

१. जैसी भूखे प्रीति अनाज। तृषावंत जल सेती काज।
जैसी पर पुरखारत नारी। लोभी नर धन का हितकारी।
जैसी प्रीति बारिक अरन माता। ऐसा हरि सेती मनु राता॥
—पंजाबातील नामदेव, पद ४८।

२. देवा पाहन तारीअले।
—राम कहत जन कस न तरे ॥१॥ सं० ना० हिं० प०, पद १४६।

३. संत कृपा झाली। इमारत फला आली ॥१॥
ज्ञानदेवे रचिला पाया। उभारिले देवालया ॥२॥
नामा तयाचा किंकर। तेणे केला हा विस्तार ॥३॥
जनार्दन एकनाथ। ध्वज उभारिला भागवत ॥४॥
भजन करा सावकाश। तुका झालासे कलश ॥५॥
—भागवत सम्प्रदाय, पृ० ५७२

निर्माण का बड़ा आलंकारिक वर्णन किया है जो इतिहास की घटनाओं से विरोध नहीं खाता। परन्तु यहाँ ज्ञानदेव द्वारा 'पाया' (नींव) रखने का मतलब यह नहीं है कि उन्होंने इस मत का प्रारम्भ किया। यथार्थ बात तो यह है कि ज्ञानदेव के पूर्व ही इस सम्प्रदाय के भक्तों की स्थिति थी परन्तु वे इधर-उधर बिखरे हुए थे। इन सब को एक सूत्र में संगठित कर पथ को व्यवस्थित रूप देने का स्तुत्य कार्य ज्ञानेश्वर ने किया इसीलिए वे इस सम्प्रदाय के मान्य आचार्य हैं। कृष्ण भक्ति के प्रचार के निमित्त ज्ञानदेव ने अपने भ्राता निवृत्तिनाथ तथा सोपानदेव एवं भगिनी मुक्ताबाई के सहयोग से जो महनीय कार्य किया उसके कारण आज भी महाराष्ट्र में अद्वैतवाद के साथ कृष्ण-भक्ति का मनोरम सामंजस्य दिखाई देता है।

प्रसिद्ध है कि संत ज्ञानेश्वर के पिता विट्ठलपंत ने सन्यास ले लिया था परन्तु अपने गुरु रामानन्द के आग्रह से फिर वे गृहस्थी में प्रवृत्त हुए। इन्हीं के पूर्वोक्त चार सन्तानें हुईं। इनकी गुरु परम्परा नाथ सम्प्रदाय के आचार्यों से सबद्ध मानी जाती है। गोरखनाथ के शिष्य गैनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को स्वयं कृष्ण भक्ति की दीक्षा दी थी और निवृत्तिनाथ ने फिर अपने दोनों अनुजों तथा भगिनी मुक्ताबाई को स्वयं दीक्षा देकर अध्यात्म मार्ग का पथिक बनाया। निवृत्तिनाथ का कथन है कि प्राणियों का उद्धार कर्ता वह श्रीधर है। कर्म सहित ब्रह्म साक्षात् श्रीकृष्ण मूर्ति है। वह रूप इस भूमंडल पर सचमुच पांडुरंग रूप है, जो पुण्डलीक के निधार से यहाँ खड़ा है।[1] निवृत्तिनाथ की शिक्षा में योग के साथ भक्ति का मंजुल मिश्रण था।

वारकरी मत के सिद्धांत

(१) विट्ठल—वारकरी मत में सर्वश्रेष्ठ देवता पंढरीनाथ हैं जो बालकृष्ण के ही रूप है। इस प्रकार यह कृष्णोपासक सम्प्रदाय है। यह विट्ठल सम्प्रदाय सं० १२६६ (ई० स० १२०६) के लगभग पंढरपुर में प्रचारित हुआ। इसके प्रचारक कन्नड संत पुंडलीक कहे जाते हैं। विट्ठल संप्रदाय, वैष्णव तथा शैव सम्प्रदायों का मिश्रित रूप है। इस प्रकार विट्ठल सम्प्रदाय के संत विष्णु और शिव में कोई अन्तर नहीं मानते। विट्ठल की उपासना विष्णु के अवतार वासुदेव कृष्ण की उपासना से ही आरम्भ हुई पर

---

१. प्राणिया उद्धार सर्वं हा श्रीधर।
ब्रह्म हें साचार कृष्णमूर्ती।
तें रूप भीवरें पांडुरंग खरें।
पुण्डलीक निधारें उभे असे॥

—सकल संत गाथा, अभङ्ग २३०।

आगे चल कर विट्ठल और पांडुरंग में कोई अन्तर नहीं रह गया। पांडुरंग वस्तुतः श्वेत अंग वाले शिव ही हैं। इस प्रकार विष्णु ही शिव है। और शिव ही विष्णु हैं। पंढरपुर में विट्ठल की मूर्ति शिवलिंग को शीश पर धारण किये हुए विष्णु की ही है।[1] ये विट्ठल इस भाँति एक सर्वव्यापी ब्रह्म के प्रतीक बन कर समस्त महाराष्ट्र में आराध्य मान लिए गए। ऐसा ज्ञात होता है कि आठवीं शताब्दी के शैव धर्म से ग्यारहवीं शताब्दी के वैष्णव धर्म का समझौता विट्ठल संप्रदाय के रूप में हुआ जिसके सबसे महान् संत नामदेव हुए। ज्ञानेश्वर और नामदेव ने साथ-साथ सारे उत्तर भारत का पर्यटन किया और अपने इस व्यापक धर्म का प्रचार किया। इस विट्ठल संप्रदाय के अन्तर्गत अनेक संत हुए जिनमें गोरा कुम्हार, सावंता माली, नरहरी सोनार, चोखा मेला, दासी जनाबाई, सेना नाई तथा कन्होपात्रा वेश्यापुत्री प्रमुख हैं।[2]

इस संप्रदाय में दक्षिण भारत के शैवों और वैष्णवों के बीच चलने वाले संघर्ष का कहीं नाम व निशान तक नहीं है। कृष्णोपासक होने पर भी शिव को पूर्ण मान्यता प्रदान करने का एक ऐतिहासिक हेतु भी है। ज्ञानदेव जो इस संप्रदाय के आदि प्रतिष्ठापक थे स्वयं नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित थे और नाथ संप्रदाय के आदि आचार्य शिवजी ही हैं जो 'आदि नाथ' नाम से विख्यात हैं। इस प्रकार वारकरी संप्रदाय धार्मिक मामलों में सदा उदार तथा समन्वयवादी रहा।[3]

(२) भक्ति तथा अद्वैत ज्ञान—वारकरी सम्प्रदाय की समन्वयवादी प्रवृत्ति का दूसरा उदाहरण है अद्वैत ज्ञान तथा भक्ति का पूर्ण सामंजस्य। वारकरी पंथ आदि से लेकर अन्त तक भक्ति-प्रधान है परन्तु उपनिषदों का 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' तथा 'नेह नानास्ति किंचन' आदि वाक्यों के द्वारा प्रतिपादित अद्वैत ब्रह्म में भी इसके अनुयायियों की पूर्ण आस्था है। संत तुकाराम का स्पष्ट कथन है कि यह जगत् विष्णुमय है, वैष्णवों का यही धर्म है। हरि के विषय में भेदाभेद मानना अमंगलकारक भ्रम है।[4]

यह संप्रदाय निष्काम कर्म की शिक्षा सर्वतोभावेन देता है। यह पूर्ण प्रवृत्ति-मार्गी है।

---

१. रूप पाहता डोलसु। सुंदर पाहता गोपवेषु॥
महिमा वर्णिता महेशु। जेणे मस्तकी वंदिला॥
—श्री ज्ञानेश्वर का अभंग, भागवत संप्रदाय, पृ० ५८७।

२. हिंदी साहित्य (द्वितीय खण्ड) पृ० १६१।

३. भागवत संप्रदाय : डॉ० बलदेव उपाध्याय, पृ० ५८७।

४. विष्णुमय जग वैष्णवाचा धर्म।
भेदाभेद भ्रम अमंगल॥
—संत तुकाराम का गाथा।

संतो को ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म रूप बनकर जगत् में प्राणियो के भीतर अंतर्यामी रूप से विद्यमान ब्रह्म की सेवा करनी चाहिए। इस विषय का बड़ा रोचक वर्णन संत ज्ञानेश्वर ने किया है। उन्होंने अपने 'अमृतानुभव' में एक बड़ा ही सुंदर दृष्टांत उस सामंजस्य की तुलना के लिए दिया है। वे कहते हैं कि "यदि एक ही पर्वत को काटकर उसकी गुफा के भीतर देवता, देवालय तथा भक्त-परिवार का निर्माण एक साथ किया जा सकता है, तो अद्वैत भाव के साथ भक्ति क्यों संभव नहीं है ?"[1]

'ज्ञानेश्वरी' में ज्ञानेश्वर इस तथ्य को आत्मानुभव का उदाहरण मानते हैं जो शब्दो के द्वारा ठीक-ठीक प्रकट नहीं किया जा सकता। साढ़े पंद्रह के सोने में अर्थात् खरे सोने मे खरा सोना मिला देने पर ही उत्तम सुवर्ण तैयार होता है उसी प्रकार मद्रूप होने पर ही मद्भक्ति उत्पन्न होती है। यदि गंगा समुद्र से भिन्न होती तो उसके साथ मिलकर वह एकाकार कैसे बन जाती ?"[2] इसी प्रकार भगवान् का भक्त भगवान को अद्वैत रीति से जान कर ही उसका सच्चा भक्त बन सकता है।

नामदेव ने इस सम्प्रदाय की विशेषता अद्वैत ज्ञान के साथ भक्ति का मृदुल सामंजस्य कर बतलाई है। इन भक्तों की पूर्ण निष्ठा थी कि उपनिषदो का परब्रह्म ही विट्ठल के रूप में प्रकट हुआ है। ज्ञान के साथ भक्ति का योग हो जाने से इनकी वाणी में अतीव मृदुता और मधुरता आ गई है। इनका विश्वास था कि निर्गुण ब्रह्म ही नाम रूप को ग्रहण कर भक्तों की मंगल-कामना के निमित्त इंद्रिय गम्य बन गया है। नामदेव ने अभंगो द्वारा ब्रह्म रस तथा भक्ति रस के ऐक्य का प्रतिपादन किया है। नामदेव भगवान् को लक्ष्य कर पुकार रहे हैं कि "भगवान् जल्दी आइए, पुकारते-पुकारते गला सूख गया, शरीर पुलकित हो गया तथा अश्रु धाराओ से पृथ्वी भीग गई। हे दीन दयालु ! आने में इतनी देर क्यों कर रहे हो ? किसी भक्त के यहाँ तो नहीं फँस गये ?"[3]

---

१. देव देऊळ परिवारू। कीजे कोरूनि डोंगरू॥
तैसा भक्तीचा वेव्हारु। का न व्हावा ? ॥ ४१ ॥

—अमृतानुभव।

२. साडे पंधरा मिसळावें। तें साडे पंधराचि होआवें।
तेवि मी जालिया संभवे। भक्ति माझी ॥ ५६७ ॥
हा गा सिंधूसि आनी होती। तरि गंगा कैसेनि मिळती।
म्हणोनि मी न होता भक्ती। अन्वयो आहे ॥ ५६८ ॥

—ज्ञानेश्वरी, अध्याय १५।

३. येवढा वेळ कां लाविला। कोण्या भक्ताने गोंविला ?
अडकरी येई गा विठ्ठला। कंठ आळविता सुकला।

(३) भगवत् रूप—वारकरी पंथ को भगवान् के दोनों रूप—सगुण तथा निर्गुण मान्य है। पूर्ण सगुणोपासक होने पर वह परमात्मा को व्यापक एवं निर्गुण-निराकार भी मानता है तथा इस निराकार ब्रह्म की प्राप्ति का साधन सगुणोपासना, नाम स्मरण तथा भजन है।

वारकरी संतों ने ज्ञान तथा भक्ति के परस्पर सहयोग तथा मैत्री भाव पर विशेष बल दिया है। संत एकनाथ ने भक्ति तथा ज्ञान के परस्पर संबंध की सूचना बड़े ही रोचक उदाहरण द्वारा दी है। वे भक्ति को मूल, ज्ञान को फल तथा वैराग्य को फूल बतलाते हैं। जिस प्रकार बिना मूल के फल उत्पन्न नहीं हो सकता और बिना फूल के फल असम्भव है उसी प्रकार बिना भक्ति और वैराग्य के ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। 'भक्ति के उदर से ज्ञान उत्पन्न होता है। भक्ति ने ही ज्ञान को उसका गौरव प्रदान किया है। अतः दोनों का मधुर समन्वय ही साधक के लिए अवश्यमेव संपादनीय व्यापार है।'[1]

वारकरी पन्थ के सिद्धान्त की विशेषता

वारकरी पंथ के सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाला संत तुकाराम का एक प्रसिद्ध अभंग है जिसमें वे कहते हैं कि 'मुख से विट्ठल के नाम का उच्चारण, गले में तुलसी की माला धारण करना तथा एकादशी का व्रत रखना—ये तीन इस पंथ के मान्य सिद्धांत हैं।'[2] इष्टदेव श्री विट्ठल हैं। विष्णु के सभी अवतार मान्य हैं परन्तु राम-कृष्ण विशेष रूप से अभीष्ट हैं। भगवान् के सगुण तथा निर्गुण रूप एक ही हैं। ध्येय है अभेद-भक्ति, अद्वैत भक्ति अथवा मुक्ति के परे की भक्ति। अद्वैत का सिद्धांत इस सम्प्रदाय को स्वीकार है परन्तु इस कौशल के साथ इस ध्येय को प्राप्त करना उचित है कि अभेद को सिद्ध करके भी संसार में प्रेम-सुख बढ़ाने के लिए भेद को भी अभेद कर रखना। इस पंथ में भक्ति और ज्ञान दोनों की एकरूपता मानी गई है, जिसके

नामा गहिंवरें दाटला। पूर धरणिये लोटला॥

—नामदेवाचा गाथा।

१. भक्तिचें उदरीं जन्मलें ज्ञान। भक्तीनें ज्ञानासी दिधलें महिमान॥
भक्ती तें मूल, ज्ञान तें फल। वैराग्य केवल तेथींचें फूल॥

—संत वचनामृत : रा० द० रानडे, पृ० १६६।

२. आम्ही तेणें सुखी, म्हणा विट्ठल-विट्ठल मुखीं।
कंठीं मिरवा तुलसी, व्रत करा एकादशी॥

—भागवत सम्प्रदाय—पृ० ५६६ पर उद्धृत।

केंद्र स्थल में है स्वयं भगवान् श्रीहरि विट्ठल। सम्प्रदाय का मुख्य मंत्र है—'राम कृष्ण हरि।'

यह सम्प्रदाय चैतन्य सम्प्रदाय के समान युगल उपासना में कृष्ण के साथ राधा को सम्मिलित नही करता बल्कि उसके स्थान में रुक्मिणी को महत्त्व देता है। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र में कृष्ण भक्ति का नितांत समुज्ज्वल तथा उदात्त रूप दृष्टिगोचर होता है। यहाँ उस विकृत रूप का दर्शन नही होता जो उत्तर भारत के कतिपय प्रांतो में अश्लीलता को कोटि तक पहुँच कर भावुको के लिए उद्वेग-जनक होता है।

इस प्रकार वैष्णव धर्म परम्परा का प्रभाव नामदेव पर पर्याप्त मात्रा में है। उनके पूर्व जो वैष्णव आचार्य हुए, जिनका विशेष प्रचार उत्तरी भारत में था, नामदेव पर उनकी विचार-धाराओ का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। एक ओर नामदेव महाराष्ट्रीय वारकरी परम्परा के प्रतिनिधि हैं तो दूसरी ओर उत्तरी भारत की वैष्णव भक्ति परम्परा के। उनमे दोनो परम्पराओ का अभूतपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है।

नामदेव की रचनाओ मे प्राप्त उनके दार्शनिक विचार

सन्त नामदेव महाराष्ट्र के प्रसिद्ध वारकरी सम्प्रदाय के अनुयायियो में से थे। इस कारण वारकरी सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतो का प्रतिपादन उनकी रचनाओ में पाया जाना स्वाभाविक है। इस सम्प्राय के सन्तो में निर्गुण सर्वात्म-स्वरूप अद्वैत ब्रह्म के प्रति पूरी निष्ठा पाई जाती है किन्तु सगुण मूर्ति के समक्ष वे कीर्तन भी किया करते थे।

ब्रह्म (ईश्वर दर्शन)

ब्रह्म परम्परा—पारमार्थिक तत्त्व, परम तत्त्व, अन्ततम सत् एवं परम अस्तित्व को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है।

उपनिषदो में ब्रह्म को पूर्ण प्रतिष्ठा है। तैत्तिरीयोपनिषद् में—इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, गति, पालन और स्थिति तथा इस सम्पूर्ण जगत् के लय के कारण को ब्रह्म कहा गया है।[१]

ब्रह्म ही पूर्ण है, सब कुछ वही है, वह सब प्रकार से पूर्ण है।[२]

---

१. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, यतो जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्ति अभिसं विशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म॥
—तैत्तिरीयोपनिषद् ३।१।

२. ॐ पूर्णमद. पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
—ईश. शांतिपाठ

यही एक ब्रह्म अपूर्व, अद्वितीय, अनन्तर और अबाह्य है।[1]
ब्रह्म एक ही है दूसरा नहीं।[2]
यह निखिल जगत् ब्रह्म ही है।[3]
सकल विश्व ब्रह्म ही है।[4]
वह माया से विश्व का सृजन करता है।[5]

अद्वैत वेदांत दर्शन ने ब्रह्म ही को पारमार्थिक सत्य कहा है। शङ्कराचार्य का कथन है।—जिसका स्वरूप सदा सर्वदा अखण्ड रूप में एक ही सा बना रहे वही पारमार्थिक सत्ता हो सकती है।[6]

नामरूपात्मक जगत् सत्य रूपेण सत्य है अर्थात् ब्रह्म सर्वव्यापी, अखण्ड, एकरस सब में है अतः ये उसकी विद्यमानता के कारण सत्य है किन्तु विकार-जनित होने से अपने विशेष नाम व रूपधारी स्वरूप में असत् है क्योंकि ये सब देश, काल और अवस्था के द्वारा बाधित हो जाते है।[7]

उपर्युक्त ब्रह्म सम्बन्धी विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्म विश्व का मूल तत्त्व है। वह निर्गुण, अव्यक्त, अचित्य, निराकार तथा अनिर्वचनीय है। व्यक्त रूप में वही सृष्टिकर्त्ता, धर्त्ता, संहारक आदि भी है।

नामदेव द्वारा ब्रह्म वर्णन

ब्रह्म के सर्व शक्तिमान तथा सर्वव्यापक रूप के पर्याप्त प्रमाण नामदेव के पद साहित्य में मिलते है।

नामदेव के अनुसार ईश्वर एक है जो सर्वव्यापक और सर्वपूरक है। जिधर

1. तदेतत् ब्रह्म अपूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्। —बृहदा. २।५।१६।
2. ब्रह्म एकमेवाद्वितीयम्। —छान्दोग्य. उप. ६।२।१।
3. एकमेव सत् नेह नानास्ति किंचन। —बृहदा. उप. ३।८।८।
4. सर्वं खल्वमिदं ब्रह्म। —छांदोग्य. उप. ३।१४।१।
5. माया सृजते विश्वमेतत्। —श्वेता. उप. ४।९।
6. एक रूपेण हि अवस्थितो योऽर्थः स परमार्थः। —शांकर भाष्य २।१।११।
7. सर्वं च नामरूपादि सदात्मनैव सत्यं विकारजातं स्वतस्तु अनृतमेव। —छान्दोग्य० उप० ६।३।२।

भी देखो वही दिखाई देता है। माया के विचित्र चित्रों से संसार मुग्ध है, कोई विरला ही उसे जान पाता है।[१]

इधर भगवान है, उधर भगवान है, भगवान के बिना संसार में कुछ भी नहीं है। नामदेव कहते हैं—'हे भगवन्। पृथ्वी के जल थल आदि सभी स्थानों में तुम व्याप्त हो।'[२]

'हे वैकुंठनाथ तेरी लीला अगाध है। मैं जिधर जाता हूँ उधर तुझे ही देखता हूँ। जल में, थल में, काष्ट में, पाषाण में तू ही है। आगम, निगम, वेद, पुराण तेरा ही गुणगान करते हैं।'[३]

प्रत्येक जीव के हृदय में भगवान है। हाथी और चींटी एक ही मिट्टी के बने हैं। ये सब उसी भगवान के अंश मात्र हैं। जड़-जंगम आदि सभी में ब्रह्म समान रूप से व्यापक है।[४]

'जब न माँ थी, न पिता था, न कर्म था, न काया थी, न हम थे, न तुम थे। तब इस चराचर की सृष्टि कैसे हो गई? नामदेव ने स्पष्ट कहा है कि वह परमतत्व ही ब्रह्म है जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई।'[५]

'हे परमात्मा! तुम्हारी भक्ति मुझसे नहीं होती। सकल जीवों की उत्पत्ति

---

१. एक अनेक बिआपक पूरन जत देखउ तत सोई।
माइआ चित्र बिचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥

—सं० ना० हिं० प०, पद १२०।

२. ईभै बीठलु उभै बीठलु, बीठल बिनु संसार नही।
थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिउ तूं सरब मही॥

—पंजाबातील नामदेव, पद ३।

३. तू अगाध वैकुंठनाथा तेरे चरनौ मेरा माथा।
सरबे भूता नामा पेषूं। जत्र जाऊं तत्र तूं ही देषूं॥

—सं० ना० हिं० प०, पद १२।

४. एकल माटी कुंजर चीटी भाजन रे बहु नाना।
थावर जंगम कीट पतंगा सब घटिराम समाना॥

—सं० ना० हिं० प०, पद ६।

५. माइ न होती बापु न होता करमु न होती काइआ।
नामा प्रणवै परम ततु है सतिगुर होइ लखाइआ॥

—सं० ना० हिं० प०, पद २०६।

तुमसे हुई है। तुम घट-घट वासी हो।'[1]

'भगवान वैसे ही प्राणिमात्र में अन्तर्यामी है जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिंब दिखलाई पड़ता है। ब्रह्म घट घट वासी है। ज्ञान हो जाने पर उसका दिव्य प्रकाश छिपता नहीं।'[2]

जीवात्मा (आत्म दर्शन)

आत्म परम्परा—मनुष्य के शरीर के भीतर एवं बाहर जिस तत्त्व का प्रकाश है, उसे जानने का प्रयास सदा से होता आ रहा है। प्राचीन काल ही से मनुष्य की चेष्टा रही है कि यह आत्मा क्या है, उसका स्वरूप क्या है? उसकी गति-प्रगति आदि क्या है इसका परिचय प्राप्त करे।

जीवात्मा के स्वरूप का परिचय ऋग्वेद के प्रसिद्ध मंत्र 'द्वासुपर्णा' में व्यक्त किया गया है। इस मंत्र में कहा गया है—'सदा साथ रहने वाले, परस्पर सख्य भाव रखते वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते है। उनमें एक जीवात्मा उस वृक्ष के फलो का उपभोग करता है किंतु दूसरा उनका उपभोग न करता हुआ साक्षी रूप में केवल देखता रहता है।'[3]

उपनिषदों मे आत्म तत्त्व की पूर्ण प्रतिष्ठा है। यहाँ ब्रह्म और आत्मा को ही ध्वनित किया गया है। यह आत्मा ब्रह्म है।[4] मैं ब्रह्म हूँ।[5] यह पुरुष स्वयं ज्योति है।[6] यह आत्मा ब्रह्म है, सबका अनुभव करने वाला है।[7]

आत्म-ज्ञान को उपनिषदो में जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। बृहदारण्यक

---

१. जामैं सकल जीव की उतपति। सकल जीव मै आपजी।
   माया मोह करि जगत भुलाया। घटि घटि व्यापक बापजी॥
   —सं० ना० हि० प०, पद ४८।

२. ऐसो रामराइ अंतरजामी। जैसे दरपनमाहि बदन परवानी।
   बसै घटाघट लीप न छीपै। बंधनमुकता जातु न दीसै॥
   —पंजाबातील नामदेव, पद ५८।

३. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
   तयोरन्य. पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति॥
   —ऋग्वेद १। १६४। २०।

४. अयमात्मा ब्रह्म। —बृहद० २। ५। १९।

५. अहं ब्रह्मास्मि। —बृहद० १४। १०।

६. अत्रायं पुरुष. स्वयं ज्योतिः। —बृहद० ४। ३। ९।

७. अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभू.। —बृहद० २। ५। १९।

उपनिषद् में कहा गया है—इस आत्मा की खोज करनी चाहिए।[१] तथा आत्मा है, इस प्रकार उसकी उपासना करनी चाहिए।[२] यहाँ आत्मा को परमार्थ सत्य एवं मूल तत्व माना गया है।

शांकर वेदांत के अनुसार जिस तत्व का व्यतिरेक अथवा बाध नहीं हो सकता, वह अव्ययी तत्व ही सत्य एवं नित्य है।[३] आचार्य शंकर कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपने अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता। मैं हूँ, यह अनुभव सभी को होता है।[४] वही ज्ञाता है और वही ज्ञेय है। उसे जानने के लिए किसी ज्ञान की अपेक्षा नहीं। वह स्वयं सिद्ध है। आत्मा अकर्ता है, अभोक्ता है और सुख दुख से परे है। सुख दुख की समस्त प्रतीतियाँ अंत करण, शरीर, इन्द्रिया आदि उपाधियों के संबंधों के कारण है, वे आत्मा के निजी स्वरूप में नहीं है।[५]

स्वरूप लक्षण में आत्मा नित्य, मुक्त, अजन्मा, निराकार, अमर, अनन्त, सर्वव्यापी तथा चैतन्य-स्वरूप है।

तटस्थ-लक्षण अथवा आत्मा की व्यावहारिक प्रतीति जीव होती है। अविद्या जीव का अज्ञान है। यही आत्मा जब नाम-रूप की उपाधि से युक्त होता है, तब जीव कहलाता है। जिसे व्यक्ति कहा जाता है वही जीव है। जब अन्त करण आत्मा को नाम रूप की उपाधि से सीमित कर देता है तो इस चैतन्य को साक्षी कहा जाता है और जब अन्त.करण व्यक्तित्व का निर्माण करता है तो इसे जीव कहा जाता है। जीव का ही सम्बन्ध शुभ-अशुभ कर्मों के फल से होता है।[६]

जीव सम्बन्धी नामदेव के विचार

जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध—नामदेव जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। वे कहते हैं कि 'हे माधव ! तुम मुझसे बाजी क्यों नहीं लगाते हो ? (तुम बताओ कि

१. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः। —बृहद० २।४।५।

२. आत्मेत्येवोपासीत। —बृहद्० १।४।७।

३. एक रूपेण हि अवस्थितो योऽर्थः सह परमार्थः। —शांकर भाष्य २।१।२।

४. सर्वो ह्यात्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहम् अस्मीति। —शांकर भाष्य १।१।१।

५. तस्माद् उपाधिधर्माध्यासे नैवात्मनः कर्तृत्वम् न स्वाभाविकम्॥ —शांकर भाष्य, २।३।४०।

६. अन्त.करणविशिष्टो जीव अन्त.करणोपहिता साक्षी। —वेदान्त परिभाषा, पृ० १०२।

तुममें और मुझमें क्या अन्तर है ? अर्थात् कोई अन्तर नहीं है), भगवान् से भक्त और भक्त से भगवान् है। अद्वैत का यही खेल भक्त और भगवान् के बीच चल रहा है। तुम्ही देवता हो, तुम्ही मंदिर हो और तुम्ही पुजारी हो—जल से ही लहरें और लहरों से ही जल होता है, दोनों अभिन्न हैं—कहने-सुनने में दोनों भले ही अलग हों। 'हे भगवान् ! तुम ही गाते हो, नाचते हो और वाद्य बजाते हो। नामदेव कहते हैं—हे भगवान् ! तुम मेरे स्वामी हो। तुम्हारा भक्त अपूर्ण है, तुम पूर्ण हो।'[1]

नामदेव के अनुसार सभी जीवों की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है। वह सब जीवों में समाया हुआ है। यह माया ही है जिसने सारे संसार को मोह लिया है। अन्यथा तुम घट-घट वासी हो।[2] यहाँ पर नामदेव ने आत्मा का निरूपण बहुत कुछ गीता की शैली पर किया है।

अज्ञानी जीव को मोहिनी माया अपने पाश में जकड़ लेती है। ऐसे अज्ञानी जीव को चेतावनी देते हुए नामदेव कहते हैं—'हे जड ! तू सचेत हो जा। तुझे यह औघट घाट पार करना है।'[3]

आत्म तत्त्व सारे संसार में व्याप्त है। उसी को लोग विश्वात्मा कहते है। आत्मा और विश्वात्मा मूलतः एक ही है। यह माया है जो आत्मा को पंचतत्त्वमय शरीर से आबद्ध कर के अपने वश में कर लेती है।[4] माया से आवद्ध आत्मा ही जीव के नाम से प्रसिद्ध है।

---

१. बदहु की न होड़ माधऊ मोसिऊ।
ठाकुर ते जनु जन ते ठाकुरु खेलु परिउ है तोसिऊ ॥
जल ते तरंग तरंग ते है जल कहन सुनन कऊ दूजा ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद १६१।

२. जासैं सकल जीव की उतपति। सकल जीव मैं आप जी ॥
माया मोह करि जगत भुलाया। घटि घटि व्यापक बाप जी ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद ४८।

३. जागि रे जीव कहा भुलाना।
आगे पीछै जाना ही जाना ॥ टेक ॥
भणत नामदेव चेति अयाना।
औघट घाट अरन दूरि पयाना ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद १२२।

४. बीहौ बीहौ तरी सबल माया।
आगे इनि अनेक भरमाया ॥ टेक ॥

जीव की एकता और अद्वैतता

हम माया के कारण आत्मा और ब्रह्म की अद्वैतता पहचान नहीं पाते। नामदेव भी आत्मा और ब्रह्म में भेद नहीं मानते। वे कहते हैं—'हे परमात्मा! तुम्हारा वियोग मुझे असह्य है। तुम्हारे बिना मैं घड़ी भर भी नहीं रह सकता। यदि तुम गिरीवर हो तो मैं मोर हूँ। यदि तुम चद्रमा हो तो मैं चकोर हूँ। तुम तरुवर हो तो मैं पछी। तुम यदि सरोवर हो तो मैं उसमें रहने वाली मछली हूँ।'[1] इस प्रकार जीव और ब्रह्म की एकता एव अद्वैतता को नामदेव ने स्पष्टतया घोषित किया है।

'हे जीव! तेरी गति तू जानता है। मैं उसका क्या वर्णन करूँ? जैसे लवण (नमक) पानी में द्रवित होने पर अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार का मेरा और मेरे स्वामी का सबध है। सत्सग से मुझे उसकी प्राप्ति हुई। मै प्रमातिशय से उसकी वदना करता हूँ।[2]

माया

मायावाद की परपरा—*मायावाद भारतीय दर्शन में अपना विशिष्ट स्थान* रखता है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि इन्द्र अपनी शक्ति से अनेक प्रकार के रूप धारण कर लेता है।[3] वेदों में रूप बदलने की क्रिया को माया कहा गया है।

उपनिषदों में नाम रूप के अर्थ में माया शब्द का प्रयोग हुआ है। कठोप

माया अतर ब्रह्म न दीसे।
ब्रह्म के अउर माया नहा दीसै ॥ १ ॥

—स० ना० हिं० प०, पद ३६।

१ तुम बिनु घरि येक, रहूँ नहि न्यारा।
सुन यह केसव नियम हमारा ॥
जहाँ तुम गिरीवर ताहाँ हम मोरा।
जहाँ तुम चदा तहाँ मैं चकोरा ॥ १ ॥

—स० ना० हिं० प०, पद १६१।

२ तेरी गति तू ही जानै। अल्प जीव गति कहा बखानै। टेक।
जसा तू कहिये तैसा तूँ नाहीं। जैसा तू है तैसा आछि गुसाई ॥ १ ॥
लूण नीर ये नाहं न्यारा। ठाकुर साहिब प्राण हमारा ॥ २ ॥
साध की सगति सत सू भेंटा। प्रणवत नामा राम सहेटा ॥ ३ ॥

—स० ना० हिं० प०, पद १४।

३. इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते। ऋग्वेद ६। ४७। १८।

निषद् में लिखा है—'आत्मा-स्वरूप परम पुरुष सब प्राणियों में रहता हुआ भी माया के पर्दे में छिपा हुआ रहने के कारण सबको प्रत्यक्ष नहीं दीखता। केवल सूक्ष्म तत्वों को समझने वाले पुरुषों द्वारा ही सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जाता है।'[1]

श्वेताश्वेतर उपनिषद् में माया का उपर्युक्त वर्णन है जो इस प्रकार है—'माया तो प्रकृति को समझना चाहिए और महेश्वर को मायापति। उसी के अंगभूत कारण-कार्य-समुदाय से यह संपूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है।[2] यहीं पर लिखा है कि—'संपूर्ण जगत् को माया का अधिपति परमेश्वर पंच महाभूतादि से रचता है तथा दूसरा जीवात्मा उस प्रपंच में माया के द्वारा भली भाँति बँधा हुआ है।'[3]

इस प्रकार उपनिषदों में नामरूपात्मक जगत् को, अविद्या को, भ्रम को तथा प्रकृति को माया कहा गया है।

गीता में माया को कृष्ण की शक्ति कहा गया है। गीता का कथन है—'मेरी यह गुणमयी और दिव्य माया दुस्तर है। इस माया को वे ही पार कर पाते हैं, जो मेरी शरण में आते हैं।'[4] और भी कहा है—'माया ने जिनका ज्ञान नष्ट कर दिया है ऐसे मूढ़ और दुष्कर्मी नराधम आसुरी बुद्धि में पड़कर मेरी शरण में नहीं आते।'[5]

गीता में माया को अविद्या, भ्रम तथा प्रकृति रूप में कहा है।

शास्त्रीय ढंग से माया का विवेचन आचार्य शंकर ने किया। कालान्तर में मायावाद मध्यकालीन दार्शनिकों के लिए एक आवश्यक तत्त्व हो गया।

---

१. एवं सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ कठोप. १। ३। १२।

२. मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥
श्वेताश्वतर उपनिषद् ४। १०।

३. अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः।
—श्वेताश्वतर उपनिषद् ४। ९।

४. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।
—गीता ७। १४।

५. न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥
—गीता ७। १५।

माया का अर्थ है ईश्वर की विचित्रार्थ-सर्गकरी (अद्भुत विषयों की सृष्टि करने वाली) शक्ति।[१]

द्वैताद्वैत, द्वैत तथा शुद्धाद्वैत आदि सभी दर्शनों ने मायावाद को स्वीकार किया है। इसे ब्रह्म की शक्ति भी बताया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि मायावाद की परंपरा प्राचीन काल में वेदों से प्रारंभ हुई और सभी भारतीय दार्शनिकों पर उसका प्रभाव पड़ा। विचारकों ने अपने अपने विचारों के अनुकूल उसका वर्णन किया। माया, अविद्या, भ्रम, अज्ञान, मिथ्या ज्ञान, नामरूपात्मक जगत् आदि शब्दों का प्रयोग माया के अर्थ में होता रहता है।

नामदेव का माया वर्णन

नामदेव ने भी अपनी रचनाओं में माया का वर्णन किया है। उनके अनुसार माया ही जीव को ब्रह्मसे विमुख करती है। कोई विरला ही व्यक्ति गुरु उपदेश द्वारा माया के प्रभाव से बचकर ब्रह्म तक पहुँच सकता है।

माया के दो रूप है—एक अविद्या माया तथा दूसरी विद्या माया। अविद्या माया के वशीभूत होकर जीव संसार के मोहजाल में फँस जाता है। विद्या माया, सब गुण जिसके वश में हैं और जो ईश्वर की प्रेरणा से संसार की रचना करती है, जीव को संसार के मोहजाल से छुड़ा कर ब्रह्म को भक्ति की ओर ले जाती है।

नामदेव कहते हैं—'हे विट्ठल ! तेरी माया बहुत ही प्रबल है। पहले ही से वह भक्तों को भरमाती आई है। तथ्य यह है कि माया के प्रबल हो जाने पर ब्रह्म तथा ब्रह्म के प्रबल हो जाने पर माया दृष्टिगोचर नहीं होती।'[२]

'हे माधव ! यह माया तुम्हारी भक्ति में बाधक होती है। वह भक्तों को तुमसे मिलने नहीं देती।'[३]

'जीव का गर्भयोनि में आना ही माया है, यदि वह छूट सके तो दर्शन हो

---

१. भारतीय दर्शन : सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय

—गीता, पृ० २७०।

२. बीहो बोहो तेरो सबल माया। आगे इनि अनेक भरमाया ॥ टेक ॥
माया अंतर ब्रह्म न दीसे। ब्रह्म के अंतर माया नही दीसै ॥ १ ॥

—सं० ना० हिं० प०, पद ३६।

३. माधोजी माया मिलन न देई। जन जीवै तो करे सनेही ॥ टेक ॥

सं० ना० हिं० प०, पद १०६।

सकते हैं। आगे चल कर कहते हैं कि अब माया मुझमे नहो लिपटेगी, मै इस संसार से मुक्त हो जाऊँगा।'[1] भगवत्कृपा होने पर ही परब्रह्म परमेश्वर को जाना जा सकता है, अन्यथा नहीं।

'इस संसार में उत्पन्न प्राणी माया-पाश के कारण अपने को भूल गये है। हे भगवन ! जिस व्यक्ति को तुम ज्ञान देते हो केवल वही तुमको जान पाता है।'[2]

'माया वस्तुत: जीव मात्र को मुग्ध कर लेती है। इससे उसका रहस्य जान सकना कठिन है। इसी से माया अनिर्वचनीय कही जाती है।'[3]

'हे मन रूपी पंछी ! तू संसार रूपी जाल को स्पर्श न कर। माया दिन में तीन फेरे लगाती है। काल तुझ पर झपट रहा है।'[4]

अभिमानी मनुष्य को चेतावनी देते हुए नामदेव कहते है—'यह संसार धोखे की टट्टी है, मायाजाल है। धन, यौवन, पुत्र तथा स्त्री को तू अपना न समझ। ये बालू के मंदिर के समान नष्ट हो जायेंगे।'[5]

जगत्

जड़ जगत् का भौतिक स्वरूप .—सभी प्रकार की प्रतीतियों का नाम जगत् या संसार है। समस्त जगत् या इसके प्रत्येक विषय को एक-सा अन्त-तम सत्य या पारमार्थिक सत्य नहो कह सकते। जगत् जब नामरूपात्मक हो लिया जाता है तब वह केवल व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है या यों कहें कि प्रातिभासिक सत्ता की अपेक्षा अधिक सत्य है और पारमार्थिक सत्ता की अपेक्षा कम सत्य।

---

१. इहु संसार ते तब ही छूटउ जउ माइया नह लपटावउ।
माइआ नामु गरभ जोनि का तिह तजि दरसन पावउ॥
—ग्रन्थ साहब, रागु धनासरी २।

२. सभ ते उपाई भरम भुलाई। जिस तूँ देवहि तिसहि बुझाई॥
—ग्रन्थ साहब, रागु आसा—१।

३. माइआ चित्र विचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥
—सं० ना० हिं० प०, पद १५०।

४. रे मन पंछीया न परसि पिंजरै। संसार माया जाल रे।
येक दिन मै तीन फेरा। तोहि सदा झपै काल रे॥ टेक॥
—सं० ना० हिं० प०, पद ७५।

५. यहु ममिता अपनी जिनि जानौ। धन जोबन सुत दारा।
बालू के मंदिर बिनसि जाहिगे। झूठे करहु पसारा रे नर॥
—सं० ना० हिं० प०, पद ६२।

व्यावहारिक ज्ञान के लिए जगत् वास्तविक है। मनुष्य जब इसी में उलझ जाता है और माया में फँसकर पारमार्थिक सत्य को भूल जाता है तथा अपने नित्य मुक्त, शुद्ध-बुद्ध स्वभाव को बिसार देता है, तब यह जगत् दुःखमय है, असत्य ही है।

अपरा विद्या की दृष्टि से जीव और जड़ पदार्थ अनेक दिखाई पड़ते हैं। इनके बिना संसार का चलना कठिन है। यही व्यावहारिक ज्ञान है। व्यावहारिक ज्ञान अथवा जगत् व्यवहार के लिए जगत् वास्तविक है किन्तु इसे पारमार्थिक सत्ता नहीं मान सकते। पारमार्थिक सत्य तो ब्रह्म ही है। जगत् परिवर्तनशील तथा विनाशशील है, इसका नाश हो जाता है अत यह अबाधित तत्त्व नहीं और इसलिए सत्य नहीं कहा जा सकता।

यह सत्य दिखाई पड़ता है क्योंकि अध्यारोप के सहारे इंद्रियाँ उसमें अपने विषयों का आरोप कर लेती है और यह अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होने लगता है। यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से यह असत् है, मिथ्या है।

नाम रूपात्मक जगत् का अधिष्ठान मूल तत्त्व ब्रह्म है। उसकी पारमार्थिक सत्ता है। वह सर्वत्र व्याप्त है। नाम रूपात्मक जगत् का उत्पत्ति, स्थिति तथा लय सब अन्ततम सत्य-मय है। वह स्वय ही जगत् मे अभिव्यक्त हो रहा है, उसके अतिरिक्त जगत् का कोई अस्तित्व नहीं। अत. पारमार्थिक दृष्टि से जगत् मिथ्या है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत् की वास्तविक एवं व्यावहारिक सत्ता है।

ब्रह्म-स्वरूप विश्व का वर्णन नामदेव इस प्रकार करते हैं—'माधव रूपी माली सयाना है। वह आप ही बगीचा है तथा आप ही माली है। वह आप ही पानी है और आप ही पवन है। वह आप अपने से प्रेम करता है। वह स्वयं ही चन्द्र तथा सूरज है। आप ही धरती तथा आकाश है। जिस सृष्टिकर्त्ता ने इस प्रकार सृष्टि की रचना की, नामदेव उसका दास है।'[१]

'तरंग, फेन और बुदबुदा जैसे जल से भिन्न नहीं हैं, वैसे ही यह प्रपंच (संसार) ब्रह्म की लीला है और उससे अभिन्न है। इस संसार में जीव के रूप में ईश्वर के प्रति-

---

१. माधौ माली एक सयाना। अंतरिगत रहै लुकाना॥ टेक॥
आपै बाडी आपै मालो, कली कली कर जोड़ै।
आपै पवन आप ही पाणी आपै बरिखै मेहा।
आपै पुरिष, नारि पुनि आपै, आपै नेह सनेहा॥
आपै चन्द सूर पुनि आपै, आपै धरनि अकासा।
रचनहार विधि ऐसी रची है, प्रणवै नामदेव दासा॥
—सं० ना० हि० प०, पद ११०।

रिक्त कोई अन्य विचरण नही करता है ।'[1]

नामदेव अपने मन को चेतावनी देते हुए कहते है—'रे मन ! तू विषय रूपी संसार सागर को कैसे पार कर सकेगा ? तू तो झूठी माया को देखकर ही अपने को भूल गया ।'[2]

मराठी रचनाओं से उदाहरण

नामदेव कहते है—'यह संसार असार है, माया है, मृगजलवत् है । इसकी प्राप्ति के प्रयत्नों मे अंत में निराश ही होना पड़ेगा अतः परमात्मा की शरण में जाओ। निष्काम भाव से भक्ति करो तो तुम्हारा उद्धार होगा ।'[3]

संसार दुःख पूर्ण होते हुए भी नामदेव कही भी उसका त्याग करने के लिये नही कहते । उनके अनुसार प्रत्येक भक्त को उत्पादक श्रम करना चाहिए । प्रत्येक मानव को अपनी जीविका का काम करते समय हरि-भजन या नाम-स्मरण भी करते रहना चाहिए । नामदेव ने जीवन पर्यंत अपना पेशेवर कार्य-कपड़े सीने का अर्थात् दर्जी का काम किया ।[4]

भक्ति का मार्ग प्रवृत्ति मार्ग है । अत. नामदेव ने भक्ति को अधिक महत्त्व दिया । उन्होने मुक्ति का निरादर किया और भुक्ति को मुक्ति से उच्चतर मूल्य माना ।

---

१. जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिन्न न कोई ॥
इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद १५० ।

२. कैसे मन तरहिगा रे संसार सागर बिखै को बना ।
झूठो माइआ देखि के भूला रे मना ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद १५१ ।

३. मृगजल डोहो का उपससी वाया । बेगी लवलाह्या शरण रिघे ।
भजे तू विठ्ठला सर्वाभूती भावें । न लगति नावें आणिकाची ॥
—सकल संत गाथा, अभङ्ग १६८२ ।

४. का करौ जाती का करौ पांती । राजाराम सेऊँ दिन राती । टेक ।
मन मेरा गज जिम्या मेरी काती । रामरमे काटौं जम को फासी ॥ १ ॥
अनंत नाम का सीऊँ बागा । जा सीजत जम का डर भागा ॥ २ ॥
सीवना सीऊँ हौंसीऊँ ईव सीऊँ । राम बिना हूँ कैसे जीऊँ ॥ ३ ॥
सुरति की सुई प्रेम का धागा । नामा का मन हरि सूं लागा ॥ ४ ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद १८ ।

इसी से निष्काम कर्मयोग का सिद्धांत निकलता है। भाव भक्ति को ही कर्म-दृष्टि से निष्काम कर्मयोग कहा जाता है।

नामदेव का ऐहिक तत्व विचार

नामदेव का लौकिक जीवन विषयक दृष्टिकोण —व्यक्ति अपना ऐहिक जीवन किस प्रकार व्यतीत करे इस विषय में नामदेव ने जो विचार व्यक्त किये हैं उन्हें एक पारमार्थिक का प्रकट चिंतन समझना समीचीन होगा। भौतिक जीवन का केवल सुखोपभोग का पक्ष ही उसमें व्यक्त नहीं हुआ है। नामदेव का यह ऐहिक तत्व विचार अँधेरे में टटोलने वाले साधकों के लिए मानो उनका लगाया ज्ञान दीप है। अतः नामदेव के ऐहिक तत्व-चिंतन में अंतर्भूत उपदेशों का विशेष महत्त्व है।

जगत्, मानवी जीवन, नर देह तथा कुल की मर्यादा संबंधी प्रदर्शित विचारों से उनका लौकिक जीवन विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

नामदेव कहते हैं—'जन्म जन्मांतर के बाद नर-देह मिला है। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी यदि तूने ईश-भक्ति नहीं की तो तुझे पुनः आवागौन के फेर में पड़ना होगा। अतः सुखोपभोग के विषयों का त्याग कर आत्मा राम से लौ लगाओ। घर गृहस्थी को सँभालते हुए भी हम उसके प्रति आसक्त न हो और निरन्तर नाम-स्मरण करते रहें।'[1]

'टूटे फूटे बर्तन चुराये जाने की आशंका नहीं रहती। स्वप्न में हम जिस सुख का, ऐश्वर्य का उपभोग लेते हैं जागृतावस्था में वह हमारे लिए अनुपयुक्त होता है। उसी प्रकार भाग्य वश पारिवारिक सुख प्राप्त होता है। नामदेव कहते हैं कि यह संसार नाशवान् है।'[2]

यह जगत् (संसार) मदारी के खेल अथवा इंद्रजाल के समान है।[3]

---

१. शेवटिली पाली तेव्हां मनुष्य जन्म। चुकलिया वर्मं फेरा पडे॥
एक जन्मीं ओलखी करा आत्माराम। संसार सुगम भोगूं नका॥
संसारी असावे असोनि नसावे। कीर्तन करावे वेळोवेळा॥

—सकल संत गाथा, अभङ्ग, १६७७।

२. फुटक्या घड्याचे नाही नागवणे।
संसार भोगणे तैसे न्याये॥

—सकल संत गाथा, १६६२।

३. गारड्याचा खेळ दिसे क्षण भर।
तैसा हा संसार दिसे खरा॥

—सकल संत गाथा, अभङ्ग, १६५७।

भवसागर को पार करना दुस्तर है। नामदेव कहते हैं कि संसार से मेरा जी ऊब गया। काल (यम) मेरे समक्ष उपस्थित है और वह मुझे अपना ग्रास (निवाला) बनाना चाहता है।[1]

ऐसे दु:खपूर्ण संसार से ऊबकर नामदेव कहते है कि 'हे विट्ठल! तूने मुझे भवसागर में ढकेल दिया। वे आर्त स्वर से विनय करते है कि जन्म-मृत्यु के बीज अज्ञान को जड़ से नष्ट कर दे।'[2]

अभेद भक्ति

ज्ञानेश्वर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस उपनिषत्प्रणीत अद्वैत सिद्धांत के पुरस्कर्त्ता थे। उनका विश्वास था कि अद्वैत की एकता का संदेश घर-घर पहुँचाने के लिए 'गीता' एक उत्कृष्ट साधन है। इस प्रकार संत ज्ञानेश्वर के अनुसार भगवद गीता भागवत धर्म का आद्य तथा प्रमुख अद्वैत प्रतिपादक ग्रन्थ है।

पंढ़रपुर का भक्ति सम्प्रदाय भी अद्वैती है। अतः ज्ञानेश्वर के समान नामदेव भी अद्वैती है। ज्ञानेश्वर के अनुसार अद्वैत में भक्ति है यह बात न तो सिद्ध करने की है और न उसका वर्णन ही किया जा सकता है, यह सत्य केवल अपने अनुभव से संबंध रखता है। अपने 'अमृतानुभव' में वे इसके लिए एक दृष्टांत भी देते है—'जैसे एक ही चट्टान में गुफा, मंदिर, मूर्ति एवं भक्त के भी आकार खुदवाये जाते हैं वैसे ही हमें अभेद भक्ति का व्यवहार भी समझ लेना चाहिये तथा विश्व एवं विश्वात्मक देव को अभिन्न मानकर अभेद-भक्ति करनी चाहिए।'[3]

इस प्रकार महाराष्ट्र के संतो की वास्तविक साधना निर्गुण भक्ति ही प्रतीत होती है और उनकी रचनाओं में जो कुछ उदाहरण सगुण भक्ति के मिलते हैं वे उसके लिये किये गये प्रारंभिक प्रयोगों जैसे जान पडते है तथा केवल उसी दृष्टि से उनका कोई महत्व भी हो सकता है।

---

१. नामा म्हणे थोर उबगलो संसारा।
काल वैरी पुढारा ग्रासू पाहे॥
—सकल संत गाथा, अभङ्ग, १४२४।

२. नामा म्हणे नको पाहो माझी लाज।
संसाराचे बीज मूल खुडी॥
—सकल संत गाथा, अभङ्ग, १६५६।

३. देव देऊल परिवारु। कीजे कोरनि डोंगरु।
तैसा भक्तीचा वेव्हारु। कां न व्हावा?
—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग) में उद्घृत, पृ० ८।

संत ज्ञानेश्वर के समकालीन एवं सहयोगी संत नामदेव अपनी विचारधारा के अनुसार वस्तुत निर्गुणोपासक थे किन्तु सगुणोपासना को भी उन्होंने अपनाया था। परमात्मा ही एक मात्र सब कुछ है वही सबके बाहर तथा भीतर सर्वत्र व्याप्त है और उसी के प्रति एकांतनिष्ठ होकर रहना चाहिये इसको वे अपना परमार्थ मानते थे।

अद्वैत-परक भक्ति कल्पना

महाराष्ट्रीय संतो की यह विशेषता है कि वे द्वैतभाव को मानते न थे। वे अद्वैत भाव की भक्ति मे मग्न रहने वाले जीव थे। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार अद्वैत मत का प्रभाव सभी वैष्णव संप्रदायो में वारकरी संप्रदाय पर अधिक पड़ा है।[१] अपने 'अमृतानुभव' में एक स्थल पर ज्ञानेश्वर ने अभेद-भक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया है :

'जिस प्रकार दीप और उसकी प्रभा एक दूसरे से भिन्न नहीं है उसी प्रकार मैं और मेरे भक्त एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। दीप की प्रभा उसका स्वरूप है उसी प्रकार मेरे भक्त मेरे स्वरूप है। प्रभा का अधिष्ठान जैसे दीप है वैसे मैं भक्तो का अधिष्ठान हूँ।' इन शब्दो में नामदेव ने अद्वय विचार हमारे सामने रखा है।[२]

मूलत. सगुणोपासक नामदेव को अद्वैत की अनिर्वचनीय प्रतीति होने पर 'आप-पर भाव' (मैं-तू का भाव) जाता रहा। अपनी इस अनुभूति का वर्णन नामदेव इस प्रकार करते हैं—'यदि तू लिंग है तो मैं सालुंका हूँ। यदि तू तुलसी है तो मैं मंजिरी हूँ। वास्तव में 'स्वयें दोन्ही' तू और मैं (इष्ट देव और भक्त) दोनों में तू ही है।[३]

---

१. ईश्वराद्वयवाद की इस अपूर्व अद्वैतपरक भक्ति का ही प्रभाव कदाचित् उस वैष्णव संप्रदाय पर भी किसी न किसी प्रकार पड़ा था जो पंढरपुर नामक स्थान के आस पास विक्रम की १३ वी शताब्दी में प्रचलित हुआ था जिसके प्रवर्तक ज्ञानेश्वर माने जाते है और जो आज तक 'वारकरी सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है।
—उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ० ८८।

२. मी तो भक्त रूप भक्त माझे स्वरूप।
प्रभा आणि दीप जया परी॥
—सकल संत गाथा, अभंग ६१६।

३. तू अवकाश मी भूमिका। तू लिंग मी सालुंका॥
तूं समुद्र मी तारका। स्वयें दोन्ही॥ १॥
तू वृंदावन मी चिरी। तूं तुलसी मी मंजिरी।
तूं पावा मी मोहरी। स्वयें दोन्ही॥ २॥
—सकल संत गाथा, अभंग १५२६।

महाराष्ट्रीय संतों को अद्वैत बोध की श्रेष्ठता, उपयुक्तता कितनी ही क्यों न प्रतीत हुई हो तथापि उनके मन की अशांतता नाम रूपात्मक ईश्वर की भक्ति ही से दूर हुई है। विठ्ठल भक्त नामदेव तो सगुणोपासकों के अग्रणी थे। उनके मराठी गाथा के आधे से अधिक अभंग सगुण भक्ति-परक है। नामदेव को अपने गुरु विसोबा खेचर से अद्वैत बोध होने पर 'सर्व नारायण हरी दिसे' की प्रतीति क्षण क्षण को होने लगी। इस अनुभूति के बल पर वे 'अद्वैतनिष्ठ भक्ति योग' का सांगोपांग आविष्कार अपने अभंगो में कर सके।

नामदेव ने अपने अभंग में कहा है कि 'भक्ति के बहाने निर्गुण ने विठ्ठल के रूप में सगुण रूप धारण कर लिया। विठ्ठल का यह रूप 'नामरूपातीत' है। यह ब्रह्म ज्ञानरूप है, सगुण तथा निर्गुण दोनों से परे है। उसका वर्णन करते हुए वेद मौन हो जाते है, जो श्रुतियो के लिए भी दुर्बोध है, पुराणों से भी इसका वर्णन नहीं हो सकता।'[1]

विसोबा खेचर ने नामदेव को निर्गुण को अनुभूति दिलाकर निर्गुण परब्रह्म ही के विश्व रूप में सगुण होने का 'अन्वयात्मक' ज्ञान दिया। उन्होने नामदेव से कहा— 'अन्वयात्मक विचार से तू ऐसे स्थान पर मेरे पैर रख जहाँ परमात्मा नहीं है।'[2]

यह अन्वयात्मक ज्ञान होने पर नामदेव को अनुभूति हुई कि 'कोई स्थान परमात्मा से रिक्त नहीं है। वह सारे संसार में समाया हुआ है।'[3]

नामदेव एक ही परमात्मा के सगुण स्वरूप का यह अन्वयात्मक विचार निर्गुण के अद्वैत का व्यतिरेकात्मक वर्णन कर, प्रस्तुत करते है। यह विश्व निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप है। इसका अर्थ यह उससे भिन्न है, विश्व नाम का उससे भिन्न अस्तित्व रखने वाला कोई पदार्थ है ऐसा नहीं। यह भासमान विश्व उसकी माया है।

---

१. निर्गुणीचे वैभव आले भक्ति मिषें। तें हें विठ्ठल वेषें ठसावलें।
चोविसा वेगळे सहस्रा आगळे। निर्गुणा निराळें शुद्ध बुद्ध।
वेदा पडे मौन श्रुतीसी कानडें। वर्णिता कुवाडें पुराणासी।
भावाचे आलुक भुलले भक्ति सुखें। दिधलें पुंडलीकें साबूतिया।
नामा म्हणे आम्हा अनाथा लागूनि। निढारले नयनी वाट पाहे।
—सकल संत गाथा, अभंग ३२१।

२. जेथे देव नसे तेथे माझे पाय। ठेवी पा 'अन्वय' विचारोनी।

३. नामा पाहे अवघा जिकडे तिकडे देव।
कोठे रिता ठाव न दिसेचि॥
श्रीनामदेव गाथा, अभंग १३४९।
(महाराष्ट्र शासन प्रकाशन)

निर्गुण सगुण की एकता

निर्गुण सगुण की एकता नामदेव सुवर्ण तथा सुवर्ण से बनी अशरफी के दृष्टांत द्वारा प्रमाणित करते हैं—'जो सगुण तथा निर्गुण दोनो से परे है, जिसका कोई आकार नहीं, वही साकार होकर उपलब्ध हुआ। जल से जैसे बर्फ बनती है उसी प्रकार निराकार पांडुरंग (ब्रह्म) साकार हुआ। जिस प्रकार सुवर्ण तथा उससे बनी अशरफी अभिन्न होते हैं उसी प्रकार निर्गुण तथा सगुण एक ही ब्रह्म के दो रूप है। पांडुरंग ही संसार है, संसार ही पांडुरङ्ग है।'[1]

आकार के कारण मूल वस्तु से भिन्न कोई अन्य वस्तु निर्मित हुई है ऐसा भास होता है। वह दूर करने के लिए नामदेव विवर्तवाद का दृष्टांत देते हुए कहते है—'एक ही तत्व एकाकार रूप से सारे संसार में व्याप्त है। वही सारे संसार का संचालन करता है। इस एकमेव ब्रह्म की प्रतीति हम प्राप्त करें। उससे भिन्न भासमान होने वाला विश्व मायिक है अतः मिथ्या है।'[2] यहाँ ज्ञानेश्वर के चिद्विलासवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

वेदो का भी यही निष्कर्ष है कि द्वैत तथा अद्वैत से परे सर्वत्र अन्य निरपेक्ष एकमेव ब्रह्म है—

(१) एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।
(२) सर्वं खल्विदं ब्रह्म।
(३) नेह नानास्ति किंचन।

नामदेव ने अद्वैत सम्बन्धी इन वैदिक सिद्धान्तों का ही उद्घाटन किया है।

अपने अभिमत अद्वैत सिद्धांत को मृगजल के दृष्टांत द्वारा पुष्ट करते हुए नामदेव

---

१. निर्गुण सगुण नाही ज्या आकार। होऊनी साकार तोचि ठेठा।
जलो जलगार दिसे जैसा परी। तैसा निराकारी साकार हा॥
सुवर्ण को घन, घन की सुवर्ण। निर्गुणी सगुण यथापरी॥
पांडुरंगी अंगे सर्व झालें जग। निवबी सर्वांग नामा म्हणे॥
—सकल संत गाथा, अभंग ३२०।

२. एक तत्त्व एकाकार सर्व देखो। एक तो नेमेसी सकल अनो।
ऐसे ब्रह्म पहा आहे सर्व एक। न लगे विवेक करणे कांहीं।
मिथ्या हे डंबर माया मथितार्थ। हरि हाचि स्वार्थ वेगी करी।
नामा म्हणे समर्थ बोलिला तो वेद। नाही भेदाभेद ब्रह्मपणी॥
—सकल संत गाथा, अभंग ३३२।

कहते हैं—'ब्रह्म में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चिन्मय परमात्मा से भिन्न भासमान होने वाला विश्व मायिक है। मृगजल का जैसे वास्तव में अस्तित्व नहीं होता उसी प्रकार जड़ विश्व का भी वास्तव में अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म स्वरूप अद्वैत की बात श्रवण करो और उसी आत्म स्वरूप में तल्लीन हो जाओ।'

ज्ञानेश्वर ने 'ज्ञानेश्वरी' में अपने जिस अद्वैत सिद्धांत का सविस्तार प्रतिपादन किया उसको नामदेव ने संक्षेप में केवल तीन अभंगों में समझाया है। मानो वेदांत का सार (निचोड़) ही उन्होंने संक्षेप में परस्पर पूरक दृष्टांतों द्वारा प्रस्तुत किया है।

कुछ विद्वानों की यह धारणा कि नामदेव केवल सगुण भक्त थे, दर्शन से उनका दूर का भी वास्ता नहीं था, वे ज्ञानी नहीं थे, समीचीन नहीं जान पड़ती। डॉ० पेंडसे ऐसे विद्वानों की धारणा का खण्डन करते हुए कहते है—

'अपनी इस धारणा के अनुसार पांगारकर, रानडे, आजगावकर और विनोबा भावे द्वारा संकलित नामदेव के अभंगों में, जिनमें उनके दार्शनिक विचार व्यक्त हुए हैं, ऐसे अभंग नहीं हैं। इसी प्रकार विट्ठल को निर्गुण परब्रह्म के सगुण प्रतीक के रूप में वर्णन करने वाले अभंगो को उन्होंने प्रधानता नहीं दी। ज्ञानदेव केवल योगी और ज्ञानी थे तथा नामदेव केवल सगुण भक्त थे। ज्ञान और भक्ति का इन दोनों में जो बटवारा किया गया है वह भी ठीक नहीं जान पड़ता। निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव तथा नामदेव को निर्गुणानुभूति हुई थी। तीनों ज्ञानी भक्त थे। अन्तर इतना ही था कि ज्ञानेश्वर का यदि ज्ञान मार्ग पर अधिक विश्वास था तो नामदेव का सर्वजन सुलभ सगुण भक्ति पर। ज्ञानेश्वर की अपील यदि बुद्धि को थी तो नामदेव की भावना को। इसीलिए एक ज्ञान राज (ज्ञानियों का राजा) हुआ तो दूसरा भक्त-राज अथवा भक्त शिरोमणि।'[1]

महाराष्ट्रीय संतों ने ज्ञान और भक्ति का अलग-अलग बटवारा नहीं किया जैसा कि उत्तरी भारत की संत परंपरा में परिलक्षित होता है।

ब्रह्म चाहे निर्गुण हो अथवा सगुण नाम स्मरण के लिए उसे नाम के बंधन में बंधना ही पड़ता है। नामदेव कहते हैं—'निर्गुण निराकार ब्रह्म जब सगुण रूप धारण करता है तब उसको नाम और रूप के बंधन में फँसना पड़ता है। अतः उन्होंने 'नाम वेद' की स्थापना की।'[2]

---

१. ज्ञानदेव आणि नामदेव: डॉ० शं० दा० पेंडसे—पृ० ३०१।

२. नाम तेंचि रूप, रूप तेंचि नाम। नामरूपा भिन्न नाहीं नाहीं ॥१॥
आकारला देव नामरूपा आला। म्हणोनी स्थापिला नामवेदी ॥२॥
—सकल संत गाथा अभङ्ग ६६०।

भक्तों में ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ होता है। नामदेव भक्त शिरोमणि हुए। यदि वे केवल आर्त भक्त होते तो उनको यह उपाधि न मिलती। विट्ठल के सगुण रूप की भक्ति करते हुए, उसके मूल निर्गुण स्वरूप से उनका मन यत्किंचित भी विचलित नहीं हुआ। पंढरपुर के पांडुरंग की मूर्ति की यह विशेषता है कि वह परात्पर निर्गुण परब्रह्म की प्रतीक है, किसी एक साम्प्रदायिक देवता की नहीं।

अपनी एक मराठी रचना में नामदेव कहते हैं—'निर्गुण ब्रह्म विट्ठल के रूप में सगुण रूप में व्यक्त हुआ। यह निर्गुण ब्रह्म सध्या वदनादि करते समय जो चौबीस नाम लिए जाते हैं उनसे भिन्न है। 'विष्णुसहस्रनाम' में जिन सहस्र नामों का उल्लेख आता है उससे अनोखा है, निराला है। इसका वर्णन करते हुए वेद मौन हो जाते हैं। यह श्रुतियों के लिए भी अगम्य है पुराणों के लिए भी अवर्णनीय है। यह ब्रह्म भक्ति के वश में है। वह भाव-भक्ति का भूखा है। भक्तवर पुण्डरीक ने यह परब्रह्म विट्ठल की मूर्ति के रूप में हमारे लिए उपलब्ध कर दिया। यह विट्ठल मूर्ति अनिमेष नेत्रों से हमारी ओर देख रही है।'[1]

यह निर्गुण ब्रह्म ही ज्ञानियों का 'ज्ञेय' है।[2]

ज्ञानोत्तर भक्ति

'ज्ञानी सबके आत्म स्वरूप निर्गुण परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर भी भावुकता-पूर्ण अंत करण से तथा निष्काम बुद्धि से ईश्वर के सगुण रूप की भक्ति करते हैं।'[3]

नामदेव ने आमरण यह ज्ञानोत्तर भक्ति की तथा उसका प्रचार भी किया। उनके दीक्षा गुरु विसोबा खेचर ने उनको यही उपदेश दिया था। वे कहते हैं—'पंढर-

१ निर्गुणीचे वैभव आलें भक्ति मिषें। तें हें विट्ठल वेषें ठसावलें॥
चोविसा वेगळें सहस्रा आगळें। निर्गुणा निराळें शुद्ध बुद्ध॥
वेदा पडे मौन श्रुतीसी मानवे। वर्णिता कुवाडें पुराणासी॥
भावाचें आवुक भुकेलें भक्ति सुखें। दिधलें पुण्डलीकें आणूनिया॥
नामा म्हणे आम्हां अनाथा लागूनि। निहारलें नयनीं वाट पाहे॥
—सकल संत गाथा, अभङ्ग ३२१।

२. ज्ञानियांचें ज्ञेय ध्यानियांचें ध्येय। पुण्डलिकाचें प्रिय सुख वस्तु॥
तें हें समचरण उभें विटेवरी। पहा भीमातीरी विट्ठल रूप॥
—सकल संत गाथा, अभंग ३२४।

३. ज्ञानिनस्त्वात्मभूतं मां साक्षात्कृत्यापि निर्गुणम्।
निर्निमित्तं भजन्त्येव सगुणं द्रुत चेतसः॥

पुर ही मेरा तीर्थस्थान है क्योंकि यहाँ अदृश्य, अव्यक्त निर्गुण परब्रह्म का निधान विट्ठल के रूप में सदैव सामने रहता है। पहले भी महान् भक्तों ने यह निधान प्राप्त किया था। खेचरजी ने नामदेव को निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति कराई।'[१] निर्गुण की अनुभूति होने पर विसोबा खेचर ने नामदेव से सगुण रूप विट्ठल की भक्ति करने के लिए कहा। उसका कारण यही है कि विट्ठल परब्रह्म के प्रतीक हैं।

परमात्म ज्ञान की प्राप्ति के कारण मुक्ति तो उनको मिल ही गई थी परन्तु 'ज्ञानादेवतु कैवल्यम्।' अर्थात् केवल ज्ञान के कारण प्राप्त होने वाली (केवल परब्रह्म रूप होकर रहने की) कैवल्य मुक्ति नामदेव नहीं चाहते थे। मुक्ति प्राप्त होने पर भी वे भक्ति-सरिता में अवगाहन करना चाहते थे।

नामदेव ने मुक्ति-सहित भक्ति के निम्नलिखित लक्षण बताये हैं—

(१) परमात्मा के निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों के प्रति समान आकर्षण।

(२) वृत्ति-सहित मन से चिदाकाश में डुबकी लगाना।

(३) देह की सुध-बुध भूल जाना।

(४) ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द की इस अवस्था में कीर्तन करते हुए भावावेश में आकर गाना तथा नाचना।[२]

नामदेव ने अपने अनेक अभंगों में परमात्मा के निर्गुण-परक ज्ञान से मुक्ति का तथा उसी के सगुण-स्वरूप की भक्ति का वरदान माँगा है—'अन्तःकरण में तेरा निर्गुण, निराकार तथा अव्यक्त रूप और बाहर तेरा सगुण, साकार, व्यक्त रूप देखकर मेरा मन उन्मन हुआ। सन्तों की कृपा से तेरी अंतर्बाह्य व्यापकता मुझे प्रतीत हुई और मुझ में परिवर्तन हुआ। नामदेव याचना करते हैं कि हे परमात्मा! तुझमें और मुझमें

---

१. माझे तीर्थ क्षेत्र पंढरी पै जाण। उघड़े निधान दृष्टीपुढ़े।
माग थोर थोरीं हेचि पै साधिले। नामयासि दिधले खेचर याने॥

—सकल संत गाथा, अभंग १८०७।

२. आम्हां वैष्णवांचा कुलधर्म कुलींचा। विश्वास नामाचा सर्व भावें॥
तरी त्याचे दास म्हणतां श्लाधिजे। निर्वासन कीजे चित्त आधीं॥
गाऊँ नाचूँ आम्ही आनंदे कीर्तनीं। भक्ति मुक्ति दोन्ही मागूँ देवा॥
वृत्ति-सहित मन बुडे प्रेम डोहीं। नाठवती देही देहभाव॥
सगुणी निर्गुणी एकत्व आवडी। मनें दिली बुडी चिदाकाशीं॥
नामा म्हणे देवा ऐसी भज सेवा। धावों जी केशवा जन्मोजन्मीं॥

—सन्त वचनामृतः रा० द० रानडे, पृ० १०४।

स्वामी-सेवक भाव हो।"[1]

नामदेव कहते हैं—"मैंने मोक्ष की कथा सुनी है। उससे मुझे भय लगता है। मैं केवल मोक्ष, समाधि अथवा स्वर्ग सुख नहीं चाहता। हे पांडुरंग। अभयदान देकर मुझे अपने प्रेम की निशानी दो।

'मैं उस मुक्ति को लेकर क्या करूँ जिससे तेरा वियोग हो। वासना-रहित मन से तेरा स्मरण किया तो तू मुझे सायुज्य मुक्ति देगा। फिर हे वैकुंठनायक! भक्ति का आनंद मुझे कैसे प्राप्त होगा?'[2]

'हे परमात्मा! पंचेंद्रियों के विषयों के कारण चित्त में जो खलबली मचती है उसको शांत कर अपने प्रेम-रस के लिए मेरे मन में रुचि निर्माण कर।[3]

'हे विठ्ठल! तुम कहोगे कि नामदेव इस भक्ति सुख के प्रेम को लेकर क्या बैठे हो? 'तत्वमसि' इस महावाक्य के अनुसार तुझे अनुभूति होगी कि तू शुद्ध बुद्ध चैतन्य है, तू सर्वगत है, सर्वव्यापी है। इस अद्वैत अवस्था में क्रिया, कर्म, कर्ता, भक्त, भजन, पूजिता, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, ध्याता, ध्यान, ध्येय आदि जो भेद-मूलक त्रिपुटियाँ हैं, वे मिथ्या हैं। तेरे लिए ये साधन अनावश्यक हैं। नामदेव कहते हैं—हे पांडुरंग! मैं कैवल्य मुक्ति नहीं चाहता। वर दे कि जन्म-जन्मांतर में मैं तेरी सेवा करूँ। अपनी

---

१. बाहेरी भीतरी तुजचि मी देखे। चित्त तेणें सुखें वेडावले।
सन्त संगें मज पालट हा झाला। पाहता विठ्ठला रूप तुझें।
मी-पणा सहित आनन्दी बुडाले। न निघे काही केले चित्त माझें।
नामा म्हणे एक उरली से वासना। स्वामी सेवकपणा देईं देवा॥

—सकल सन्त गाथा, अभंग १६६८।

२. ऐके मोक्षाची मी कथा। तेणें भय वाटे चित्ता।
नामा म्हणे अभयदान। देऊनि सांगे प्रेम खुण॥

—अभंग १७२०।

३. मुक्ति पद भी या अभिलाषी न चित्ती।
भणी अंतरती पाय तुझे॥

—अभंग १७३७।

४. इंद्रियांचे व्यापार अवघेचि तोडी।
प्रेम रस गोडी देईं मातें॥

—अभंग १७२१।

भक्ति का मुझे वर दे।'[1]

सगुणोपासक नामदेव में एक महान् परिवर्तन हुआ। अद्वैत का यह उपदेश कि ईश्वर तथा भक्त, पूज्य तथा पूजिता, गुरु तथा शिष्य सब तू ही है, नामदेव ने ग्रहण किया। तदनंतर की अद्वैतानुभूति का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—'मैं अब उस अवस्था को पहुँच गया हूँ कि जहाँ पहुँचकर मैं ही अपनी भक्ति का आलंबन पंढरीनाथ हुआ हूँ। मैं ही अपना भक्त हो गया हूँ। बंध और मोक्ष केवल माया-जन्य कल्पनाएँ हैं। विट्ठलराय की कृपा से मुझे इस सत्य का साक्षात्कार हुआ। अब मैं हरि का दास हो गया हूँ।'[2]

'हरि का दास होना' का अभिप्राय है अपना व्यक्तित्व हरि के व्यक्तित्व में विलीन कर देना। इस अवस्था में ईश्वर और भक्त का द्वैत नहीं रहता। यही ज्ञानोतर भक्ति है।

भक्तों में ज्ञानी भक्त सर्वश्रेष्ठ होता है। वह अपने व्यक्तित्व के साथ अपना सर्वस्व परमात्मा को समर्पण करने के कारण ईश्वर-रूप हो जाता है। उससे भिन्न नहीं रहता। भक्ति की यह चरम सीमा है। एकरूपता का यह आनन्द अनुभूति से सम्बन्ध रखता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

नामदेव कहते हैं—'केशव के अर्थात् भगवंत के हृदय में अपने भक्तों के लिए कितना प्रेम है यह नामदेव ही जानते हैं। उसी प्रकार नामदेव के अंतःकरण में भगवद्विषयक कितना प्रेम है यह केशवराय (पांडुरंग) जानते हैं। नामदेव ही केशव हैं

---

१. घेऊनिया नाम्या त्रैसतील किती। पहाशील स्थिति अंतरीची॥
काहीच न होसी विचारी मानसी। चैतन्य तत्वमसि शुद्ध बुद्ध॥
क्रिया कर्म कर्ता नव्हेसी सर्वथा। आहे सर्वगता रूप तुझे॥
भजता भजन पूजिताली पूज्य। हेही काय तुज अति विता॥
ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, ध्याता ध्यान ध्येय। माथिले उपाय नाही तुज॥
नामा म्हणे मज नकळेचि देवा। मज देई सेवा जन्मोजन्मी॥

—सकल संत गाथा, अभंग १७६८।

२. मोच माझा देव मोच माझा भक्त। मी माझा कृतार्थ सहज असे॥
बंध आणि मोक्ष मायेची कल्पना। पडली होती मना कैसी भ्रांती॥
विठ्ठले विचारे दाखविले सुख। होतें जें असंख्य हारपलें॥
नामा म्हणे सोय सापडली निकी। भालो एकाएकी हरिचा दास।

—सकल संत गाथा, अभंग १७६५।

तथा केशव ही नामदेव है। दोनों एक दूसरे से अभिन्न है। हम में (और मुझ में) द्वैत भाव नहीं है। नामदेव कहते हैं—मैंने अपना सर्वस्व तुम्हारे पदकमलों पर अर्पित कर दिया है।'[1]

सर्वं खलु इदं ब्रह्म

ईश्वर का साक्षात्कार होने पर नामदेव कहने लगे—'जिधर देखता हूँ उधर वही एक ईश्वर है जो सर्वव्यापक और सर्वपूरक है। तरंग, फेन और बुदबुदा जैसे जल से भिन्न नहीं हैं वैसे ही यह प्रपंच (संसार) ब्रह्म की लीला है और उससे अभिन्न है। इस संसार में जीव के रूप में ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य विचरण नहीं करता है। नामदेव कहते हैं—रे मानव ! ईश्वर की सृष्टि को अपने हृदय में विचार कर देख, एक ईश्वर ही घट-घट और चराचर में समान रूप से व्याप्त है।'[2]

यही 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' महावाक्य की अनुभूति है। नामदेव को सब ओर हरि चरण दिखाई देने लगे। उनका मन उन्मन हुआ। वासनाएँ ईश्वर में विलीन हुईं। 'सब कुछ ब्रह्म है' की उनको अनुभूति हुई।

निष्काम बुद्धि से राम का जप करने पर राम का साक्षात्कार होता है। भक्त स्वयं राम हो जाता है। उसको सारा संसार राममय दिखाई देता है। वह आवागमन के फेर से मुक्त हो जाता है जैसे दूध से घी बनने पर वह दूध में परिवर्तित नहीं हो सकता।

'भगवान से भक्त और भक्त से भगवान है। अद्वैत का यही खेल भक्त और भगवान के बीच हो रहा है। स्वयं ही देवता, स्वयं ही भक्त तथा स्वयं पुजारी होकर

---

१. केशवाचे प्रेम नामयाचि जाणे। नाम्या हृदयी असणें केशवातें ॥
नामा तो केशव, केशव तो नामा। अभिनत्व आम्हां केशवासी।
नामा म्हणे केशवा दुजेपण नाही। परि प्रेम तुझ्या ठायी ठेवियेले।
—सकल संत गाथा, अभंग १२१६।

२. सभु गोविंदु है सभु गोविंदु है गोविंदु बिनु नहि कोई।
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जल तें भिन न कोई ॥
इहु पर पंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ॥
कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बिचारी ॥
घट घट अंतरि सरब निरंतरी केवल एक मुरारी ॥
—सं॰ ना॰ हि॰ प॰, पद १५०।

वह अपने आपको पूजता है। नामदेव कहते हैं—तुम्हारा भक्त अपूर्ण है तुम पूर्ण हो। इसमें उसे तुम्हारे आश्रय की आवश्यकता है।'[1]

भगवान् तथा भक्त के एकरूप (अभिन्न) होने पर भी भगवान् पूर्ण तथा भक्त अपूर्ण ही रहता है। नामदेव की इस अनुभूति पर अद्वैत सिद्धांत के महान् प्रतिपादक श्री० शंकराचार्य के इस श्लोक की छाया दिखाई देती है, जिसमें वे कहते है—'हे प्रभो! यद्यपि मुझे इस बात का ज्ञान हुआ कि हम दोनों अभिन्न हैं फिर भी मैं तेरा तथा तू मेरा नहीं है। कहा जाता है कि समुद्र तथा तरंग में भेद नहीं है परन्तु लोग समुद्र की तरंग कहते है न कि तरंग का समुद्र।'[2] आचार्य को भी यही अभिप्रेत है कि भक्त अपूर्ण तथा भगवान पूर्ण हैं।

वात्सल्य भक्ति

बारहवी तथा तेरहवी शताब्दी में महाराष्ट्र में स्थिरता-प्राप्त नाथ तथा महानुभाव संप्रदायों की अपेक्षा वारकरी संप्रदाय का स्थान असाधारण है। महानुभावों की कृष्ण भक्ति अधिक तर पुष्टिमार्ग के दर्रे पर गई है। वारकरियों की विठ्ठल भक्ति पावन गंगा है। उनकी धारणा है—'विठ्ठल माउली प्रेम पान्हा पान्हावली' अर्थात् विठ्ठल-रूपी माता अपने भक्त-रूपी बालक को स्तन पान कराती है।

नाथ पंथ के आद्य पुरस्कर्ताओं ने हठयोग पर अधिक बल दिया। पुष्टि-मार्गीय भक्तों ने अपनी प्रेम लक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा। नाथ पंथियों ने अपनी कृच्छ्र साधना द्वारा मायामोह तथा इंद्रिय-दमन किया परन्तु ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि संतों ने इस भावना का उदात्तीकरण कर उसको पावन किया। भगवान् तथा भक्त, प्रेमी तथा प्रेयसी की कामुकता पर आधारित वैषयिक संबंध नष्ट होकर, माता तथा पुत्र की वात्सल्य भावना पर आधारित एक शुद्ध भाव बना।

---

१. ठाकुर ते जनु जन ते ठाकुर खेलु परिउ है तोसिऊ।
आपन देऊ देहुरा आपन आप लगावै पूजा।
जल ते तरंग तरंग ते है जल कहन सुनन कऊ दूजा॥
कहत नामदेऊ तू मेरे ठाकुर जनु ऊरा तू पूरा॥

सं० ना० हिं० प०, पद १६१।

२. सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥

—श्रीमच्छङ्कराचार्य रचित षट्पदी स्तोत्र, श्लोक ३।

ज्ञानदेव की भाँति नामदेव ने भी इस वात्सल्य भावना का अविष्कार किया है। वे कहते हैं—'विट्ठल-मैया का मुझ पर कृपा-छत्र है। स्मरण करते ही वह मुझे स्तन-पान कराती है। मेरी भूख प्यास बिना बताये ही वह जान लेती है। घड़ी भर के लिए भी वह मुझे छोड़ने के लिए तैयार नहीं है।'[1]

संत जनाबाई ने विट्ठल को एक ऐसी माता के रूप में चित्रित किया है जिसकी गोद में तथा कंधे पर संत-रूपी बालक है।[2]

संत एकनाथ के एक 'भारुड' में यही प्रेम भावना व्यक्त हुई है।[3]

संत तुकाराम कहते हैं कि विट्ठल रूपी माता के भरोसे हम निश्चित हैं।[4]

एक अन्य स्थल पर पांडुरंग को 'विठाई माउली' (विट्ठल रूपी मैया) के नाम से संबोधित करते हुए नामदेव कहते हैं—'यदि तू मेरी माता है तो मैं तेरा बछड़ा हूँ। तू मेरी हरिणी है तो मैं तेरा छौना हूँ। हे पांडुरंग! मेरे भव पाश तोड़ दो। तू मेरी पक्षिणी है तो मैं तेरा अंडज हूँ। तू मुझे दाना चुगा। नामदेव कहते हैं कि परमात्मा प्रीति के वश होते हैं, आगे पीछे खड़े होकर वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं।'[5]

नामदेव की हिंदी रचनाओं में भी भक्त की भगवान के प्रति मिलन उत्कंठा की मधुर अभिव्यक्ति है। इसे वे 'ताला बेली' शब्द से परिचित कराते हैं जिसका अर्थ

---

१. विट्ठल माउली कृपेचि सावली। आठविता घाली प्रेम पान्हा।
न सांगता जाणे तान्हं भूक। क्षणभरी व्यापक न विसंबे॥
—सकल संत गाथा, अभंग ४७८।

२. विठु माझा लेकुरवाला। संगे गोपालांचा मेळा।
जनी म्हणे गोपाळा। करी भक्तांचा सोहळा॥
—जनाबाईचे अभंग, अभंग ३०।

३. देव एकनाथाचा बछड़ा।

४. विट्ठल माझी माय। आम्हा सुखा उणें काय?
—तुकाराम गाथा, अभंग २२३१।

५. तू माझी माउली मी वो तुझा तान्हा। पाजी प्रेम पान्हा पांडुरंगे।
तू माझी हरिणी मी तुझें पाडस। तोडी भव पाश पांडुरंगे॥
तू माझी पक्षिणी मी तुझें अंडज। चारा घाली मज पांडुरंगे॥
नामा म्हणे होसी भक्तीचा वल्लभ। मागे पुढें उभा सांभाळिसी॥
—सकल संत गाथा, अभंग १५११।

है व्याकुलता। ऐसी व्याकुलता जिसमें तीव्रता है, आतुरता है। नामदेव कहते हैं—'हे प्रभो! तुमसे मिलने के लिए मैं इतना आतुर हूँ जितना एक बछड़ा गाय से मिलने के लिए व्याकुल होता है। जैसे मछली पानी के बिना तड़पती है—ठीक वैसा ही राम-नाम के बिना बेचारा नामदेव पीड़ित है।'[1]

'हे विठ्ठल तू ही मेरी माता है, मेरा पिता है। तुम ही मेरे कुटुम्बी हो।'[2]

'गोविंद मेरी माता है। गोविंद मेरे पिता हैं। मेरे सब कुछ गोविंद ही हैं।'[3]

वात्सल्य रस से सिक्त इस प्रेमा भक्ति को वारकरी संप्रदाय के संतों ने अधिष्ठित किया।

भक्ति और साधना सम्बन्धी व्यावहारिक विचार

आचार्य विनोबा भावे ने संतों के लक्षण इस प्रकार बताये हैं—'आजीविका के लिए कोई उद्योग निरंतर करते रहना (स्वकर्मणि समाधान), अपने देह से यथाशक्ति दूसरों का उपकार करना (परदुःख निवारणम्), नाम साधना का अभ्यास करना (नाम निष्ठा), सत्संग करना (सतां संग.) और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का निरपेक्षतापूर्वक पालन करना।[4]

इनमें से अधिकांश लक्षण नामदेव पर चरितार्थ होते हैं।

परन्तु संत केवल उपरिलिखित बातों पर ही सहमत नहीं है। इसके अतिरिक्त उनका एक दर्शन है जिसे 'नया वेदांत' कहा जा सकता है। इसमें प्राचीन वेदांत के अनेक सिद्धांतों का खंडन है। जैसे वर्णाश्रम का खंडन, वेद-पांडित्य का खंडन, ज्ञान

---

१. पाणीया बिन मीन तलफै। ऐसे राम नाम बिन बापुरो नामा ॥टेक॥
तन लागिले ताला बेली। बछा बिन गाइ अकेली ॥१॥
—सं० ना० हिं० प०, पद ५६।

२. माई तूं मेरे बाप तू। कुटुंबी मेरा बीठला ॥टेक॥
—सं० ना० हिं० प०, पद २४।

३. माइ गोब्यंदा बाप गोब्यंदा।
जाति पाँति गुरुदेव गोब्यंदा ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद ३५

४. स्वकर्मणि समाधानं परदु.ख निवारणम्।
नाम निष्ठा, सता संगः, चारित्र्य परिपालनम् ॥
—'माध्यम' (नवंबर १९६७): 'नया वेदांत' शीर्षक लेख।

मार्ग का खंडन आदि। एक प्रकार से यह प्राचीन अद्वैतवाद का संशोधन है। इसकी कुछ विशेषताएँ ये हैं—

(१) आत्मा को पहचानो और उसका प्रतिक्षण स्मरण करो।

'नामदेव कहते हैं कि हरि का नाम लेने से सब प्रकार की पीड़ा नष्ट होती है।'[१]

'राम नाम मेरी खेती है। राम ही मेरा सर्वस्व है।'[२]

'मैंने आत्मा को नहीं पहचाना। मेरा चित भ्रम में पड गया। लोग कृत्रिम देवता के आगे नाचते हैं और स्वयंभू देव को पहचानते नहीं।'[३]

(२) जाति-पाँति को छोड़ो, सत्संग करो—नया वेदांत जाति पाँति को नहीं मानता। उसका विश्वास है—

जाति पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।

नामदेव कहते हैं—'मुझे भला जाति-पाँति से क्या काम? मैं तो रातदिन राम नाम जपता हूँ।'[४]

(३) काम के साथ भक्ति।—नामदेव के अनुसार प्रत्येक मानव को अपनी जीविका का काम करते समय हरि भजन या नाम स्मरण भी करते रहना चाहिए। वे कहते हैं—'मेरा मन गज है और जिह्वा कैंची। मैं मन रूपी गज और जिह्वा-रूपी कैंची से यम का बंधन काटता हूँ। घड़ी भर के लिए भी भगवान का नाम विस्मृत नहीं

---

१. हरि नाँव हीरा हरि नाँव हीरा।
   हरि नाँव लेत मिटै सब पीरा॥

—सं० ना० हिं० प०, पद १।

२. राम नाम खेती राम नाम बारी।
   हमारे धन बाबा बनवारी॥

—सं० ना० हिं० प०, पद २।

३. आपा पर नहिं चीन्हीला। तो चित चितारै हहकीला।
   कृत्य आगे नाचै लोई। स्यभू देव न चीन्है कोई॥

—सं० ना० हिं० प०, पद २०।

४. का करौं जाती का करौं पाँती।
   राजाराम सेऊँ दिन राती॥

—सं० ना० हिं० प०, पद १८।

करता हूँ।'[1]

(४) करनी तथा कथनी में एकता :—सांसारिक व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वे कहते कुछ हैं और करते कुछ है। परोपदेश-कुशल तो बहुतेरे होते हैं परन्तु उपदेश के अनुसार आचरण करने वाले बहुत कम। नामदेव कहते है—'जब तक आत्मा शुद्ध नहीं है तब तक ध्यान, जप, तप आदि करने से क्या लाभ।'[2]

'पाखड-पूर्ण भक्ति से राम नहीं रीझते, रीझते है तो आंख के अंधे ही।[3]

(५) दुःखी तथा पीड़ितों के प्रति सम्वेदना :—संतों की सब से बड़ी विशेषता है मानववाद। संत साहित्य मानववाद की भावना से ओत-प्रोत है। मानव के आध्यात्मिक और लौकिक जीवन को सुखी बनाने के लिए उन्होंने बार-बार सन्मार्ग तथा कल्याणकारी पथ की ओर संकेत किया है। उन्होंने वर्ग भेद की कटु आलोचना की है। नामदेव जैसे उदाराशय व्यक्ति संसार में सभी को सुख, देखने के आकांक्षी थे।

(६) हरिजनों के सुखी होने की कामना :—हरि के भक्तों के कल्याण की कामना करते हुए नामदेव कहते हैं—'हरि के दास दीर्घायु हों। अहंकार रूपी पवन का उनको स्पर्श न हो। वे सदा सुखी रहें। नामदेव कहते है कि पांडुरंग जिनकी वाणी का निधान (थाती) बन गया है, ऐसे संत सदा सुखी हों।'[4]

(७) जन भाषा का प्रयोग :—संस्कृत और जन भाषा के भेद को बताते हुए संत रज्जब ने कहा है—'वेद वाणी कूप जल है। वह कष्ट से मिलता है। साखी,

---

१. मन मेरो गजु जिम्या मेरी काती। राम रमे काटौ जम की फाँसी।
रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ। राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ ॥
—स० ना० हिं० प०, पद १८।

२. काहे कूं कीजै ध्यान जपना। जो मन नाहीं सुध अपना ॥टेक॥
सांप कांचली छाड़े, विष नहीं छाड़े। उदिक मैं बग ध्यान माड़े ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद २३।

३. पाषड भगति राम नहीं रीझै। बाहरि अंधा लोक पतीजै ॥
—सं० ना० हिं० प०, पद २१

४. आकल्प आयुष्य व्हावे तया कुला। माझिया सकला हरिच्या दासा।
कल्पनेची बाधा न हो कोणे काली। हे संत मंडली सुखी असो ॥
अहंकाराचा वारा न लागो राजसा। माझ्या विष्णुदासा भाविकासी।
नामा म्हणे तया असावे कल्याण। ज्या मुखी निधान पांडुरंग ॥
—सकल संत गाथा, अभंग ८८३।

सबद और रमैनी तालाब का पानी है जो सर्व सुलभ है।'[१]

संतों ने संस्कृत को त्याग कर जन भाषा अपनायी। नामदेव को भागवत धर्म का महान् संदेश देना था अतः उन्होंने मराठी में रचना की। बाद में उन्होंने हिंदी में कुछ वाणियाँ कहीं, जिनका देशभर में प्रचार हुआ।

इस प्रकार इन विचारों से यह लगता है कि संत नामदेव ने एक नये प्रकार के वेदांत का निर्माण किया।

□□

१. वेद सुवाणी कूप जल दुख सू प्रापति होय।
सबद साखि सरवर सलिल सुख पीवै सब कोय।।

—रज्जबजी की वाणी।

पंचम अध्याय

नामदेव की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के काव्य के प्रयोजन
संतों का का आदर्श
काव्य के मूल्यांकन के दो प्रकार
नामदेव की कविता का सामाजिक पक्ष
काव्य निर्मिति के प्रमुख कारण
(१) प्रतिभा (२) व्युत्पन्नता (३) परिश्रम (४) भावात्मकता
नामदेव की कविता का भाव पक्ष
आत्मनिवेदन-परक काव्य, संत काव्य और भक्ति
संत नामदेव की अभंग रचना
अतंतः नामदेव के काव्य का प्रेरणा स्रोत
साक्षात्कार की अनुभूति
नामदेव की कविता में रस
वात्सल्य, शांत और करुण
नामदेव की कविता का कला पक्ष
गीति काव्य
नामदेव का अलंकार विधान, बिंब विधान
नामदेव की छंदो रचना
शैली, नामदेव का असाधारण कर्तृत्व
नामदेव की हिंदी पदावली की भाषा की कुछ विशेषताएँ
वाक्य रचना, शब्द-क्रम, बल (emphasis)
नामदेव की हिंदी के कुछ विशिष्ट प्रयोग
विशिष्ट व्याकरणिक रूपों का प्रयोग
संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग
नामदेव की हिंदी पर अन्य भाषाओं का प्रभाव
रूप रचना, सर्वनामों का प्रयोग
परसर्गों का प्रयोग, ध्वनि ।

नामदेव की रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन

किसी कवि की रचनाओं का आलोचनात्मक एवं विवेचनात्मक अनुशीलन करने के पूर्व यह सर्वथा अपेक्षित होता है कि उसके काव्यादर्श का अध्ययन कर लिया जाय। साहित्यकार के दृष्टिकोण, तथा उसके लक्ष्य के आदर्श का अध्ययन कर लेने से उसकी चिंतन पद्धति, विचार शैली और जीवन दर्शन स्वतः स्पष्ट हो जाता है। साहित्यकार एक जागरूक जीव होता है। उसकी चेतना, व्यापक दृष्टिकोण और दर्शन साहित्य के पृष्ठों में प्रतिबिम्बित होता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के काव्य के प्रयोजन

साहित्य के प्रयोजन के विषय में आचार्यों में मतभेद है। कतिपय विद्वान आनन्द को ही काव्य का मूल प्रयोजन मानते हैं। भामह के मत से काव्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का साधन है।[1] 'साहित्य दर्पण' कार भामह के कथन से पूर्णतया सहमत है। भरत, आनन्दवर्धन एवं अभिनव गुप्त आदि विचारक नैतिकता एवं धार्मिकता के विकास के लिए काव्य को प्रयोजनीय मानते हैं।

पाश्चात्य लेखकों में ब्रेडले के अनुसार काव्य स्वयं अपना साध्य है। वह धर्म, संस्कृति और शिक्षा आदि का साधन नहीं है। टॉलस्टॉय के अनुसार काव्य की मुख्य कसौटी नीति और धर्म है।[2]

---

१. धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिंच साधु काव्य निषेवणाम्॥

—भामह

2. In every age and in every human society there exists a religious sense of what is good and what is bad, common to that whole society and it is this religious conception that decides the values of the feelings transferred by Art.

—*What is Art (Oxford) p. 128-129.*

आय० ए० रिचर्ड्स् का मत अंशतः मम्मट से मिलता है। उसके अनुसार कवि अपनी कविता 'स्वान्तः सुखाय' या उपदेश देने के लिए करते है अथवा दोनो दृष्टिकोणो से भी।[1]

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानो के काव्यादर्शों एवं काव्य के प्रयोजनो का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि हिंदी के संत कवियो में से किसी ने भी उपर्युक्त आदर्शों एवं प्रयोजनो मे से एक को भी स्वीकार नही किया।

संतो का काव्यादर्श

नामदेव आदि संतो का काव्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होने काव्य का कोई प्रचलित आदर्श ग्रहण नही किया। काव्य, काव्य शास्त्र, छन्द, पिगल आदि के नियमो का न उन्होने अध्ययन किया था न इन सब के प्रति उनको कोई आस्था थी। संतों ने यह बात प्रमाणित कर दी कि काव्यशास्त्र के नियमो से अनभिज्ञ भी काव्य रचना कर सकता है। उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया कि काव्य के लिए तीव्र अनुभूति और चिंतन की गहनता अपेक्षित है न कि छन्द, अलंकार, शब्द शक्ति और अन्य गुण।

संतो ने यह भी सिद्ध कर दिया कि भाव ही काव्य की आत्मा है और जब काव्य की आत्मा दृढ़ और उच्च है तब फिर बाह्यावरण और अन्य उपकरण स्वतः जुट जायेंगे। उन्होने सचेष्ट होकर कविता की रचना नही की। उनकी कविता उत्स्फूर्त है।

दत्त-चित होकर संत साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि संतो के साहित्य में उनके काव्यदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होने काव्य को कला की दृष्टि से से नही देखा, न उन्होने काव्य एवं कवि को समाज का सम्मानित सदस्य ही माना है। उन्होंने काव्य को आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इन कवियो की रचनाओ में उनके काव्य विषयक आदर्श निहित मिलते है।

सभी संतो के उद्देश्य ब्रह्म का गुणगान, बाह्याचारो की अवहेलना, सहज भाषा, सरल शैली तथा अलकारादि विहीन जनता में प्रचलित अति साधारण छन्द है। संतो ने काव्य के महत्त्व का वहीं तक स्वीकार किया है, जहाँ तक वह ब्रह्म के स्मरण में सहायक हो सके, अन्यथा उसकी कोई उपयोगिता नही है। उन्होने आध्यात्मिक जीवन की उन्नति एवं विकास के लिए काव्य के महत्व को स्वीकार किया है। दरिया साहब मारवाड़ वाले

---

[1] The poets either wish to instruct or to delight or to combine the both.

—Principles of Literary criticism.

ने संतों का काव्यादर्श सुन्दरतापूर्वक व्यक्त किया है ।[1]

काव्य के मूल्यांकन के दो प्रकार

किसी भी काव्य का मूल्यांकन दो प्रकार से होता है—साहित्यिक और सामाजिक। काव्य समाज के लिए लिखा जाता है अत. उसके सामाजिक पक्ष को भुलाया नहीं जा सकता। संतों ने साहित्य में अमर स्थान पाने के लिए नहीं बल्कि जनता को प्रबुद्ध करने के लिए काव्य रचना की। उनमें लोक मंगल या परोपकार की भावना सदैव जागृत थी। प्रथम हम नामदेव की कविता के सामाजिक पक्ष पर विचार करेंगे।

नामदेव की कविता का सामाजिक पक्ष

संत साहित्य की सर्वप्रथम विशेषता है मानवता को प्रमुखता देना। संत नामदेव की कविता भी मानवता के भाव से ओतप्रोत है। वे एक आर्त भक्त थे। परोपकारी संत थे। उनका अन्त:करण परदु:खकातर था। अज्ञ जनों के लिए उनके हृदय में अपार करुणा थी। ऐसे अज्ञ जनों का उद्धार करने की प्रार्थना करते हुए वे कहते है, 'ये संसारी, विषयासक्त तथा पामर जीव परब्रह्म की भक्ति का आनन्द क्या जानें? ईश्वर से विमुख होने के कारण, समक्ष प्रत्यक्ष अमृत का कलश होने पर भी वे उसकी मिठास नहीं जानते। ऐसे लोगों के उद्धार की नामदेव प्रार्थना करते हैं।'[2]

संत साहित्य की दूसरी विशेषता मानववाद है। मानववाद का मूल लक्ष्य है संसार के सभी जीवों के कष्ट को मिटाना और मानव के अस्तित्व को स्वीकार करना। मानववादी नामदेव संसार को सुखी और प्रसन्न देखना चाहते हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि 'हरि के दासों को दीर्घायु प्राप्त हो और संत जन सदा सुखी हों।'[3]

संत साहित्य की तीसरी विशेषता है धार्मिकता। संतों ने धर्म-विषयक विचार धारा और धारणा में क्रांति उपस्थित कर दी। नामदेव ने स्थान-स्थान पर बाह्याचार

---

१. सकल कवित का अर्थ है सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का कर लीजै दिन रात॥
—दरिया साहब की बानी, पृ० ६।

२. तैसी चूक लीजै रे जग जीवना।
अनभवल्या बिना ऐसी लपी न कुरसनां॥ टेक॥
—स० ना० हिं० प०, पद १४८।

३. आकल्प आयुष्या व्हावे तया कुळा। माझिया सकळा हरिच्या दासा।
कल्पनेची बाधा न हो कोणे काळी। हे संत मंडळी सुखी असो॥
—सकल संत गाथा।

एवं आडंबर की निंदा की है। वे कहते हैं कि 'जब तक अपना मन शुद्ध नहीं तब तक ध्यान और जप किस काम के ?'[1] 'छापा, तिलक तथा तुलसी की माला गले में पहनने से क्या फायदा ? जब हृदय कोयले जैसा काला हो ?'[2]

संत साहित्य की चौथी विशेषता है जातीयता। मध्ययुगीन संतों ने अपनी वाणी द्वारा समस्त देश को एक महान् सांस्कृतिक चेतना में बाँध दिया। इस महान् सांस्कृतिक चेतना के फलस्वरूप जातीयता का विकास हुआ। नामदेवादि संतों ने भाषा के द्वारा जातीयता का प्रसार और प्रचार किया। कबीर,[3] रज्जब[4] आदि संतों ने दिखा दिया कि भाषा की क्या आवश्यकता है और उसका महत्त्व क्या है। उन्होंने उन्हीं छंदों का प्रयोग किया जिनसे जनता परिचित थी। वास्तव में वे जीवन भर जनता के लिए जिये और मरे।

संत साहित्य की पाँचवीं विशेषता प्रगतिशीलता है। संतों के काव्य के दो विषय हैं—(१) आध्यात्मिक और (२) लौकिक। संतों से पूर्व उच्च वर्ग का स्वत्व था। मोक्ष पर उन्हीं का अधिकार था। पर इन संतों ने आध्यात्मिक क्षेत्र में एक क्रांति उपस्थित कर दी। नामदेव अपने आप को संबोधित करते हुए कहते हैं—'हे नामा ! तू षट् कर्मों का अनुसरण करने वाले ब्राह्मणों से सरोकार न रख। तेरी भक्ति नष्ट हो जायेगी।'[5]

इस प्रकार परंपरागत आध्यात्मिक विचार धारा में संतों ने प्रगति का भी समावेश किया जो समय और देश के लिए अतीव अभीप्सित था।

जनता को प्रबुद्ध करने के लिए उन्होंने 'संतो' शब्द का प्रयोग किया। जहाँ जनता को संबोधित किया गया है, उपदेश दिया गया है वहाँ भाव की गंभीरता कम है

---

१. जौ लग राम नामे हित न भयो।
तौ लग मेरी-मेरी करता जनम गयो ॥

—सं० ना० हिं० प०, पद २२।

२. गलि पहिरे तुलसी की माला। अंतरगति कोइलासा काला ॥

—सं० ना० की० हिं० प०, पद २४।

३. संस्कीरति है कूप जल, भाषा बहता नीर।

४. बेद सु वाणी कूप जल दुख सूँ प्रापति होय।
सबद साखि सरवर सलिल सुख पीवै सब कोय ॥

—संत काव्य।

५. लोक कहै लोकाइ रे नामा।
षट दरसन कै निकटि न जाइबौ। भगति जाइगी जाइ रे नामा ॥

—सं० ना० की हिं० पदा०, पद १७।

किंतु जहाँ स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है वहाँ घनता और गंभीरता दोनों हैं।

काव्य निर्मिति के प्रमुख कारण

हमारे यहाँ के साहित्यशास्त्रकारों ने काव्य निर्मिति के तीन आवश्यक अंग बताये हैं। जैसे प्रतिभा, व्युत्पन्नता और परिश्रम। इनके साथ ही साथ भावनात्मकता को भी काव्य रचना के लिए आवश्यक गुण बताया जाता है। वैसे नामदेव की हिंदी रचनाओं में कहीं भी कवित्व के कारणों की चर्चा नहीं है। उनकी मराठी की रचनाओं के आधार पर उनके काव्य गुणों की हम परीक्षा कर सकते हैं।

प्रतिभा

दण्डी के अनुसार प्रतिभा निसर्ग की देन है।[1] वह प्रयत्न द्वारा अर्जित नहीं की जा सकती। कवि जन्म-जात होता है। उसे ठोक-पीट कर कवि बनाया नहीं जा सकता।[2] नामदेव की भी यही धारणा है। वे कहते हैं, 'हे हरि! तुम्हारी कृपा के फलस्वरूप वाक् सुमनों की यह माला मैं गूँथ सका।'[3]

विद्याभूषण के अनुसार प्रतिभा नव-नव उन्मेष धारण करने वाली शक्ति है।[4] नामदेव की रचनाओं में प्रतिभा के ऐसे नये-नये उन्मेष स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। नन्द के यहाँ के पुत्रजन्मोत्सव का वर्णन करते हुए नामदेव कहते हैं कि 'जो विश्व का पिता है, जो सारे संसार का सूत्र सँभाले हुए है वह अपने आपको नन्द जी का पुत्र कहलाता है।'[5]

पुराने विषयों को नूतन कल्पनाओं से सँवार कर, सजा कर प्रस्तुत करना प्रतिभा की विशेषता है। इस दृष्टि से भी नामदेव का काव्य अध्ययनीय है। नरदेह नश्वर है।

---

१. नैसर्गिकी च प्रतिभा।

—काव्यादर्श (१।१०३)।

2. Poets are born and not made.

३. नामा म्हणे हरि बोलिलों तुम्हिया बले।
वाहिलों तुलसी दले स्वामी लागीं॥

—सकल संत गाथा, अभंग १२१८।

४. प्रज्ञा नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा मता।

५. विश्वाचा जो बाप हातीं ज्याच्या सूत्र।
म्हणवितो तो पुत्र नंदजीचा॥

—वही, अभंग ४१।

यह कल्पना पुरानी है। परन्तु नर देह काल (यम) का ग्रास है,[१] इस कल्पना का प्रयोग कर नामदेव उसे सजीव बना देते है।'

हमारी आयु प्रति दिन घटती जा रही। नामदेव यह विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं—'सूर्योदय से फिर दूसरे दिन सूर्योदय होने तक आयु का क्षय होता है। अंत में उसका नाश होने वाला है।'[२] कितनी अन्तर्दर्शक कल्पना है।

अभिनव गुप्त ने में अपूर्व वस्तु निर्मिति की क्षमता रखने वाली प्रज्ञा को प्रतिभा कहा है। वस्तु निर्मिति के अंतर्गत पात्रों का चरित्र चित्रण, कथा वस्तु, कल्पना विलास तथा रचना सौंदर्य का समावेश होता है। बाल क्रीडा, शिवरात्र महात्म्य, पौराणिक चरित्र, ज्ञानेश्वर की आदि, तीर्थावली तथा समाधि में नामदेव के प्रतिभा विलास के मनोज्ञ दर्शन होते है। इस दृष्टि से नामदेव की ये सूक्तियाँ उल्लेखनीय है—

(१) जिस स्वर्ग-सुख की प्राप्ति के लिए लोग अनेक कष्ट उठाते है वह संत ज्ञानेश्वर को सहज सुलभ था।[३]

(२) मुक्ताबाई के अनन्त में विलीन होते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो सुन्दर आकाश में विराट का पौधा अंकुरित हुआ।[४]

(३) कीर्तन में भक्ति का उपदेश करते हुए आनन्द-विभोर होकर मैं नाचूँगा और इस प्रकार भक्ति के ज्ञान का दीप जलाऊँगा।[५]

(२) व्युत्पन्नता :—व्युत्पत्ति को 'काव्य प्रकाश' कार ने निपुणता कहा है। यह दो प्रकार से प्राप्त होती है—लोकनिरीक्षण से और काव्य तथा शास्त्र के अध्ययन से। नामदेव अपनी कमजोरियों को बडी प्रामाणिकता से स्वीकार करते हैं। फिर भी अपनी हिंदी तथा मराठी की रचनाओं में उन्होंने कम से कम छत्तीस पौराणिक कथाओं का जो उल्लेख किया है वह उनके बहुश्रुत होने का प्रमाण है।

---

१ शरीर कालाचें मातुकें।

—वही, अभंग १६६४।

२ मानुचेनि मापें आयुष्य जें चले।

—वही, अभंग १६३७।

३. वैकुंठासी शिडी लावियेली।

—अभंग, १०५८।

४. अंकुरला गाभा विराटाचा।

—सकल संत गाथा अभंग, ११८४।

५. नाचूं कीर्तनाचे रंगी। ज्ञानदीप लावूं जगी।

—अभंग, १३६२।

नामदेव बड़ी लीनता मे कहते हैं, 'मैं बहुश्रुत नहीं हूँ। ज्ञानशील भी नहीं हूँ। मैं भगवद्भक्तों का दीन दास हूँ।'[१]

'मैं कलाओं का जानकार नहीं हूँ। हे श्रीहरि ! मैं कला की बारीकियों को भी नहीं जानता।'[२]

नामदेव का विचार था कि काव्य रचना के लिए व्युत्पन्नता की आवश्यकता नहीं है। अपनी 'तीर्थावली' के अभंगों में एक स्थान पर रसिकों से वे कहते हैं—'मेरी रचना प्राकृत में—मराठी में होने के कारण उसको किसी प्रकार हीन न समझा जाय। उसको उपनिषदों का सार-स्वरूप ब्रह्म-रस समझ कर उसका सादर सेवन किया जाय।'[३]

सच्चे वैष्णव का परिचय कराते हुए नामदेव कहते हैं कि 'वेदाध्ययन करने वाले वैदिक, कथावाचक, गुणी जन, यज्ञ करने वाले याज्ञिक तथा तीर्थाटन करने वाले यात्री अपने-अपने व्यवसाय सँभाल सकेंगे परन्तु मन में भक्तिभाव न होने के कारण वे सच्चे वैष्णव न हो सकेंगे।'[४]

आचार्य शुक्ल की कविता की यह[५] परिभाषा उसके स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डालने मे समर्थ है। शेष सृष्टि के साथ मानव का घनिष्ठ संबंध है पर ज्यों-ज्यों उसके जीवन की जटिलता बढ़ती जाती है, सृष्टि के साथ मानव हृदय के रागात्मक संबंध के टूटने की सम्भावना बढ़ने लगती है। नामदेव की कविता इस बात का प्रमाण है कि ज्ञान की वृद्धि कविता के ह्रास का कारण होती है। विद्वत्ता से व्याकरण शुद्ध तथा चमत्कृति पूर्ण कविता लिखी जा सकती है। नामदेव की कविता सहज-स्फूर्त तथा मर्मस्पर्शी है। उन्होंने यह बात प्रमाणित कर दी कि काव्यशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ भी काव्य रचना कर सकता है। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि काव्य के लिए तीव्र अनुभूति और चिंतन की गहनता अपेक्षित है न कि छंद, अलंकार, शब्द-शक्ति तथा अन्य काव्य गुण।

(३) परिश्रम (अभ्यास)—अभ्यास में गुरु द्वारा कवित्व की शिक्षा तथा

---

१. नव्हे बहुश्रुत नव्हे ज्ञानशील। सकल संत गाथा, अभंग ६२४।
२. कलावंतीच्या कलाकुसरी। त्या मी नेणें गा श्रीहरी। अ. २०५४।
३. नव्हे हे प्राकृत पाठांतर कवित्व। हा उपनिषद् मथितार्थ ब्रह्म रस। अ. ६७०।
४. नामा म्हणे नाम केशवाचे घेसी। तरीच वैष्णव होसी अरे जना।
—सकल संत गाथा, अभंग १८४२।
५. 'कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।'
—चिंतामणि 'कविता क्या है' शीर्षक निबंध पृ० १९६।

संबोधनादि आते हैं। इसमें प्रधानतया काव्य के बाह्यांगो का ही विचार होता है। कवित्व शक्ति परमात्मा की देन है। 'ठोक-पीट कर कवि नहीं बनाया जा सकता।'[1] नामदेव का यह कथन यथार्थ का द्योतक है।

नामदेव को अपनी रचनाओं का संस्कार करने का कदाचित् ही अवसर मिला हो। वे रस-सिद्ध कवि थे। भावावेग में उनके मुख से जो उद्गार निकल पड़े वे कविता के साँचे में ढल कर ही निकले। उनके आध्यात्मिक गुरु विसोबा खेचर थे[2] परंतु उनसे काव्य प्रेरणा ग्रहण करने का उनकी कविता में कहीं उल्लेख नहीं है। कवित्व तथा कीर्तन की प्रेरणा उन्हें संत ज्ञानेश्वर से मिली थी। यह कथन सम्मत हो सकता है।

(४) भावात्मकता—प्रतिभा, व्युत्पन्नता तथा परिश्रम (अभ्यास) की अपेक्षा कविता के लिए महत्वपूर्ण प्रेरक तत्व भावात्मकता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार कविता की निर्मिति में भावों का महत्वपूर्ण स्थान है।[3] नामदेव की भाव विह्वलता का वर्णन करते हुए गोसाई विट्ठल से कहते हैं,—'तेरा नाम संकीर्तन करते हुए वह आनदातिरेक से नाचता है, डोलता है, सिसकता है और अहर्निश तेरा नाम लेता है।'[4] स्वयं नामदेव एक स्थान पर कहते हैं—'विट्ठल प्रेम मेरे रोम-रोम में समाया है। कीर्तन करते समय मैं प्रेमानंद से नाचने लगता हूँ।'[5] नामदेव के इन उद्गारों से उनकी भावोत्कटता प्रमाणित होती है।

काव्य निर्मिति के इन प्रमुख कारणों के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, अपूर्व कल्पनाशक्ति, ग्रहण, धारणा, मनन आदि अनेक कारण साहित्य-शास्त्रियों ने दिये हैं। इन सब कारणों को लेकर नामदेव ने रचना की हो सो बात नहीं। साहित्य शास्त्रीय काव्य कल्पना और नामदेवादि संतों की काव्य कल्पना में पर्याप्त अंतर है।

नामदेव की अपनी कोई विशिष्ट काव्य दृष्टि नहीं थी। काव्य कारणों संबंधी उनकी विस्मृति असाधारण थी। वे कहते हैं—'हे भगवंत! किस समय कौन-सा गीत

---

१. 'ठिकवोनि काय कवि होती?'—सकल संत गाथा
२. निज वस्तु दाविली माझी मज।'—अभंग १३६०।
३. 'अंतकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम ही कविता है। जब किसी कारण से हृदय के भाव हृदय में नहीं समाते और वे शब्दों का रूप धारण कर बाहर आते हैं तब उसे कविता कहते हैं, चाहे वह पद्य में हो अथवा गद्य में।'
४. हासे नाचे प्रेम फुंदतु डुलतु। अहर्निशी गातु नाम तुझें॥
—सकल संत गाथा, अभङ्ग १२८२।
५. प्रेम पिसे भरले अंगी। गीत सगे नाचो रंगी।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग ११११।

गाया जाय यह है नहीं जानता।'[1] कारण यह है कि उन्होंने सचेष्ट होकर काव्य रचना नहीं की। उनकी कविता सहज-स्फूर्त थी।

काव्य कला है अतः उसके कला पक्ष तथा भाव पक्ष पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। पहले हम नामदेव की कविता के भाव पर विचार करेंगे।

आत्मनिवेदनपरक काव्य

वारकरी पंथ की नव विधा[2] भक्ति ने जिस प्रकार 'कीर्तन' संस्था को जन्म दिया उसी प्रकार उसने संत कवियों की उज्ज्वल परंपरा को जन्म दिया। 'श्रवण कीर्तन' आदि आठ प्रकार की भक्ति करने पर भी जब भक्तों के हृदय को शांति नहीं मिली तब उन्होंने अपने इष्टदेव के सामने आकुल निवेदन करना प्रारंभ किया। यह आकुल निवेदन एक प्रकार का आत्मनिवेदन ही था जिसने आत्मनिवेदन-परक काव्य को अर्थात् Lyrical poetry को जन्म दिया।

संत काव्य और भक्ति

भक्ति संत काव्य का स्थायी भाव है। संत कवि प्रथमतः संत थे, भक्त थे तदनंतर कवि। संत ज्ञानेश्वर ने आत्मनिवेदन-परक शैली में जो अभङ्ग रचना की वह कविता करने के उद्देश्य से नहीं अपितु अपनी आंतरिक वेदना तथा व्याकुलता अपने इष्टदेव के समक्ष निवेदन करने के उद्देश्य से। अभङ्ग रचना के पीछे सन्त नामदेव का भी यही उद्देश्य था। ज्ञानेश्वर योगी थे परन्तु नामदेव एक विद्रुन प्रेमी भावुक भक्त। उनका सारा काव्य उनके आर्त हृदय का आविष्कार है।

डॉ० श्री० व्यं० केतकर[3] के अनुसार संस्कृत में आत्म-निवेदन-परक काव्य का जो अभाव था उसकी इन सन्त कवियों की रचनाओं से पूर्ति हुई। उच्च कोटि का भाव-काव्य अथवा गीति काव्य (lyrical poetry) इन सन्त कवियों की रचनाओं में ही अवतरित हुआ।[4]

---

१. कोण वेल काय गावें। हे तों भगवंता मी नेणें।
 वारा वाहे भलतया। तैसी माझी रंग छाया।
 टाल मृदंग दक्षिणेकडे। माझें गाणें पश्चिमेकडे ॥
 —सकल सन्त गाथा, अभङ्ग १५१६

२. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
 अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ भागवत
 —सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

३. महाराष्ट्रीयांचे काव्य परीक्षण, पृ० ३५।

४. सन्त काव्य समालोचन : डॉ० गं० बं० ग्रामोपाध्ये, पृ० २१२।

नामदेव पांडुरंग की ओर भावाकुल अंत:करण से देखते थे। उसके लिए उनके हृदय में जो आत्मीयता थी उसका पारावार नहीं था। नामदेव में कहीं उससे मिलने की 'लालावेली' है तो कहीं मिलन सुख का उल्लास। उनमें उत्कट भावना की हिलोर है। पुत्र का अपनी माता पर, पत्नी का अपने पति पर, मित्र का अपने मित्र पर इतना प्रेम न होगा जितना नामदेव का पांडुरंग पर था।

नामदेव की कविता में हमें भावातुर हृदय की आकुलता, आशंकित हृदय की अशांतता, विट्ठल की आहट पाते ही हर्षातिरेक से हृदय का नर्तन, यह आहट आभास में परिवर्तित होने पर दारुण निराशा आदि विविध भावनाओं की झलकियाँ मिलती हैं।

प्रिन्सिपल वा० व० पटवर्धन[1] ने नामदेव की कविता को बायरन, शैली तथा वर्ड्सवर्थ आदि पाश्चात्य कवियों की कविता से तुलना कर प्रमाणित किया कि भावोद्रेक में वह इन कवियों की कविता से किसी प्रकार कम नहीं है। नामदेव के अभंग भावोत्कटता के सुंदर उदाहरण हैं।

इस प्रकार मराठी में भाव गीत (गीति काव्य) की परंपरा नामदेव आदि संत कवियों से प्रारम्भ होती है।

संत नामदेव की अभंग रचना

नामदेव की उत्कट भक्ति के कारण लोग उनको बाल-भक्त कहने लगे। जैसे-जैसे दिन बीतते गये उनका भावुक मन विट्ठल भक्ति की ओर अधिकाधिक आकर्षित होता गया। अपने इष्टदेव पांडुरंग के सान्निध्य में रहकर वे निरंतर भक्त-रस से सराबोर अभंगों की रचना एवं गायन कर भक्ति में निमग्न रहने लगे। उनका कीर्तन सुनने के लिए जनता सागर जैसी उमड़ पड़ती थी। उनके प्रेम, राग, मित्रता और पूजा का विषय भगवान पांडुरंग ही बने मानो वे उससे एकरूप हुए थे। इस एकरूपता, उत्कटता और आर्तता के स्रोत से उनके अभंगों की सृष्टि हुई जिसका विस्तृत वर्णन अब हम करेंगे।

नामदेव शीघ्र कवि थे। उनका हृदय अतीव संवेदनशील था। उनकी भक्ति का आवेग अवर्णनीय था। ऐसी दशा में उनके द्वारा प्रचुर मात्रा में अभंगों की रचना होना

1. 'In the field of lyric of devotion—of the lyric of divine love-of Romance of piety and love of the spirit, Maharashtra literature stands unrivalled even perhaps unequalled. unapproached and unapproachable.'

—Philological Lectures by Prof. W. B. Patwardhan (Lecture No. 2)

स्वाभाविक था। उनके उपलब्ध अभंग आत्मनिष्ठा अथवा आभ्यंतरता से ओतप्रोत है। यों भी कहा जा सकता है कि विषयीनिष्ठ (Subjective) काव्य के वे आदर्श है। संत नामदेव का आत्माविष्कार वर्णन से परे है। अतः उनके अभंगो की सरसता, प्रासादिकता और मधुरता बेजोड़ है। वे सर्वसाधारण जनता के लिए रचे गए थे। अतः उनकी रचना सरल और सुगम है।

आर्तता : नामदेव के काव्य का प्रेरणा स्रोत

जब नामदेव ने भावुकता भरे हृदय से हठ किया कि विठ्ठल उनके हाथ से दूध पियें तभी उनके हृदय की आर्तता कविता-सरिता के रूप में प्रवाहित हुई। जैसे मछली पानी के बाहर तड़पने लगती है वैसे नामदेव अपने इष्टदेव पांडुरङ्ग के दर्शन के लिए तड़पते थे। उनकी यह तीव्र तडप उनके सैकड़ो अभगो में मुखरित हुई है। एक अभङ्ग में वे कहते है—'चाहे मेरे प्राण निकल जायें या रहे मैं दृढ़तापूर्वक पांडुरङ्ग की भक्ति करता रहूँगा। हे पांडुरङ्ग ! मै तेरी सौगंध लेकर कहता हूँ कि मै तेरे चरण कभी न छोड़ूँगा। हे केशवराज ! तू मेरा यह प्रण निभा दे।'[1] इस अभङ्ग में तड़प के साथ निर्धार भी व्यक्त हुआ है।

अन्य एक अभङ्ग में नामदेव कहते है—'हे विठ्ठल ! तेरी मार्ग प्रतीक्षा करते करते मेरी आँखें थक गई। मेरा कंठ रुँध गया है। तू मेरी माता है अत: तुरन्त आ। तू पक्षिणी है, मैं अंडज हूँ। मैं क्षुधा से पीड़ित हूँ। तू मुझे भूल-सी गई। तू मेरी हिरणी है, मै तेरा बालक हूँ। अतः मुझे दर्शन देकर मेरा भव-पाश दूर कर।'[2] इस अभङ्ग में हृदय की व्याकुलता उपमाओ के द्वारा व्यक्त हुई है।

कभी-कभी नामदेव अपने आराध्य-देव के प्रति रोष भी प्रकट करते है। यथा—'तू पतित पावन है ऐसी तेरी कीर्ति सुनकर मै तेरे द्वार पर आया था। पर अब यह

---

१. देह जावो अथवा राहो। पांडुरङ्गी दृढ़ भावो।
चरण न सोडी सर्वथा। तुझी आण पंढरीनाथा।
हृदयी अखंडित प्रेम। वदनी तुझे मंगल नाम।
नामा म्हणे केशवराजा। केला नेम चालवी माझा।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग १५८१।

२. तू माझी माऊली मी वो तुझा तान्हा। पाजी प्रेम पान्हा पांडुरंगे।
तू माझी पक्षिणी मी तुझे अंडज। चारा घाली मज पांडुरंगे।
तू माझी हरिणी मी तुझे पाडस। तोडी भव पाश पांडुरंगे॥
—सकल संत गाथा, अभङ्ग १५११।

देखकर कि तू पतित पावन नही है, मैं लौट रहा हूँ। हे देव ! तुम इतने उदार हो कि बिना लिए कुछ देते नही। तुम जैसे कृपण से मैं क्या मांगना करूँ ? मालूम नही तेरा नाम पतित पावन किसने रखा ?'[१] उपर्युक्त अभङ्ग मे प्रेम के साथ व्यंग्य भी प्रकट हुआ है।

संत नामदेव की रग रग मे उनका आराध्य विठ्ठल समाया हुआ था। वे उसके अनन्य भक्त थे। विठ्ठल से अधिक इस संसार की कोई वस्तु उन्हे प्रिय नही थी। वे कहते है— न मुझे वैकुण्ठ की चाह है, न कैलास की आकांक्षा। मैंने अपनी सब आकांक्षाएं विठ्ठल के चरणो मे अर्पित कर दी है। न मुझे संतान चाहिए, न धन मान, मेरे लिए तो एक विठ्ठल का प्यार ही सब कुछ है।'[२]

नामदेव विठ्ठल की आराधना मे कितने तल्लीन, कितने तन्मय हो गये थे। कहते है— हे पुरुषोत्तम ! मैं तेरे प्रेम के कारण तुझमे ही लीन हो गया हूँ। मैं देह हूँ तू उसमे रहने वाला आत्मा है। इस प्रकार हम दोनो एक ही है।'[३]

नामदेव विठ्ठल की अपेक्षा उसकी भक्ति को अधिक महत्त्व देते थे। वे कहते है— हे प्रभु ! तू अविनाशी है पर तेरे चरण तुझसे भी अधिक मधुर है। तू परा और अपरा से परे है। तेरे चरण तेरी महानता के प्रतीक है। मैं अपने तन सहित तेरे चरण चिंतन के आनंद में डूब गया हूँ और अनेक प्रयत्न करने पर भी मेरा चित्त तेरे चरणों से अलग नही हो पाता। मेरी वासनाएँ मिट चुकी हैं। हे विठ्ठल ! तू मुझे अपने सेवक के

---

१. पतित पावन नाम ऐकुनी आलो मी द्वारा। पतित पावन न होसी म्हणुनी जातो माघारा।
   घेती तेव्हां देसी ऐसा असशी उदार। काय घरनि देवा तुझें कृपणाचे द्वार।
   सोडी देवा ब्रीद आता न होसी अभिमानी।
   पतितपावन नाम तुझे ठेवियले कोणी ?
   —सकल संत गाथा, अभङ्ग १७११।

२ आम्ही स्वर्ग सुख मानू जैसा ओक। देखोनिया सुख दडरीचे।
   न लगे वैकुंठ न वांछू कैलास। सर्वस्वाची आस देवा पायी॥
   —सकल संत गाथा, अभङ्ग ४४१।

३. नामा म्हणे पुरुषोत्तमा। स्वयें जडलो तुझ्या प्रेमा।
   मी पुड़ी तू आत्मा। स्वयें दोन्ही।
   —सकल संत गाथा अभङ्ग १५२६।

रूप में स्वीकार कर।'[1]

नामदेव के मराठी काव्य की आत्मा उनकी हिंदी रचनाओ में भी संक्रमित हुई और रस भी ज्यों का त्यों प्रवाहित हुआ है। इसके अतिरिक्त अवस्था के अनुसार और भ्रमण, चिंतन और सामयिक परिस्थिति के परिणाम-स्वरूप उनके विचारों में जो प्रौढ़ता सहिष्णुता तथा उदारता आ गई थी अर्थात् उनके विचारो मे जो प्रगल्भता आ गई थी उसका निचोड हमें उनकी हिंदी रचना में मिलता है।

नामदेव अपने हृदय की व्याकुलता को 'तालाबेली' शब्द से व्यक्त करते है। यह व्याकुलता उस प्रकार की है जिस प्रकार की गाय को बछड़े के बिना या मछली को पानी के बिना होती है।[2]

एक अन्य स्थल पर वे कहते है कि जिस प्रकार विषयी नर परनारी से प्रेम कर तड़पता है उसी प्रकार की मेरी 'तालाबेली' (परमात्मा से मिलने की तीव्र उत्कंठा) है।[3]

भक्त के प्रेम की तीव्रता का परिचय या अनुभूति नामदेव लोकानुभूत दृष्टातो से कराते हैं—'जैसे भूखे को भोजन प्रिय है, जैसे प्यासा जल को ही अपनी प्रमुख आवश्यकता मानता है, जैसे मूर्ख को अपना कुटुम्ब ही प्रिय है, नामदेव कहते है कि उपर्युक्त के समान ही नारायण के प्रति मेरी भक्ति और निष्ठा है।'[4]

---

१. बाहेरी भीतरी तुजचि मी देखे। चित्त तेणें सुखे वेडावलें।
संत संगे मज पालट हा झाला। पाहता विठ्ठला रूप तुझें।
मीपणासहित आनंदी बुडालें। न निघे कांही केलें चित्त माझें।
नामा म्हणे एक उरली से वासना। स्वामी सेवकपण देई देवा।
—सकल संत गाथा, अभङ्ग १६६८।

२. मोहि लागी तालाबेली
बछरे बिनु गाइ अकेली।
पानीआ बिनु मीनु तलफै
ऐसे राम नामा बिनु बापुरो नामा॥
—पंजाबातील नामदेव, पद २६।

३. जैसे विखै हेत परनारी, ऐसे नामे प्रीति मुरारी॥
ज्यूं विषई हेरै परनारी। कौड़ा डारत फिरे जुआरी॥
—वही, पद ५८।

४. जैसो भूपे प्रीति अनाज। तृषावंत जल सेती काज।
मूरिख नर जैसे कुटुम्ब पराइण। ऐसी नामदेव प्रीति नराइण॥ १॥

संत नामदेव के हिंदी पदो में मधुरा भक्ति की धारा प्रबलता से बहती है। अपने आराध्य प्रभु रामचन्द्रजी की बावली वधू बनकर उन्हें रिझाने के लिए नामदेव शृङ्गार करना चाहते हैं। अपने प्रियतम से मिलने के लिए वे इतने धृष्ट एव आतुर बन गये हैं कि उनको लोकनिंदा का भी भय नहो। वे तो उनसे डंके की चोट पर मिलना चाहते हैं।[१]

उस एक मात्र राम के प्रति ही अपनी भक्ति का प्रदर्शन करते हुए नामदेव कहते हैं—'जिस प्रकार नाद को श्रवण कर मृग उसमें निरत हो जाता है और मरते दम तक उसका ध्यान नही टूटता, जिस प्रकार बगुला मछली की ओर दृष्टि लगाये रहता है, स्वर्णकार सोने का गहना गढ़ते समय एक चित्त रहता है, जिस प्रकार कामी पर स्त्री की ओर दृष्टिपात करता है और जुआरी अपनी कौडी के फेरे में रहता है उसी प्रकार मेरी भी दृष्टि उसी एक 'राम' की ओर लगी हुई है। जहाँ देखता हूँ वहाँ वही है। उसके सिवा और कुछ भी नही है।'[२]

नामदेव मूलतः भक्त थे। सिर से लेकर पैर तक भक्त। उनका जीवन भक्ति से सराबोर था। ऐसा भक्त जिसके लिए भगवान ने अपने प्रण को छोड़ दिया, पूरे भक्ति साहित्य में शायद ही मिले। इस भक्तिभाव का बड़ी ईमानदारी से उन्होंने अपनी हिंदी रचनाओ में आविष्कार किया है। अपनी भक्ति की प्रामाणिकता का वर्णन करते हुए नामदेव कहते है—'हे परमात्मा ! मुझे तू अपनी भक्ति प्रदान कर। मुक्ति को लेकर मै क्या करूँगा ? यदि तू अपनी भक्ति न देगा तो मैं अपने शरीर को नष्ट कर दूँगा।

जैसे पर पुरिषा रत नारी। लोभी नर धन को हितकारी।
कामी पुरिष काम रत नारी। ऐसी नामदेव प्रीति मुरारी ॥ ३ ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ११५।

१. मैं बऊरी मेरा रामु भतारु।
रचि रचि ताकउ करउ सिगारु ॥
भले निंदऊ भले निंदऊ लोगू।
तनु मनु राम पिआरे जोगू ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २१४।

२. ऐसे राम ऐसे हेरा। राम छाडि चित अनत न फेरो ॥ टेक ॥
ज्यूँ विषई हेरै परनारी। कौडा डारत फिरै जुवारी ॥ १ ॥
ज्यूँ पासा डारे पसवारा। सोना घडता हरै सोनारा ॥ २ ॥
जत्र जाउँ तत्र तू ही रामा। चित चिरट्या प्रणवै नामा ॥३॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५८।

मै जन्म-जन्मांतर में भटकता रहा। अंत में तेरे नाम से मेरा उद्धार हुआ। नामदेव कहते हैं कि हे परमात्मा ! तू मेरा सर्वस्व है। यदि तू सागर है तो मैं उस सागर में रहने वाली मछली हूँ।'[1]

साक्षात्कार की अनुभूति

नामदेव ने निर्गुण निराकार के साक्षात्कार के लिए साकार प्रतिमा का ध्यान करते हुए भावोत्कट मनः स्थिति में काव्य रचना की। डॉ० रा० द० रानडे के अनुसार साधक के जीवन मे ऐसी ही भावुकता अपेक्षित होती है।'[2]

कविता प्रयत्न पूर्वक नहीं बनाई जाती। बल्कि चिंतन करते-करते एक ऐसा क्षण आता है जहाँ चिंतन संबंधी प्रत्येक अभिव्यक्ति कविता बन जाती है। नामदेव की रचनाएँ इसी प्रकार के काव्य के अंतर्गत आती है।

नामदेव की रचनाओं में अनुभूति की घनता (density) विशेष रूप से प्रतीत होती है। उस परम तत्त्व का साक्षात्कार होने पर नामदेव को जो अलौकिक आनंद होता है वह उच्चरित तथा लिखित दोनों रूपों में व्यक्त करने में भाषा असमर्थ है। भाषा भावों को व्यक्त करने में तब असमर्थ होती है जब अनुभूति घनी हो।

नामदेव कहते हैं कि मुझे परमात्मा का साक्षात्कार हुआ। 'मैं चाहता हूँ कि वाद्य बजाकर मै भगवान से जा मिलूं। भले ही कोई मेरी स्तुति अथवा निंदा करे। श्रीरंग (प्रभु) से मेरी भेंट निश्चित है।'[3]

'उन्मनी अवस्था' में उन्हें 'लय योग' की जो अनुभूति हुई उसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—'मुझे ईश्वर के दर्शन हुए और झिलमिल प्रकाश दिखाई देने लगा। अनहद नाद सुनाई दे रहा था। मेरी आत्मज्योति परमात्म-ज्योति में समा गई। अन्तः-

---

१. भगति आपि मोरे बाबुला। तेरी मुक्ति न माँगू हरि बीठुला ॥
भगति न आपै तो तन आडौ। कोटि करै तो भगति न छाँडौ ॥
अनेक जनम भरमतौ फिरयो। तेरो नाँव ले ले उधरयौ।
नामदेव कहै तू जीवन मोरा। तू साइर मैं मंछा तोरा ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ४६।

2. A mystical life is supremely emotional.
—Mysticiim in Maharashtra P. 26

३. अब जीअ जानि ऐसी बनि आई। मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई ॥
असतुति निंदा करै नरु कोई। नामें श्रीरंगु भेटले सोई ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २१४।

करण की कोठरी रत्न के प्रकाश से जाज्वल्यमान हो उठी। वहां बिजली भी चमकने लगी। भगवान की दूरी नहीं रह गई। आत्मा उसी से आपूर हो गई। असत्य दीपज्योति को मद करने वाले सूर्य का प्रकाश छा गया। नामा उसी में सहज समा गया।'[1]

जो सिद्धावस्था को पहुँचता है उसे सर्वव्यापी परमात्मा जहाँ तहाँ प्रतीत होता है नामदेव कहते हैं—'विट्ठल अणु-रेणु में व्याप्त है उसके दर्शन चाहे जहाँ हो सकते हैं।'[2]

'मैं उस परमेश्वर की मानस पूजा करता हूँ जो मन्दिर और मसजिद में नहीं होता।'[3]

उनका सेवक सेव्य भाव भी जाता रहा।[4]

सचमुच नामदेव अभेद भक्ति का आस्वाद ले रहे थे। वे कहते हैं—'हे माधव! तुम मुझसे बाजी क्यों नहीं लगाते? भगवान् से भक्त और भक्त से भगवान् है, अद्वैत का यही खेल भक्त और तुम्हारे साथ पड़ा है। तुम्हीं देवता हो, तुम्हीं मंदिर हो और तुम्हीं पुजारी हो।'[5]

आगे चलकर वे कहते हैं कि 'मैं ही अपनी मानसिक स्थिति को भली भाँति जानता हूँ। यह किससे कहे? कौन उसको समझ सकेगा? मेरे हृदय में पूर्णतया प्रभु

---

१. जब देखा तब गावा। तउ जन धीरजु पावा।
   नादि समाइलो रे सतिगुर भेटिले देवा
   जह झिलिमिली कारू दिसंता।
   तह अनहद शब्द अजता॥ —सं० ना० हिं० प० पद २००।

२. ईभै बीठलु, ऊभै बीठलु, बीठल बिनु ससारु नही।
   थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिउ तू सरब मही।
   —पंजाबातील नामदेव, पद ३।

३. हिंदू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत।
   नामें सोई सेविआ जह देहुरा न मसीत॥
   —सं० ना० हिं० प०, पद २०८।

४. प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुरु को दासा रे॥
   —पंजाबातील नामदेव, पद ३६।

५. बदहु कीन होड माधऊ मोसिऊ।
   ठाकुर ते जनु जन ते ठाकुरु खेलु परिउ है तोसिऊ॥
   आपन देऊ देहुरा आपन आप लगावै पूजा॥
   —सं० ना० हिं० प०, पद १९१।

का वास्तव्य है। मेरा मानसिक द्वन्द्व और भ्रम बिलकुल नष्ट हुआ है। मैं राम में समा गया हूँ।'[1]

अभेद भक्ति की अनुभूति कितनी बढ़िया उपमाओं द्वारा करायी गई है। 'परमेश्वर सर्वव्यापी है। जैसे शीशे में देखने वाले को अपना मुँह प्रतिबिंबित दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्मज्ञानी को सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होते है।'[2]

इस अनुभूति से रंगे हुए नामदेव के पद पारमार्थिक भाव-गीत (Metaphysical lyrics) हैं।

नामदेव की कविता में रस

नामदेव की कविता भक्ति रस परिप्लुत है। भरत की रस व्यवस्था में भक्ति को स्थान नहीं था। रूप गोस्वामी तथा मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति को रस व्यवस्था में न केवल स्थान ही दिला दिया अपितु उसको प्रधानता भी दिलवाई। शरणागति (Submission) भक्ति का स्थायी भाव है। नामदेव की वाणी मानो भक्ति रस की मंदाकिनी है। उत्कट प्रेमाभक्ति का उदाहरण देना हो तो कहेंगे 'यथा नामदेवस्य।'

नामदेव के विट्ठल प्रेम में याचक की आर्तता तथा चातक की अनन्यता है। उनके मराठी के अभंगो तथा हिंदी के पदों में भक्ति तथा वात्सल्य रस परस्पर विलीन हो गये हैं। मराठी के भक्त कवियों की यह विशेषता है कि वे अपने आराध्य विट्ठल का माता के रूप में स्मरण करते है। उनके लिए वह वात्सल्य सिंधु है, करुणा का सागर है।

यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाय तो वात्सल्य भक्ति अन्य सब प्रकार की भक्तियों से उच्च प्रतीत होगी क्योंकि वात्सल्य भाव में किसी प्रकार के स्वार्थ की गन्ध तक नहीं होती। यह एक व्यापक भाव है क्योंकि इसकी स्थिति प्राणिमात्र में होती है। केवल वात्सल्य ही भक्ति का सर्व शुद्ध भाव है जिसमें न तो विरक्ति की भावना है, न इंद्रिय सुख की कामना हो। इसमें लोक धर्म का भी उल्लंघन नहीं है।

---

१. मनकी बिरथा मनु ही जाने के बूझल आगे कहीए।
अन्तरजामी रामु रमाई मैं डरु कैसे चहीऐ ॥
—पंजाबातील नामदेव, पद ५६।

२. ऐसो रामराई अन्तरजामी। जैसे दरपन महि बदन परवानी।
बसै घटाघट लीपन छीपै। बन्धन मुकता जातु न दीसै ॥
पानी माहि देखु मुखु जैसा। नामे को सुआमी बीठलु ऐसा ॥
—पंजाबातील नामदेव, पद ५१।

वात्सल्य रस का विश्लेषण

स्थायी भाव—सन्तान विषयक प्रेम
आलंबन —नामदेव
आश्रय —विट्ठल
उद्दीपन —नामदेव का रूठना,
विट्ठल से दूध पीने के लिए हठ करना।
अनुभाव —नामदेव का पुलकित होना, विलाप करना,
विट्ठल से बातें करना, आह भरना।
संचारी —निर्वेद, ग्लानि, शंका, दीनता आदि।

नामदेव भक्त और भगवान् का सम्बन्ध माता और बालक का-सा मानते हैं। वे कहते हैं—'हे विट्ठल ! तू मेरी मैया है और मैं तेरा बालक हूँ। मुझे स्तन पान करा।'[1]

'विट्ठल रूपी माता पुत्र वत्सल है। उसका अन्तःकरण बहुत कोमल है। उसका स्मरण करते ही वह अपने भूखे बालक को स्तन पान कराती है।'[2]

अपने एक हिंदी पद मे नामदेव कहते हैं—'बालक यदि रोदन भी करे तो माता उसको विष कैसे पिला सकती है ?'[3]

'मेरो माता तथा पिता तू ही है। हे हरि ! मेरी नैया उस पार पहुँचा दे।'[4]

'गोविंद मेरी माता है. गोविंद मेरा पिता है।'[5]

---

१. तू माझी माऊली मी वो तुझा तान्हा।
पाजी प्रेम पान्हा पांडुरंगे॥

—अभंग १८११।

२. विट्ठल माऊली कृपेची कोवली।
आठविता घाली प्रेम पान्हा॥

—सकल सन्त गाथा अभंग १५०७।

३. सुत कूँ जननी कैसे विष पाई ?
बालक के रुदन करे। मइया जैसे प्रान धरे।

—श्री०ना०हिं०प०, पद ६०

४. माई तूं मेरे बाप तूं। कुटुम्बी मेरा बीठला॥
हरि है हमची नाव रो। हरि उतारै पैल तिरो॥

—पद ३४।

५. माई गोव्यंदा बाप गोव्यंदा।
जाति पाँति गुरुदेव गोव्यंदा॥

—सं० ना० हिं० प०, पद ३५।

शांत रस

संसार की असारता, उसकी वस्तुओं की नश्वरता तथा परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होने से चित्त को ऐसी शांति मिलती है जो संसार के विविध सुखों के उपभोग से कभी नहीं मिलती। इसी शांति का वर्णन पाठक या श्रोता के हृदय में 'शांत' रस की उद्भावना करता है।

नामदेव एक साक्षात्कारी संत थे। अतः अपने आराध्य पंढरी के विट्ठल के प्रति उनके हृदय में असीम अनुराग था। इस तथ्य के आधार पर शांत रस की निष्पत्ति इस प्रकार होगी—

(१) स्थायी भाव—निर्वेद, संसार के विषयों से उदासीन होना।
(२) आलंबन—विट्ठल अथवा भगवान के अवतार।
(३) उद्दीपन—गुरु उपदेश, मंदिर का द्वार घूमना,
भगवान का दूध पीना आदि।
(४) अनुभाव—गद्गद होना, सिहाना आदि अनुभाव हैं।
(५) संचारी भाव—स्मरण, हर्ष, सभी के प्रति सौहार्द आदि।

अपने एक अभंग में नामदेव कहते है कि 'यह संसार क्षणभंगुर है, असार है। पानी के पृष्ठभाव पर दिखाई देने वाले बुलबुले देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं। वही हाल इस संसार का है। वह जादूगर के इन्द्रजाल के समान है। संसार असार है सार रूप केवल हरि का नाम है।'[१]

हिंदी के एक पद में अपने मन को संसार की अनित्यता से सचेत करते हुए कहते हैं—'रे मन ! संसार माया जाल है। तू आवागोन के फेर में फँसा हुआ है, काल का पंजा सदैव तेरे सिर पर है। यौवन रूपी धन पर तू गर्व न कर। आत्मा शरीर रूपी पिंजरा छोड़ जायेगी तो केवल मुट्ठी भर राख रह जायेगी। हे त्रिलोचन ! तू यहाँ चार दिन का मेहमान है।'[२]

---

१. जलों बुडबुडे देखता देखता। क्षण न लागता दिसेनाती।
तैसा हा संसार पाहता पाहता। अंतकाली हाता काय नाही॥
गारुडयाचा खेल दिसे क्षण भर। तैसा हा संसार दिसे खरा।
नामा म्हणे तेथें कांही नसे बरे। क्षणाचें हे सर्व खरें आहे॥
—सकल संत गाथा, अभंग १६५७।

१. रे मन पंछीया न परसि पिंजरे। संसार माया जाल रे।
येक दिन मैं तीन फेरा। तोहि सदा झंपै काल रे॥ टेक॥
धन जोबन रूप देखि करि। गरब्यो कहाँ गंवार रे।
कुंभ काचौ नीर भरौयो। बिनसता नहो बार रे॥ १॥

करुण रस

प्रिय व्यक्ति के पीड़ित या मृत होने, प्रिय वस्तु के वैभवविहीन होने अथवा अप्रिय व्यक्ति या अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने से हृदय को जो क्षोभ या क्लेश होता है उसी की व्यंजना से करुण रस की उत्पत्ति होती है।

(१) स्थायी भाव—शोक
(२) आलंबन—संत ज्ञानेश्वर का समाधि-ग्रहण
(३) आश्रय—संत जन
(४) उद्दीपन—उनके सहवास की स्मृतियाँ
(५) अनुभाव—रोना, प्रलाप, विवर्णता, स्तंभ आदि।
(६) संचारी—निर्वेद, ग्लानि, स्मृति, विषाद, चिंता, दैन्य आदि।

'ज्ञानदेव की समाधि' नामक प्रकरण में करुण रस चरम उत्कर्ष को पहुँच गया है। नामदेव ने बड़ी तन्मयता से इस घटना का वर्णन किया है। ज्ञानियों का वह राजा, योगियों का सखा जीवित समाधि ग्रहण करेगा, यह ज्ञान-रत्न फिर दिखाई न देगा इस कल्पना से नामदेव विचलित हुए।

'जैसे मछली पानी के बिना तड़पती है वैसे ही ज्ञानदेव के वियोग की कल्पना से मैं व्याकुल हो रहा हूँ। दश-दिशाएँ उदास हैं मानो वे भी शोक कर रही हों। मेरे प्राण ज्ञानेश्वर के लिए तड़प रहे हैं। एक महान् योगी के प्रयाण से मुझे ऐसा लगता है कि मेरा सब कुछ लुट गया। मैं शोक-सागर में डूब गया।'[१]

भनत नामदेव सुनुं हो तिलोचन। घटि दया ध्रम पालि रे।
पाहुना दिन च्यारी केरा। सुकृत राम संभारि रे॥ २॥

—सं० ना० हि० प० पद ७५।

१. कासावीस प्राण मन तलमली।
जैसी का मासोली जीवनाविण॥ १॥
दाही दिशा वोस वाटती उदास।
करिताती सोस मनामाजी॥ २॥
घातियेली घोण प्राण आला कंठी।
ज्ञानदेवा साठी तलमली॥ ३॥
नामा म्हणे देवा वाटतसे खंती।
चालली विभूती योगियांची॥ ४॥

—सकल संत गाथा, अभङ्ग १०५६।

'चील जब घोंसले को सदा के लिए छोड़ जाती है तब उसके बच्चे अनाथ हो जाते हैं। संत ज्ञानेश्वर के महानिर्वाण पर सारे संत अनाथ हो गये।'[१]

नामदेव की कविता का कला पक्ष

गीति काव्य—आधुनिक गीतिकाव्य पश्चिम की देन है। नामदेव का प्रत्येक अभंग गीति अथवा गीति काव्य का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करता है। गीति काव्य वेदना का विस्फोट है। वर्डस्वर्थ ने 'भाव' को प्रधानता देते हुए लिखा है कि 'काव्य शांति के समय स्मरण किए हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छंद प्रवाह है।'[2] वर्डस्वर्थ की यह परिभाषा समग्र काव्य की अपेक्षा गीति काव्य पर अधिक खरी उतरती है।

श्रीमती महादेवी वर्मा की [३] गीत की परिभाषा भी गीति काव्य के स्वरूप पर प्रकाश डालने में समर्थ है।

एक आलोचक के अनुसार 'भावों अथवा 'मनोवगों' के आवेशपूर्ण आग्रह को आत्माभिव्यंजन कहते हैं। गीति काव्य में प्रत्यक्ष आत्माभिव्यंजन का अवसर होता है। प्रगीत, गीत अथवा गीति काव्य को हम गेय मुक्तक कहेंगे। अंग्रेजी में इसे 'लिरिक' (lyric) कहते हैं। अंग्रेजी आलोचना संबंधी ग्रन्थों में 'लिरिक' के गेय तत्त्व पर जोर दिया गया।[4]

गीति काव्य में स्वतः स्फूर्ति (spontaniety) की मात्रा कुछ अधिक होती है। मनोवेग अथवा भावावेश उसका प्रेरक होता है।

गीति काव्य का कवि जो कुछ कहता है अपने निजी दृष्टिकोण से लिखता है।

---

१. नामा म्हणे देवा घार गेली उडोन।
वाळें दानादान पडियेलि॥

—सकल संत गाथा, अभङ्ग १०६७।

2. Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquility.

३. साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुखदु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।

—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० १४७।

4. Lyric poetry, as the name implies, is poetry originally intended to be accompanied by the lyre or by some other instrument of music. The term has come to signify any out-burst in song which is composed under a strong impulse of emotion or inspiration.

—Judgment in Literature—p. 97.

उसमें निजीपन के साथ रागात्मकता रहती है। यह रागात्मकता आत्मनिवेदन के रूप में प्रकट होती है। रागात्मकता में तीव्रता बनाये रखने के लिए उसका अपेक्षाकृत छोटा होना आवश्यक है। आकार की इस संक्षिप्तता के साथ भाव की एकता और अन्विति लगी रहती है। छोटेपन की सार्थकता भाव की अन्विति में है। गीति काव्य में विविधता रहती है किंतु वह प्रायः एक ही केन्द्रीय भाव की पुष्टि के लिए होती है। यह केन्द्रीय भाव प्रायः टेक में रहता है और बार-बार दुहराया जाता है। इस प्रकार प्रभाव घनीभूत होता रहता है और भाव की अन्विति भी हो जाती है।

गीति काव्य के इन लक्षणों पर नामदेव के अभंग पूरे उतरते हैं। गीति काव्य में कवि आत्माविष्कार करता है। यही कारण है कि नामदेव की रचना आत्मलक्षी, विषयीगत (subjective) है। अंग्रेजी के सुविख्यात निबंधकार ए० जी० गार्डिनर का यह कथन 'It is myself portray' नामदेव की कविता पर पूरी तरह से लागू होता है।

स्वयं नामदेव ही अपनी कविता के विषय हैं। घर के लोगों द्वारा उनकी विठ्ठल भक्ति का विरोध, मुक्ताबाई द्वारा उनकी भर्त्सना, 'तीर्थावली' में उनका और ज्ञानेश्वर का वार्तालाप, आत्मसुख की प्राप्ति की उनकी व्याकुलता आदि अवसरों पर नामदेव द्वारा रचित अभंग उनके भावुकता भरे हृदय के साक्षी हैं।

नामदेव का अलंकार विधान

अप्रस्तुत योजन काव्य का अभिन्न अंग है। काव्य के दो पक्ष होते हैं—भाव तथा कला पक्ष। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना संभव नहीं है। काव्य में कलात्मकता और रमणीयता का संचार करने का समस्त श्रेय और दायित्व अप्रस्तुत योजना पर है। कवि के लिये अप्रस्तुत योजना की शक्ति प्रकृति का बड़ा भारी वरदान है।

नामदेव के लिए काव्य रचना एक साधन था, साध्य नहीं। फिर भी उनकी कविता में अलंकार स्वतः सिद्ध हैं। उनकी रचनाओं में केवल उन्हीं अलंकारों का बाहुल्य है जिन की योजना, कवि की प्रतिभा अज्ञात रूप से भावों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, किया करती है। उनके काव्य में उपमा, रूपक अनुप्रासादि अलंकारों की प्रचुरता का यही कारण है।

शब्दालंकार

अनुप्रास—अनुप्रास के कितने ही उदाहरण नामदेव की कविता में अनायास ही मिल जाते है—

(१) असुदान गजदान ऐसो दानु नित नित हि कीजै। पद ६१

इसमें 'असुदान गजदान' में 'द' तथा 'न' को तथा 'दानु नित नित ही' में 'न' की एक एक बार आवृत्ति है।

(२) देवा बेनु बाजे गगन गाजे। शब्द अनाहद बोने ॥ पद ६५

इस काव्य पंक्ति के प्रथमार्ध 'न' तथा 'ज' की दो बार आवृत्ति हुई है तथा द्वितीयार्ध में 'द' की दो बार।

उपर्युक्त दो उदाहरणों में अनेक वर्णों की एक बार और कभी दो बार समता हो जाने से छेकानुप्रास अलंकार हो गया है।

(३) जोगी जन ग्याइ जुगे जुगि जीवै। (पद ६७)

ज कार का तालु स्थान होने से यह श्रुत्यनुप्राप्स है।

श्रुत्यनुप्रास वहाँ होता है जहाँ कण्ठ, तालु आदि किसी एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों में समानता पायी जाय।

उपमा

निम्नलिखित पद में उपमाओं की सुन्दरता देखिए—

ऐसो रामराई अंतरजामी। जैसे दरपनमहि बदन पखानी ॥
बसै घटाघट लीपन छीपै। बंधन मुकता जातु न दीसै ॥
पानी माहि देखु मुखु जैसा। नामे को सुआमी बीठलु ऐसा ॥

परमेश्वर सर्वव्यापी है परन्तु जैसे शीशे में देखने वाले को अपना मुँह प्रतिबिंबित हुआ दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्मज्ञानी को सर्वत्र परमेश्वर के दर्शन होते है। सिद्ध अथवा ब्रह्मज्ञानी की जाति की ओर ध्यान नही देना चाहिए। वह जाति-पाँति के बंधन के परे होता है। जैसे जल में अपना प्रतिबिंब दीख पड़ता है वैसे ही बंधन-मुक्त को सब प्राणियों के हृदय में परमात्मा दिखाई देता है।

कम से कम नामदेव तो अपने स्वामी विट्ठल का दर्शन सब जगह करते है। अभेद-भक्ति की अनुभूति कितनी बढ़िया उपमाओं के द्वारा कराई गई है। संत नामदेव जितने ऊँचे भक्त थे उतने ही ऊँचे कवि भी थे।

नामदेव को अपने इष्टदेव के दर्शन की उत्कंठा लगी हुई है। इसे वे 'तालाबेली' शब्द से परिचित कराते है, जिसका अर्थ है व्याकुलता। यह ऐसी व्याकुलता है जिसमें तीव्रता है—आतुरता है। वे कहते हैं—

मोहि लागी तालाबेली
बछरे बिन गाइ अकेली
पानीआ बिनु मीनु तलफै
ऐसे नाम-रामा बिनु बापुरो नामा ॥

यह तालाबेली उस प्रकार की है जिस प्रकार गाय को बछड़े के बिना होती है और मछली को पानी के बिना होती है।

नामदेव ने उपमानो का चयन जन जीवन से किया है। इसलिए उनकी उपमाएँ आकर्षक बन पडी है।

रूपक

जैसे जैसे सत नामदेव की आध्यात्मिक योग्यता बढती गई वैसे ही उनकी काव्य प्रतिभा भी प्रौढ़ होती गई। वे आध्यात्मिक रूपको से अपनी कविता को सजाने लगे। यहाँ उनके पदो को उद्धृत करने के मोह का सवरण नही किया जाता। बढिया रूपको का आस्वाद लीजिये—

मन मेरे गजू जिह्वा मेरी काती।
मपि मपि काटउ जम की फासी॥
कहा करउ जाती कहा करउ पाती॥
राम को नाम जपउ दिनराती॥
रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ॥
रामनाम बिनु घरीअ न जीवऊ॥
भगति करउ हरि के गुन गावउ॥
आठ पहर अपना खसम धिआवऊ॥
सुइने की सुई रूपे का धागा॥
नामे का चितु हरि सउ लागा॥

—पंजाबातील नामदेव, पद ४।

सत नामदेव दर्जी थे अत उन्होंने दर्जी के व्यवसाय से सबद्ध रूपक उपर्युक्त पद में प्रयुक्त किया है। वे कहते है कि मन रूपी गज और जिह्वा रूपी कैंची की सहायता से मै यम की फांस धीरे धीरे काट रहा हूँ। जाति पाँति से मुझे कोई सरोकार नहीं। दिन रात मैं कपडा सीने तथा रँगने का व्यवसाय करता हूँ परन्तु राम नाम का स्मरण किये बिना मै एक क्षण भी नही रह सकता। मेरी सुई सोने की है तथा धागा रूपे का है। मेरा मन हरि की ओर लगा है। नीचे के पद में एक अधिक सरस रूपक का आस्वाद लीजिये —

लोभ लहरि अति नीझर बाजे। कइआ डूबे केसवा॥
ससारु समुदे तारि गोबिंद। तारिले बाप बीठुला॥
अनिल बेड़ा हउ खेवि न साकऊ। तेरा पारु न पाइआ बीठुला॥
होहु दइआलु सतिगुरु मेलि। तू मोकऊ पारि उतारे केसवा॥

नामा कहै हऊ तरि भी न जानऊ।
मोकऊ बाह देहि बाह देहि बीठुला ॥

हे प्रभो ! संसार रूपी सागर में लोभ रूपी लहरें इतनी भयावह है और उनकी आवाज इतनी आतंकपूर्ण है कि मेरी नाव उनमे डूब जाने का भय लगता है। नामदेव कहते है कि हे विट्ठल ! मैं तैरना नहीं जानता। तू मुझे बाँह दे। कितने समुचित रूपकों द्वारा नामदेव अपना आशय व्यक्त करते है।

दृष्टांत

नामदेव ने दुरूह-तम दार्शनिक तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों को बोधगम्य बनाने के लिए दृष्टांतों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है।

(१) ऐसे रामहि जानौ रे भाई।
जैसे भृङ्गी कीट रहै ल्यौ लाई ॥टेक॥ पद ५७

एकातिक भक्ति किस प्रकार की जाय, यह एक दृष्टांत द्वारा समझाते हैं। नामदेव कहते है—'हे भाई ! जैसे भृङ्गी कीट से लौ लगाये रहती है वैसे तुम राम से लौ लगाओ।'

(२) ज्यूँ विषई हेरै परनारी। कौडा डारत फिरै जुआरी ॥
ज्यूँ पासा डारै पमवारा। सोना घड़ता हरै सोनारा ॥ पद ५८

ईश्वर भक्ति में चित्त किस तरह एकाग्र हो, यह बात नामदेव दृष्टांतों द्वारा समझाते हैं।

जैसे कोई कामार्त परस्त्री की ओर देखता है, जैसे कोई जुआरी बड़े शौक से पाँसा डालता है, जैसे सुनार सोने का जेवर बनाते समय उसमें से थोड़ा-सा सोना उड़ा लेता है, उसी प्रकार हमारा सारा ध्यान परमात्मा पर केंद्रित हो।

नामदेव की उपमाओं की भाँति उनके दृष्टात भी जन-जीवन से संग्रहीत है। ये दृष्टांत व्यापार-साम्य और गुण-साम्य संपन्न होने के कारण प्रभावशाली और रोचक बन गये है।

विभावना

विभावना में कारणान्तर की कल्पना की जाती है। गगन-मण्डल (मस्तक) के सहस्राधार में प्राणों के पहुँचने पर अनहद-नाद का और अमृत के झरने का कैसा अनुभव होता है, इसे विभावना द्वारा समझाते हैं—

"अणमड़िया मंदलु बाजै
बिनु सावन घनहर गाजै
बादल बिनु बरखा होई।" —सं०ना० हि० प०, पद १५४।

बिना मढा मृदंग बजता है, बिना सावन के, बिना बादल के वर्षा होती है।

सचमुच नामदेव के अलंकार अनुभूति को रूप देने के लिए हैं—हृदयंगम कराने के लिए हैं : इनमें कहीं चमत्कारिता नहीं है।

उदाहरण

काल हमारे सुख का कभी भी अंत कर सकता है। मछली पानी में रहती है। वह समझती है कि वह सुरक्षित और सुखी है, परन्तु अचानक जाल रूपी काल में फँस जाती है। उसका सुख तिरोहित हो जाता है। इसे 'उदाहरण' से स्पष्ट करते हैं—

> जैसे मीनु पानी में ही रहे
> काल जाल की सुधि नहीं लहे।

—पंजाबातील नामदेव

मधुमक्खी मधु का संचय करती है, क्या वह उसका उपभोग ले पाती है? गाय अपने बछड़े के लिए दूध का संचय करती है, पर क्या वह उसके बच्चे को मिल पाता है? अहीर गला बाँधकर उसे दूह लेता है :—

> जिउ मधुमाखी सचै अपार
> मधु लीनो मुखि दीनी छार।
> गऊ बाछरूऊ सचै खीरु
> गला बाँधि दुहि लेहि अहीरु।

—पंजाबातील नामदेव।

इसीलिए नामदेव कहते हैं कि अपने या अपने कुटुंबियों के लिए धन-संचय करने में क्यों अपने जीवन को गँवाते हो? निर्भय होकर भगवान का भजन करो।

मारवाड़ी को जैसे पानी प्यारा है और ऊँट को जैसे वनस्पति प्रिय है उसी तरह मुझे मेरा विट्ठल प्यारा है—

> मारवाडि जैसे नीरु बालहा बेलि बालहा करहला॥

—सं० ना० हि० प०, (२०२)

कितने अनुभूत और सूझ-भरे उदाहरण हैं।

उत्प्रेक्षा

नामदेव ने अपने भावों की व्यंजना में सादृश्यमूलक अलंकारों का आश्रय अधिक लिया है अतः उनकी रचनाओं में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है।

बिंब विधान

जो काम चित्रकार अपनी तूलिका से करता है वह रेखाचित्रकार शब्दों से करता है। नामदेव ने कुछ घटनाओं (प्रसंगों) तथा व्यक्तियों के कलापूर्ण रेखा-चित्र अंकित किये हैं।

प्रसंग वर्णन

कृष्ण का मृत्तिका भक्षण :—कुछ गोप बालक यशोदा से कृष्ण के मृत्तिका भक्षण की बात कहते हैं। इसपर यशोदा उनको डाँटती है। श्रीकृष्ण के खुले मुँह में जब वह ब्रह्मांड का दर्शन करती है तब आश्चर्यचकित हो जाती है।[1]

इसके अतिरिक्त "तीर्थयात्रा' के दिनों में नामदेव का अपनी भक्ति के जोरपर सूखे कुएँ में से पानी निकालना, ज्ञानेश्वर की समाधि, नामदेव का भक्ति गर्व परिहार आदि प्रसंगों का नामदेव ने कलापूर्ण अंकन किया है।

व्यक्ति चित्र

नामदेव द्वारा धनी-मानी, सगे-सम्बन्धी, धर्मभ्रष्ट, ब्राह्मण, ढोंगी साधु, संत सज्जन आदि के अंकित चित्र बड़े ही मनोज्ञ हैं।

बगला भगतों की आलोचना करते हुए नामदेव कहते हैं कि 'नारायण से इनका मन नहीं लगता। इनसे संयम का पालन नहीं होता। तालाब में प्रवेश कर शरीर को स्वच्छ करते है पर इनका अंतःकरण अशुद्ध ही रहता है।"[2]

आडंबर का भंडा फोड़ करते हैं कि 'वह गुणसागर गोपाल छल-कपट से नहीं मिलता। गोपीचंद का टीका लगाना तथा गले में माला पहनाना दिखावा मात्र है।'

---

१. मुलें सांगताती। माती खातो गे श्रीपती ॥
लाकुड घेऊनि हातांत। माती खातो का पुसत ॥
भावा भुललासे खरा। कांपतसे थरथरा ॥
मुख दिधे उघडोनि। दावी तेव्हां चक्रपाणी ॥
ब्रह्मांडे देखिलों। नामा म्हणे वेडी झाली ॥

—अभंग ६६।

२. नाराइन सू मन न रंजै। संजम चूकै अरु व्रत पडै।
जलहर पैसि पपाले काया। अंतरि मैल न लउ उतरै ॥

—सं० ना० हिं० प०, पद १०३।

सच्ची भक्ति नहीं।'[1]

मराठी रचनाओं में ऐसे व्यक्तियों के चित्र पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। वेषधारी साधु छापा तिलक लगाते हैं और भोले भाले जनों को लूटते हैं।[2] वे लोगों से कहते हैं कि वे हरि के भक्त हैं पर उनका मन घर-गृहस्थी में फँसा रहता है, उससे विरक्त नहीं होता।[3]

नामदेव द्वारा अंकित मुक्ताबाई का चित्र बहुत सरस बन पड़ा है।[4] नामदेव द्वारा वर्णित प्रसंग तथा उनके बनाये रेखा चित्र उनकी सरल भाषा शैली के प्रमाण हैं।

नामदेव की छंदोरचना

मराठी रचनाओं में प्रयुक्त छंद—प्राचीन मराठी का सारा साहित्य आद्य कवि मुकुंदराज से लेकर समर्थ रामदास तक पद्यात्मक ही है। 'ओवी' तथा 'अभंग' इन संत कवियों के प्रिय छंद रहे हैं। लयबद्धता तथा गान सुलभता मराठी के अभंग की विशेषताएँ हैं। इस पर ज्ञानदेव के उत्कृष्ट अभंगों का आदर्श नामदेव के सामने था ही। अतः रचना की सुकरता की दृष्टि से कहिये अथवा अनुकरणशीलता की दृष्टि से कहिये, नामदेव ने अभंग ही को अपनाया।

अभंग की लंबाई की कोई सीमा नहीं होती। इसीलिए यह अभंग (अटूट) कहलाता है। दो से लेकर दो सौ 'चौक' भी एक अभंग में आ सकते हैं। एक अभंग के चार चरण होते हैं और साढ़े तीन चरणों का एक 'चौक' होता है। इन चरणों में अक्षर मात्रा और गण का कोई नियम लागू नहीं होता।

छंद दोष

नामदेव की रचनाओं में यत्र तत्र छंद दोष पाये जाते हैं। वे स्वीकार करते हैं

---

१ कपट मैं न मिलै गोविंद गुन सागर गोपाल।
गोपी चंदन तिलक बनावै। कंठहु लावै माल॥ टेक॥
—स० ना० हि० प०, पद १४२।

२ टिळे टोपी माळा दावी। भोळया भाविकासी गोवी॥
—अभंग १८३७।

३ लोकांपुढे सांगे आम्ही हरिभक्त। न होय विरक्त स्थिति ज्याची।
—सकल संत गाथा, अभंग १८३६।

४ लहानशी मुक्ताई जैसी सणकाडी।

कि 'मैं बहुश्रुत तथा ज्ञानशील नहीं हूँ।'[1] अभङ्ग की रचना किस प्रकार की जाय यह भी मैं नहीं जानता।'[2] कारण यह है कि उन्होंने छंदशास्त्र का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि काव्य के लिए तीव्र अनुभूति और चिंतन की गहनता अपेक्षित है न कि छंद, अलंकार, शब्द शक्ति और अन्य काव्य गुण।

हिंदी रचनाओं में प्रयुक्त छंद

नामदेव की हिंदी रचनाओं में कुछ पद हैं और कुछ साखियाँ ये छोटे-छोटे छंद हैं। श्री गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत नामदेव के ६१ पदों के साथ रागों के नाम दिये गये हैं। पूना विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'संत नामदेव की हिंदी पदावली' में कुछ ही पदों पर रागों के नाम दिये गये हैं, शेष पर नहीं। इन पदों में गउडी, चेती, आसा, गूजरी, सोरठि, धनासरी, टोडी, तिलंगु, बिलावलु, रामकली, मारू, भैरउ, बसंतु, सारंग, मलार, कानड़ा, प्रभाती आदि राग-रागनियाँ प्रयुक्त हैं। इस संदर्भ में डॉ० रामचंद्र मिश्र का मत द्रष्टव्य है।[3]

शैली

जैसे भाषा भावों और विचारों का वाहन है वैसे ही शैली का भी। क्योंकि शैली भाषा के रूप में ही हमारे सम्मुख आती है। शैलीकार का एकमेव लक्ष्य होता है अपने श्रोता, पाठक या दर्शक को प्रभावित करना। इस उद्दिष्ट की पूर्ति के लिए शैलीकार का सारा अवधान अपनी शैली के शृंगार पर केन्द्रीभूत होता है।

नामदेव का काव्य उत्स्फूर्त है, उसमें अनुभूति और अभिव्यक्ति में विलक्षण एकरूपता है। उन्होंने अपने एक अभंग[4] में सांग रूपक के द्वारा पाडुरंग की षोडशोपचार पूजा का चित्र अंकित किया है। उनकी अनुभूतियाँ अलंकृत होकर ही अभिव्यक्त होती

---

१. नव्हे बहुश्रुत, नव्हे ज्ञानशील। —वही, अभंग ६२४।

२. अभंगाची कला नाहीं मी नेणत।
—श्री नामदेव गाथा, अभंग, १३८२।

३. नामदेव के पदों में गृहीत राग-रागिनियाँ शास्त्रीय ध्रुपद शैली में गेय रही है जिनकी दीर्घ परम्परा भारतीय संगीत शास्त्रों में विद्यमान है। इन रागों के अपने रूप हैं, अपने गान-काल हैं और अपने रस है।
—हिंदी पद परम्परा और तुलसीदास, पृ० ६५-६६।

४. देह देव्हारा पार हृदय संपुष्ट। मधी कृष्ण मूर्त बसविली।
प्रेमाचे पाण्यानें प्रक्षालीन तुज। आत्मस्वरूप नि पांडुरंगा।।
—अभंग, १८०२।

है। उनकी शैली मानो उनके भावों तथा विचारों की भाषागत अभिव्यक्ति ही है।[१]

आचार्य कुन्तल ने शैली का सम्बन्ध व्यक्ति के स्वभाव से स्थापित किया है। वे कहते हैं कि शक्तिमान और शक्ति का भेद नहीं किया जा सकता। व्यक्ति के सुकुमार आदि स्वभाव के अनुकूल ही उसकी शैली होती है।[२]

संत नामदेव एक सरल हृदय के व्यक्ति थे। उनकी भावुकता का परिचय उनकी रचनाओं में सर्वत्र मिलता है। परमात्मा ही एक मात्र सब कुछ है, वही सब के बाहर तथा भीतर सब कहीं व्याप्त है और उसी के प्रति एकनिष्ठ होकर रहना चाहिए। इसको वे अपना धर्म मानते हैं। इसी प्रकार के भावों से उनका हृदय सदा भरा रहता है और इसी कारण वे सारे जगत् को एक उदार-चेता प्रेमी की दृष्टि से देखा करते हैं।

नामदेव ने अपना काव्य कलात्मक प्रदर्शन के लिए नहीं लिखा। उनकी रचना का प्रधान उद्देश्य 'स्वान्त. सुखाय' के साथ ही साथ परोपकार भी था। उसमें लोक-मंगल पर ही अधिक बल दृग्गोचर होता है। संसार के माया-जाल में फँसे हुए अज्ञ जनों पर उनको तरस आता था। उनके उद्धार का सकल्प वे इस प्रकार घोषित करते हैं— 'कीर्तन में भक्ति का उपदेश करते हुए आनन्द विभोर होकर मैं नाचूँगा और भक्ति के ज्ञान का दीप इस प्रकार जलाऊँगा कि पाप रूपी अंधकार नष्ट हो जाये।'[३]

मुझे पते की बात विदित हुई। अब मैं भागवत धर्म का प्रचार करूँगा।'[४]

'मैं दु ख से भरा हुआ यह ससार सुख-मय करूँगा। मैं संतों के साथ कीर्तन में अपने उपदेश-परक अभंगों का गान करते समय नाचूँगा।'[५]

---

१. All style is gesture, the gesture of the mind and of the soul.
—Style by Walter Raleigh p. 127.

२. कवि स्वभाव भेद निबंधनत्वेन काव्य प्रस्थानभेद गाहते। वक्रोक्तिजीवित, प्रथमोन्मेष।

३. नाचूँ कीर्तनाचे रंगी। ज्ञानदीप लावूँ जगी।
—सकल संत गाथा, अभंग १३९२।

४. आम्हा सापडले वर्म। करूँ भागवत धर्म।
—सकल सत गाथा, अभंग १४२६।

५. अवघाचि ससार सुखाचा करीन। जरी माला दु खाचा दुर्घट हा।
संत समागमी नाचेन रंगणी। तेणे जाईल निघोनी त्रिविध ताप।
—सकल सत गाथा, अभङ्ग १५०१।

संसारी जनों को चेतावनी

नामदेव ने अपना काव्य कलात्मक प्रदर्शन के लिए नहीं लिखा। उनका प्रमुख उद्देश्य था सामाजिक प्रबोधन अथवा जागरण। लोक मंगल की भावना ही इसकी प्रेरक रही है।

किसी वस्तु अथवा व्यक्ति से सचेत अथवा सतर्क रहने का आदेश या उपदेश चेतावनी है। *नामदेव के काव्य में ऐसी चेतावनियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। नामदेव* अपनी अनुभूति के आधार पर कहते हैं—'हे जीव! तू जाग, तू *अपना रास्ता भूल गया* है। हे अज्ञानी! यह औघट घाट है और तुझे दूर जाना है।'[1]

'हे मेरे मन! तू गोविंद के चरणों से लौ लगा। हरि को छोड़ अन्यत्र न जा। बलिराजा के समान श्रेष्ठ राजा भी चार युग तक न जिये। 'मेरा मेरा' कहनेवाले अंत में संसार को छोड़कर चले गये।'[2]

'हे नर! मनुष्य जन्म पाकर भी तू सचेत नहीं होता। काल का पंजा सदैव तेरे सिर पर है!'[3]

'नामस्मरण कर मैं भव सागर पार हुआ। हरिभजन के बिना तू आवागौन के फेर से मुक्त न होगा।'[4]

उनकी कथन शैली की विशेषता उनके छल-हीन हृदय, निर्द्वंद्व जीवन एवं आध्यात्मिक उल्लास द्वारा अनुप्राणित है और वह बिना सुझाये ही विदित हो जाती है। ईश्वरोन्मुख होने के लिए नामदेव ने कतिपय प्रेरणाएँ दी हैं जिनके द्वारा कोई भी व्यक्ति भगवद्भक्त हो सकता है।

---

१. जागि रे जीव कहा भुलाना। आगे पीछे जाना ही जाना॥
भणत नामदेव चेति अयाना। औघट घाट अरु दूरि पयोना॥
—पद १२२।

२. मन मंझा तू गोविंद चरन चित लाइ रे।
हरि तजि अनत न जाइ रे॥ टेक॥
—१०५।

३. मनिषा जनम आई नहिं चेता। अंधे पसु गँवारा।
तेरे सिर काल सदा सर साधै। नामदेव करत पुकारा रे नर॥
—पद ६२।

४. नामदेव उतर्यो पार। चेतहु रे चेतनहार।
हरि की भगति बिन। औतरोगे बारंबार॥
—पद ६८।

नामदेव का नाम महाराष्ट्र के विख्यात 'संत पंचायत' अर्थात् पाँच प्रमुख संतों के समुदाय में लिया जाता है। उत्तर भारत के सबसे प्रसिद्ध संत कबीर ने उनके प्रति श्रद्धा के भाव प्रदर्शित करते हुए कहा है—'जिस प्रकार पहले युगों में भक्त उद्धव, अक्रूर, हनुमान, शुकदेव तथा शंकर हुए थे उसी प्रकार कलि काल में नामदेव तथा जयदेव का आविर्भाव हुआ था।'[1]

संत नामदेव में संत ज्ञानेश्वर जैसा काव्यरचना का भाव जागृत नहीं था। वे विद्वान नहीं थे। उनका साहित्यशास्त्र का अध्ययन भी नहीं था। परन्तु उनका हृदय स्वाभाविकता से कवि का था। वे अतीव संवेदनक्षम थे। दूसरों के प्रति उनके हृदय में तड़पन, दया और प्रेम था। अतः उनके अभंगों की आत्मा भावना है न कि कल्पना। भावनोद्भुत काव्य रस प्रधान होता है न कि अलंकृत। 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार यह श्रेष्ठ काव्य है। यह पूर्णतया कोमल है। सुकुमारता इसकी प्रकृति है। यह भक्ति, शांत और करुण रस से ओतप्रोत है। यह उचित शब्दालंकार तथा अर्थालंकार को धारण करता है परन्तु कृत्रिम अलंकारों की अपेक्षा स्वाभाविक सुकुमारता तथा मधुरता की ओर वह अधिक झुका है। संत नामदेव के फुटकर अभङ्ग उनके हृदय में न समा सकने वाले भक्ति-भाव और प्रेम-रस से लबालब है। वे तो भक्ति रस की वर्षा से सारे महाराष्ट्र को आप्लावित करने को आतुर थे। इसीलिए संत ज्ञानेश्वर ने कहा था कि 'नामदेव का सरल कथन भी कवित्व है और उसका रस अद्भुत तथा निरुपम है।'[2]

अन्य एक स्थान पर वे कहते है—'हे नामदेव ! तुम्हारे रस भरे वचन सागर से भी अथाह हैं। उनके अनुशीलन से नित नया आनंद प्राप्त होता है।'[3] इससे अधिक क्या प्रशंसा हो सकती है ?

पिछली शताब्दी के मार्मिक समीक्षक स्व० प्रो० वा० ब० पटवर्धन ने नामदेव

---

१. जागे सुक उद्धव अक्रूर हणवंत जागे लै लंगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जैदेव॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३०२।

२. परि नामयाचे बोलणें नव्हे हे कवित्व। हा रस अद्भुत निरोपमु॥

—सकल संत गाथा, अभङ्ग ६२७।

३. सिंधूनि सखोल सरस तुझे बोल। आनंदाची ओल नित्य नवी॥

—सकल संत गाथा, अभंग ६२८।

की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[1]

संत नामदेव का असाधारण कर्तृत्व

संत नामदेव एक महान भगवद् भक्त हुए। महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय के वे प्रभावशाली प्रवर्तक थे। इस सप्रदाय के संतों के वे आद्य चरित्रकार हैं। 'नाम वेद' के प्रमुख प्रचारक हैं। प्रेमाभक्ति के प्रणेता हैं। साम्प्रदायिकों के श्रद्धा स्थान हैं। कीर्तन प्रथा के तो एक प्रकार से वे अध्वर्यु ही हैं।

१३ वीं शताब्दी में उत्तरी भारत पर मुसलमानों का आतंक छाया हुआ था। ऐसी परिस्थिति में नामदेव ने भागवत धर्म का झंडा उत्तर भारत में फहराया। वे निर्गुण मत के प्रथम प्रचारक तथा हिंदी गीत शैली के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं। उन्होंने अपने उपदेशों से कबीर तथा अन्य परवर्ती संतों का मार्ग प्रशस्त किया। इस संदर्भ में आचार्य विनयमोहन शर्मा[2] तथा प० परशुराम चतुर्वेदी[3] के मन्तव्य उल्लेख-नीय हैं।

---

१. 'नामदेव की कविता में हमें उस प्रकाश के रोमांच का अनुभव होता है जो समुद्र या धरती पर कभी नहीं उतरा। उसमें हमें उस स्वप्न के दर्शन होते हैं जो इस मिट्टी के धरती पर कभी नहीं झलका, उस प्रेम की प्रतीति होती है जिसने वासना को कभी उत्तेजित नहीं किया। उसमें तो करुणा, विश्वास और भक्ति का रोमांच है तथा मानव आत्मा का परमात्म शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण है। उसमें हम भक्ति अथवा आध्यात्मिक प्रेम का रोमांच, हृदय का हृदय के प्रति संगीतमय निवेदन और उद्वेलित भावातुर हृदय के उद्गार पाते हैं।'

—विल्सन फिलालॉजिकल व्याख्यान माला।

२. 'उनमें उत्तरी भारत की संत परम्परा का पूर्व आभास मिलता है। उनके परवर्ती संतों पर निश्चय ही उनका प्रभाव पड़ा है जिसे उन्होंने सर्व भाव से स्वीकार किया है। ऐसी दशा में उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्तक मानने में हमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। संभवतः हिंदी जगत् तक उनके सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी न पहुँच सकने के कारण उन्हें वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका जिसके वे अधिकारी हैं।'

—हिंदी को मराठी संतों की देन, पृ० १२६।

३. 'किन्तु इतना हम निःसंकोच भाव के साथ कह सकते हैं कि उत्तरी भारत के संत भी नामदेव के बहुत ऋणी हैं और उनके लिए (तथा महाराष्ट्र के संतों के लिए भी) सन्त नामदेव ने एक पथ प्रदर्शक का काम किया है।'

—उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० १०७।

उन दिनों प्रचार के इतने साधन उपलब्ध न होते हुए भी नामदेव ने जो कार्य किया उसे देखकर हम आश्चर्यचकित होते हैं। उन्होंने यह सब कुछ भक्ति के प्रचार के लिए किया, इसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं था। वे परमात्मा से यही प्रार्थना करते हैं कि संत सदा सुखी हों, हरि के भक्तों को दीर्घायु प्राप्त हो तथा जिनकी जिह्वा पर पाडुरंग का नाम है, उनका कल्याण हो।

नामदेव की लोकप्रियता का प्रमाण इसीसे मिलता है कि निम्नलिखित परवर्ती संत कवियों ने आदर के साथ उनका स्मरण किया है—

(१) गुरु परसादी जैदेव नामा। भगति के प्रेम इन्हहि है जाना।

—कबीर

(२) नामा कबीर सु कौन पे सुन रास्ता बाँका।
भगति समानी सब धरति तजि कुल बाना का॥

—रज्जबजी

(३) जैसे नाम कबीरजी यों साधु कहाया।
आदि अंत लौं आइके राम राम समाया॥

—सुन्दरदास

(४) नामदेव कबीर जुलाहो जन रैदास तिरे।
दादू बेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरे॥

—दादू दयाल

(५) ध्रू प्रहलाद, कबीर, नामदेव पार्षद कोई न राख्या।
बैठि इबंत नाव निज सीमा वेद भागोत यूँ भाख्या।

—नाभाजी

(६) नामदेव, कबीर, तिलोचन सधना सैनु तरे।
कहि रविदास सुनहु रे संतों, हरि जीउ ते सभै सरे।

—रैदास

'नामदेव की वाणी यद्यपि सीधी-सादी भाषा में है तथापि वह भक्ति रसमयी और अन्तर को भेदने वाली है। उसमें हम योग साधना की निर्मलता के साथ-साथ भक्ति की विह्वलता भी पाते हैं। हिन्दी के संत साहित्य को नामदेव महाराज की भाव पूर्ण वाणी पर गर्व है।'

—वियोगी हरि, संक्षिप्त सन्त सुधा सार, पृ० २३।

नामदेव की हिन्दी पदावली की भाषा की कुछ विशेषताएँ

भाषा के इतिहास में चौदहवीं शताब्दी में लिखित ब्रजभाषा की किसी अन्य

रचना का उल्लेख नहीं मिलता। यह बात अवश्य है कि इस काल की रचना में ब्रज-भाषा के अंकुर दिखाई पड़ने लगे थे। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नामदेव ने चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ही ब्रजभाषा में पदों की रचना की है। नामदेव के पदों से यह स्पष्ट है कि उनमें मराठी और खड़ी बोली के तत्त्व हैं किन्तु यह बिलकुल स्वाभाविक है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली पास-पास की भाषाएं थीं और इनका विकास भी साथ-साथ हो रहा था। सामान्य लोग दोनों भाषाओं के मिले जुले रूप का प्रयोग करते थे। सन्त नामदेव ने भी उसी में अपने पदों को रचा है। मराठी उनकी मातृभाषा थी, जिसके कई शब्द और रूप उनके हिंदी पदों में सहज ही आ गये हैं। नामदेव के समकालीन अन्य कवियों की भाषा उतनी विकसित ब्रजभाषा नहीं है जितनी नामदेव के पदों की। अन्य रचनाओं में अपभ्रंश के तत्त्व काफी मात्रा में विद्यमान हैं। अतः नामदेव को ब्रजभाषा का प्रथम कवि कहा जा सकता है।

अब हम नामदेव की हिन्दी पदावली की भाषा की निम्नलिखित विशेषताओं पर विचार करेंगे :—

वाक्य रचना

नामदेव की हिन्दी में अधिकांश संज्ञाएँ वाक्य के अन्य शब्दों से अपना सम्बन्ध बिना कारक-चिह्नों तथा परसर्गों के दिखाती हैं। जिन संज्ञाओं का कर्म के जैसा प्रयोग हुआ है वे बिना कारक चिह्नों के प्रयुक्त हुई हैं—

(१) पाखंड भगति राम नहिं रीझै। पद २१—पंक्ति ४ (करण कारक)

(२) दहूँ घोड़ा न चढ़ाइ हो कान्हा। पद ३६—पंक्ति ६ (अधिकरण कारक)

(३) जैसे कनकतुला चित राखिला। पद १६—पंक्ति १ (संबंध, अधिकरण)

(४) पावक दार जतन करि काढयो। पद ८२—पंक्ति ४ (अपादान कारक)

यद्यपि कुछ वाक्यों में कर्म अध्याहृत (Understood) होता है फिर भी संदर्भ से उसका अर्थ समझ में आ सकता है—

'अब मोरी छूटि परी।' ८-२

इस वाक्यांश में कर्म 'बंधन' अध्याहृत है।

कुछ संज्ञाओं के साथ गलत कारक-चिह्नों का प्रयोग किया गया है। जैसे—

(१) गुरु को सब्द वैकुंठ—निसरनी। (२९-३)

सम्बन्ध कारक के कारक चिह्न 'का' के स्थान पर यहाँ संप्रदान कारक के 'को' का प्रयोग किया गया है।

निम्नलिखित उदाहरण में इसके ठीक विपरीत कारक का प्रयोग हुआ है—

(२) भाव भगति नाना विधि कीन्हीं, फल का कौन करी। ८-३

यहाँ सम्बन्ध कारक के चिह्न 'का' का सम्प्रदान कारक के जैसा प्रयोग किया गया है।

सहायक क्रिया (Auxilary verb)

जहाँ सहायक क्रियाओं का प्रयोग आवश्यक था, वहाँ नहीं किया गया —

(१) अपना पयाना राम अपना पयाना। (११-१)

(२) तू अगाध बैकुठनाथा। (१२-१)

(३) बडो पतित पतितन में।

कुछ स्थानों पर विपरीत लिंग का प्रयोग मिलता है।

(१) महादेव उपदेसी गोरी। (८६-२)

(२) मेरी भरम नसाई हो।

पहले वाक्य में कर्ता महादेव पुल्लिंग है परन्तु क्रिया 'उपदेसी' स्त्रीलिंग में है।

दूसरे वाक्य में कर्ता 'भरम' (भ्रम) पुल्लिंग है परन्तु सार्वनामिक विशेषण 'मेरी' तथा क्रिया 'नसाई' स्त्रीलिंग में है।

कुछ स्थलों पर एक वचनी कर्ता के लिए बहुवचनी क्रिया का प्रयोग हुआ है। जैसे—

(१) 'तोऊ कहेंगे केवल रामा' १७-४

यहाँ कर्ता 'मै' एकवचन में है परन्तु क्रिया 'कहेंगे' बहुवचन में है।

(२) चंद सूर में उर धरि बाँधे। १११-६

यहाँ भी क्रिया 'बाँधे' बहुवचन में है जबकि कर्ता 'मै एकवचन में है।

शब्द-क्रम (Word Order)

संबंधित शब्द योग्य क्रम से नहीं रखे गये हैं—

(अ) कहीं कहीं विशेषण विशेष्य के बाद रखे गये हैं। जैसे

(१) 'संत प्रवेणी (प्रवीण संत)

(५) 'प्रिथी सकल' (सकल पृथ्वी)

(ब) परस्पर संबंधित दो संज्ञाएँ पास पास रखने के बजाय एक दूसरे से दूर रखी गई है—

(१) जल सोचि करि जतन प्रवाले (६२-)

'प्रवाल' और 'जल' एक दूसरे से दूर रखे गये है। यद्यपि दोनों एक सामासिक शब्द हैं—प्रवाल जल'

(क) सामासिक पद के शब्द स्थानांतर कर रखे गये हैं। जैसे 'सलिल मोह' (६-२) 'मोह का सलील'।

शैली

कुछ स्थलों पर समानार्थी शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है—

(अ) 'आन देव फोकट बेकामा' (३०-८)

'फोकट' और 'बेकाम' समानार्थी शब्द है।

(ब) 'नामा कहे मेरे बंध न भाई।' (पद ५७-पंक्ति ८)

बंध (बंधु)—भाई, भाई-भाई

(क) घडी महूरति पल नाही टारूं। (३७-३)

घड़ी-क्षण, मुहूर्त-क्षण

(ड) अमृत सुधानिधि अंत न जाइला। (४५-५)

अमृत, सुधा-निधि-अमृत का खजाना

बल (emphasis) के लिए संबंधित शब्द के साथ 'ही' का प्रयोग किया गया है। जैसे—

(१) 'आपै पवन आप ही पाणी।' (११०-४)

(वह स्वयं पवन तथा पानी है।)

(२) 'घट ही भीतरि न्हाऊंगा। (६६-४)

(गुरु ने मेरे शरीर के भीतर मुझे अडसठ तीर्थ दिखाये उन्ही में मैं नहाऊँगा।)

कही-कहीं 'पुनि' का भी प्रयोग मिलता है—

'आपै पुरिष, नारि पुनि आपै।' (११०-५)

(वह स्वयं पुरुष तथा स्त्री है।)

नामदेव की हिन्दी के कुछ विशिष्ट प्रयोग

नामदेव की हिन्दी में कुछ प्रयोग ऐसे है जो रूप और अर्थ दोनो में विशिष्ट है। कई शब्दो का ऐसे अर्थों मे प्रयोग हुआ है जिनमे वे सामान्यतः प्रयुक्त नही होते। इसी प्रकार कुछ प्रयोग व्याकरण और रचना की दृष्टि से विशिष्ट है।

शब्द संग्रह : संज्ञाएँ

अधिकाई (२-३) विशेषता
कविलास (६५-३) कैलाश
करवा (६३-१) शरीर
कापट (५२-५) कपट
कालकुप्ट (२७-३) कालकूट विष
पयाना (११-१) लक्ष्य
पालिक (१४१-४) पालना
पूठि (६८-५) पीठ
पैज (१३१-६) दरवाजा
बीठो (३६-१) विट्ठल

गोठि (२५ २) मित्रता, (गोष्ठि) भजन (६ २) शरीर
जलहरि (१०३ ६) जलघर, तालाब मनिया (१२ ५) मनुष्य
तिरी (१२० ७) नाव माषण (५६ ३) दूध
नाठा (१५-३) गाँठ डिंभ (४३ ६) बालक
रजबल (११-४) राज्य बल रैनी (३६ १) रहनी
साइर (४६-४) सागर

क्रियाएँ

थकता (६३ ६) रहते हुए लाधो (८८ १) प्राप्त करना
चोषता (६०-३) देखना बूठा (१०१-२) डूबना
याया (१०१-३) जाना पवनी (१३ ३) बिताना
बले (१०७ ६) जलना बेने व्यवहार करना

विशेषण

वरतणी आज्ञाकारी सोवनी (१४० ७) स्वर्णिम
एकल (६-२) एक भगरा (२३-४) पागल
वृतम (२०-३) कृत्रिम सरजीव (४७-३) सजीव
पेटाबलू (२४-४) पेटू

क्रिया विशेषण

अनत्र (८६-१) अन्यत्र पिछोकडि (४७ ४) पीछे
परहा (१२७ ५) दूर

विशिष्ट व्याकरणिक रूपों का प्रयोग

नामदेव की हिंदी में कुछ विशिष्ट व्याकरणिक रूपों का प्रयोग भी मिलता है। कई हिंदी मूल शब्दों में मराठी का प्रत्यय जोड़ा गया है।

मराठी का 'ला' प्रत्यय भूतकालीन क्रिया का प्रत्यय है। किन्तु नामदेव की हिंदी में इसे 'लै' बनाकर जोड़ा गया है। उदाहरणार्थ—

आनिलै (१६-२) लाना भराइलै (६१-२) भरना
गूँथिलै (६१-६) गूँथना लागिलै (५६ २) अनुभव करना
जोइलै (६१-८) तैयार करना मेल्हिलै (५६ ४) रखना
मूँदिलै (६७ ५) मूँदना चोषिलै (६७ ५) देखना

कुछ स्थानो पर तो भूतकाल को प्रकट करने के लिए हिंदी और मराठी दोनों प्रत्यय एक साथ लगाये गये हैं। जैसे—

आईला (३१-१) (आई + ला) आया या आयी
कटीला (४७-२) (काटी + ला) काटा या काटी
समाईला (३१-५) (समाई + ला) समाया या समायी
लाईला (२३-१) (लाई + ला) लाया या लायी
पाईला (३१-१) (पाई + ला) पाया या पायी

मराठी का 'ला' प्रत्यय जो भूतकाल का प्रत्यय है नामदेव की हिंदी में भविष्यत् काल के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—

(१) जा दिन भगता आईला। (३१-१) आईला—आयेगा।
(२) परहरि धंधाकार सवेला।
तेरी विला राम करैला ॥ (३३-२) करैला—करेगा।

विशिष्ट पद रचना

नामदेव की हिंदी में कुछ विशिष्ट पद-रचनाएँ (word formations) मिलती है। जैसे—

(अ) अनंत अमर फल देली। (६७-८)

हिंदी की 'देना' क्रिया का रूप दिया है। मराठी की 'देणे' क्रिया का भूतकाल का रूप 'दिला' है परन्तु नामदेव 'देली' का प्रयोग करते है जो न हिंदी का है न मराठी का।

(आ) 'करीया' (५४-४) करना
'कथिया' (७६-१) कहना
उधरीया (५४-४) उद्धार करना

प्राचीन हिंदी पद्य में भूतकाल का प्रत्यय 'आ' अथवा 'या' पाया जाता है परंतु यहाँ 'इया' का प्रयोग हुआ है।

संयुक्त क्रिया का प्रयोग

नामदेव की भाषा में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग बहुत अधिक संख्या में हुआ है। इनमें मुख्य क्रिया पूर्वकालिक क्रिया के रूप में या कृदन्त के रूप में है। जिन संयुक्त क्रियाओं में पूर्व कालिक क्रिया मुख्य क्रिया या क्रियार्थक संज्ञा है इसमें पूर्वकालिक क्रिया में कोई परिवर्तन नही होता। वचन, लिंग और काल का निर्देश गौण क्रिया द्वारा होता है—

(१) पूर्वकालिक क्रिया मुख्य क्रिया है—
फिरि आवै, समझि परी, करि आई
उतरि गैला, मिलि रहिया, करि जानौ।

(२) क्रियार्थक संज्ञा मुख्य क्रिया है—
खान लागो, सोवन लागा, मारन लागो। ऐसे रूप केवल 'लगना' गौण क्रिया के साथ ही मिलते हैं।

(३) कृदन्तीय रूप मुख्य क्रिया है
घूमत आया, आवता देखी, तरयौ जाई, लहर्या जाई।

नामदेव की हिंदी पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

नामदेव की हिंदी अन्य भाषाओं जैसे मराठी, गुजराती, पंजाबी, अरबी तथा फारसी से प्रभावित है। यह उनकी घुमक्कड़ी वृत्ति का ही परिणाम है।

मराठी उनकी मातृभाषा होने के कारण उसका प्रभाव उपरिलिखित अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक है। नामदेव की शब्द-संपत्ति तथा रचना विधान मराठी से प्रभावित है।

संबंध कारक के कारक-चिन्हों तथा सर्वनामों के प्रयोग में गुजराती का प्रभाव देखा जा सकता है।

पंजाबी के प्रभाव के केवल दो ही उदाहरण मिलते हैं।

अरबी तथा फारसी का प्रभाव नामदेव के केवल शब्दभण्डार पर देखा जा सकता है। रचना विधान पर इन दो भाषाओं का कोई प्रभाव नहीं।

मराठी का प्रभाव

(अ) मराठी के कारक चिह्न (विभक्ति प्रत्यय)—हिंदी की संज्ञाओं के साथ मराठी के कारक चिह्न जोड़ दिये गये हैं—

संप्रदान कारक

सरनिला (१३२-४)—शरण में

संबंध कारक

नामदेव चा (३४-६)—नामदेव का
रामची भगति (२१-१)—राम की भक्ति

अधिकरण कारक

अंतरि (१०२-३)—हृदय में
घरि (२६-८)—घर में
जलि (१०१-२) जल मे
मुखि (६२-२)—मुख मे
हाथि (५२-४) हाथ में

(ब) भूतकालीन क्रियाओ पर मराठी का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। मराठी का भूतकालीन क्रिया का 'ला' प्रत्यय हिंदी की क्रिया को जोड़ दिया गया है—

अघाइला (४५-६) अघाना—तृप्त होना
आईला (३१-१) आना
उगिला (४६-६) उगना
गाइला (४५-१) गाना
चालिला (१६-६) जाना
छूटिला (५६-३) छूट जाना
जागीला (३१-२) जगाना
पौढिला (१६-८) लेटना

(क) पुरुष वाचक सर्वनामो पर भी मराठी का प्रभाव है। कुछ उदाहरण—
हमचो (६१-२) हमारी
तुमची (६०-५) तुम्हारी
मुझा (५६-१०) मेरा
तुझा (५६-१०) तेरा

शब्द संपत्ति

नामदेव के हिंदी पदो में मराठी के शब्द पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते है। कभी अपने मूल रूप में तो कभी अपभ्रष्ट रूप मे। नामदेव की हिंदी पदावली में प्रयुक्त कुछ मराठी शब्द यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) बिरदु (१५५-१) (<ब्रीद)
(२) मसीत (२०८-६) (<म. मशीद, अ. मसजिद)
(३) जादवराइआ (२१६-३) (<यादवराय)
(४) कापरू (२१७-७) (<कापड) (कपडा)
(५) सगलकी (२२२-५) (<सगलयांची) (सबकी)

(६) सबदु (१६२-२) (<शब्द)
(७) सरब (१६२-२) (<सर्व)
(८) विखु (२१७-५) (<विष)
(९) छीपा (१५१-५) (<शिपी (दर्जी))
(१०) जनु (२००-९) (<जणु (मानो, गोया)
(११) मंजारी (४३-४) (<मांजर—बिल्ली)
(१२) आंब (९२-२) (<आंबा, आम आम्र)
(१३) कातो (१८ २) (<कात्री = कैंची)
(१४) गोवलि (१२०-३) (<गवली = ग्वाला)
(१५) डाका (७२-२) (<डंका = डका)
(१६) डाग (८१-४) (डडा = डंडा)
(१७) तंदुल (६१-१२) (<तांदुल = चावल)
(१८) पोते (८१-६) (<पोता-बोरा a sack)
(१९) वैरागर (२७-२) (वैरागर = कान (खाण))
(२०) सुकडि (६१-४) (<सुगड़ = मिट्टी का छोटा बरतन)
(२१) सासुरवाड्यो (१४१-४) (सासुरवाडी -- श्वशुर का घर)

सहायक क्रियाएँ

होते (१०५-५) थे
हुता (८१-६) था, थे
होती (१४०-७) थी (स्त्रीलिंग)

अन्य क्रियाएँ

आवडी (८१-१) (आवडणें = भाना, पसंद आना।
उलगुं (३८-१) (वगलणें = हटाना, कम करना)
ओडो (४-३) (ओढणों = ढोना)
ओलखे (६४-६) (ओलखणें = पहचानना)
घडता (५८-६) (घडणें = गढ़ना)
पाई (९०-६) (पाजणें = पिलाना)
बिटाल्यो (६१-१३) (बिटालणें = अपवित्र करना)

विशेषण

ऐवडो (८१-१) (एवढी = इतनी)

कूडे (२६-१) (कूडा = खोटा)
मोठा (४६-१) (मोठा = बड़ा)
संबर (६५-५) (शंमर = सौ)
इकवीस (१२१-४) (एकवीस = इक्कीस)

क्रिया विशेषण

धाई (२२५-३) (धाई = जल्दबाजी)

कृदंत

ऊभी उभी (१०१-४) (उभी उभी = खड़े-खड़े)

गुजराती

नामदेव की हिंदी पर गुजराती का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

गुजराती के संबंध कारक के कारक-चिन्ह

अंधियारानो (११२-६) अंधेरे का
नामदेवनो (१६६-७) नामदेव का
नामदेव ना स्वामी (५१-१०) नामदेव का स्वामी
पदनो (११२-८) इस पद का

क्रियाएँ

जोइये (११२-६) (देखना द्वि० पु०)
जोवो (१३६-५) (देखना द्वि० पु०)

सर्वनाम

जेन्है (१३६-२) जिसका
तेन्है (११२-८) उनका
म्हारो (१३५-५) मेरी

परसर्ग

थाइ (१३६-५) से
नेहरो (१३६-५) गुजराती का पुराना रूप

पंजाबी

पंजाबी के केवल ये दो उदाहरण हैं—
मिलसी (१०१-१) 'मिलना' का भविष्यत् काल का रूप
मुनै (१०१ १) मुझे
अरबी और फारसी का प्रभाव
नामदेव की हिंदी में निम्नलिखित अरबी के शब्द मिलते हैं—
कलमा (६४-६) कल्मा = प्रार्थना
अलह (६४-१०) अल्ला-परमात्मा
रोजा (६४-६) रोजा = व्रत, उपवास
कूंत मसाहृति (२-८) तर्क वितर्क

फारसी के शब्द

आलम (१३१-३) विश्व
दुनी (१३१-३) दुनिया
अवदालव (६४-१) साधु, फकीर जैसा
इजार (६४-५) रस्सी, दोरी, नाड़ा
गुजार (६४-६) गुजारना = बीताना
ताज कुलह (६४-२) मुकुट और टोपी
निवाजी (६४-६) नमाज
पोस (६४-३) पोश = आवरण
मसीती (६४-६) मसजिद
मुलाना (६४-६) उपाध्याय
सहर (६४-८) शहर
सहनक (६४-४) थाली, प्लेट
बाँग (६४-६) बुलावा
खसम (७६-२) खसम = पति
साहिब (४१-१०) स्वामी
स्याही (७७-१) स्याही—

रूप रचना

रूप रचना की दृष्टि से नामदेव की हिंदी व्रजभाषा के रूपों से बहुत साम्य रखती है। सभी नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की तरह इसमें भी दो वचन हैं। यद्यपि

अधिकतर संज्ञाओं का रूप दोनों वचनों में एक ही है किंतु तिर्यक् रूपों में बहुवचन का निर्देश स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। जैसे—

सन्तहि, आँखिन, सवनहि आदि।

करण कारक के रूपों में भी इसी प्रकार का संकेत है। जैसे—

भुवंगहि, भँवरहि, नैनो, लोगनि, संतनि आदि।

कुछ स्थानों पर बहुवचन प्रकट करने के लिए अनेकता सूचक शब्दों का प्रयोग है। यथा—

अन्धा लोग, योगी जन आदि।

अ, उ, ऊ, ओ और औ से अंत होने वाली संज्ञाएँ प्रायः पुल्लिंग है तथा आ, इ, ई से अन्त होने वाली संज्ञाएँ स्त्रीलिंग। इसमें कुछ अपवाद भी हे।

पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए इ या ई प्रत्यय जोड़े गये है। जैसे—

चोटा—पु०	चीटी—स्त्री०
देव—पु०	देवी—स्त्री०
भृङ्ग—पु०	भृङ्गी—स्त्री०

कहीं-कहीं 'नी' प्रत्यय भी मिलता है—

जैसे नट—पु० नटनी—स्त्री०

सर्वनामों का प्रयोग

सर्वनामों के प्रयोग में विविधता है। नीचे के उदाहरणों से विभिन्न रूपों का परिचय मिलेगा—

व्यक्तिवाचक सर्वनाम :

प्रथम पुरुष, एकवचन—मैं, मोहि, मम, मेरे, मोरी, म्हारै, मुझ

प्रथम पुरुष, बहुवचन—हम, हमारे, हमारो, आमचो, आमचो

मध्यम पुरुष, एकवचन—तू, तूँ, तै, तोको, तोरा, तुम्ह, तुझ

मध्यम पुरुष, बहुवचन—तुम, तुम्हूर्थं, तुम्हारो, तुमचो

अन्य पुरुष, एक वचन—वो, सु, ताको, वाको, तामें

अन्य पुरुष, बहुवचन—ते, वै, तिनि, तेन्है, तिन

प्रश्न वाचक सर्वनाम—को, कौन, कौन, कोते, क्या, का, काय कहाँ।

परसर्गों का प्रयोग

चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की इस भाषा में परसर्ग का अत्यधिक प्रयोग प्रार-

भिक हिंदी की वियोगात्मक प्रवृत्ति का सूचक है। नामदेव की भाषा में निम्नलिखित परसर्ग प्रयुक्त हुए हैं—

अन्तरि, आगे, आगै, काज, कारणि, तनि, नाई, निकटि, पर, बिच, बिचि, बिन, बिना, भाँति, भीतरि, मधि, मधे, महि, मझि, मारे, माँहि, माही, रहित, रहिता, लगि, लागि, लाग्यो, स्वारय, सगै, सगि, सनमुष, सहित, सहिता, सा, सी, से, सोंह, सो, हो, हेत।

सयुक्त परसर्ग—

के अन्तरि, के आगे, के निकटि, के मारे,

की नाई, कै सगि।

ध्वनि

नामदेव की हिंदी पदावली की भाषा में नव्य भारतीय आर्य भाषा की सभी ध्वनियों का प्रयोग है, किन्तु अन्य भाषाओं की तरह 'ष' और 'ऋ' ध्वनि का प्रयोग केवल परपरागत है। उसका उच्चारण 'स' और 'रि' की तरह होता था। कुछ स्थानों पर 'ष' के स्थान पर 'स' और 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का प्रयोग भी मिलता है।

□□

षष्ठ अध्याय

नामदेव : हिन्दी निर्गुण काव्य धारा के प्रारंभकर्त्ता

हिंदी निर्गुण काव्य सम्बन्धी लेखन का परिचय
निर्गुण साहित्य सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रन्थ
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निर्गुण मत सम्बन्धी आलोचनात्मक लेख
संत मत के प्रारंभकर्त्ता के रूप मे नामदेव के प्रति संकेत
नामदेव के निर्गुण धारा के प्रारम्भ कर्ता न माने जाने के कारण
(क) नामदेव की रचनाओं का हिंदी में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होना
(ख) कबीर का प्रखर व्यक्तित्व और उनके विचारों का प्रभाव,
कबीर को क्रांतिकारी बनाने वाली परिस्थितियाँ,
नामदेव और कबीर की रचनाओ की तुलना
(१) कर्म और वैराग्य का समन्वय
(२) भेदभाव विहीनता
(३) ब्रह्म की निर्गुणता
(४) अनन्य प्रेम भावना
(५) सर्वात्मवाद और अद्वैत भावना
(६) निर्गुण भक्ति
(७) नाम साधना
(८) सेव्य सेवक भाव
सन्त नामदेव का निर्गुण भक्ति की ओर झुकाव
आचार्य परशुराम चतुर्वेदीजी की बताई हुई निर्गुण सन्तों की रचनाओ की विशेषताएँ

नामदेव : हिन्दी निर्गुण काव्य धारा के प्रारंभकर्त्ता

हिंदी निर्गुण काव्य सम्बन्धी लेखन का परिचय—हिंदी निर्गुण काव्य और उसके रचयिताओं के बारे में लगभग चार सौ वर्षों से कुछ न कुछ लिखा जाता रहा है। प्रारंभिक लेखन में 'भक्तमाल' और परिचर्या जैसी दूसरी रचनाओं का बहुत अधिक महत्व है। नाभादास कृत 'भक्तमाल' इस परंपरा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इसमें १६ वी शताब्दी तक के लगभग सभी संतों और भक्तों के संबंध में कहा गया है। यह बात अवश्य है कि इसमें संत साहित्य की समीक्षा न करके संतों के महत्व पर ही अधिक बल दिया गया है। 'भक्तमाल' में लगभग सभी निर्गुण संतों के कार्य और महत्त्व के संबंध में लिखा गया है। इसी तरह प्रियादास और रूपकला के भक्तमाल भी हैं।

भक्ति काल के संतों के महान् व्यक्तित्व और कल्याणकारी संदेशों से प्रभावित होकर उनके अनुयायियों ने इनके चरित्र और व्यक्तित्व को जनता के मार्ग दर्शन के लिए छन्दोबद्ध किया। संतो के जीवन-चरित्र समय-समय पर अनेक बार लिखे गये। ये जीवन-चरित्र 'परिचयी' के रूप में लिखे गये हैं। इनमें संतों के जीवन-चरित का परिचय बड़े विस्तृत रूप में दिया गया है। संत काव्य मे निम्नलिखित संतो की परिचयियाँ प्राप्त होती हैं—

(१) कबीरजी की परचै
(२) नामदेवजी की परचै
(३) पीपाजी की परिचई
(४) त्रिलोचनजी की परचई
(५) रैदासजी की परचई
(६) मलूकदासजी की परचई
(७) जगजीवन साहब की परचई
(८) चरनदासजी की परचई
(९) दादू जनम लीला परची
(१०) रंका बंका की परचई

इनमें अनन्तदास कृत नामदेव की परचियी महत्वपूर्ण है। प्राचीन संत कवियों के संबंध म नाभादास का 'भक्तमाल' बहुत प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। अनन्तदास की परचियी इससे भी पूर्व की है। भक्तमाल के रचनाकाल के संबंध में पूर्ण मतैक्य नहीं है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इसका रचनाकाल सं० १६८० वि० माना है।[1] अनन्तदास कृत नामदेव की परचियी का रचनाकाल सं० १६४५ वि० है।[2]

(१) निर्गुण साहित्य सम्बन्धी आलोचनात्मक ग्रंथ—निर्गुण साहित्य संबंधी *विभिन्न भाषाओं में समीक्षात्मक ग्रंथ उपलब्ध होते हैं जिनका आधार लेकर* कबीर की विचार धारा स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में भी एतद्-विषयक निबन्ध प्रकाशित होते रहे हैं। जिन भाषाओं में निर्गुण साहित्य के ग्रंथ प्राप्त होते है वे निम्नलिखित हैं—

(क) हिंदी में निर्गुण विचारधारा संबंधी आलोचनात्मक ग्रंथ
(ख) अंग्रेजी में निर्गुण विचार धारा संबंधी आलोचनात्मक ग्रंथ
(ग) उर्दू में निर्गुण विचार धारा संबंधी आलोचनात्मक ग्रंथ
(घ) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निर्गुण मत संबंधी आलोचनात्मक लेख।

(क) हिंदी आलोचनात्मक ग्रन्थ

अधिकतर ग्रन्थ कबीर पर लिखे गये हैं किन्तु उनके अन्तर्गत निर्गुण साहित्य का पूरा विवेचन मिलता है। कबीर के अध्ययन का श्रीगणेश सन् १९०० ई० के लगभग मानना होगा। हिंदी में ऐसी अनेक पुस्तकें प्राप्त होती हैं जिनमें किसी न किसी प्रकार कबीर तथा निर्गुण पंथ की चर्चा की गई है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का बहुत ही संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

(१) कबीर मंसूर—कबीर पर सबसे पहली पुस्तक 'कबीर मंसूर' ई. स. १९०२-३ में प्रकाशित हुई। साहित्य की दृष्टि से यह रचना साधारण कोटि की है किन्तु कबीर पर प्रथम पुस्तक होने के कारण इसका महत्व बढ़ जाता है।

इसके पश्चात् 'कबीर ज्ञान' (ई. स. १९०४) 'कबीर साहब का जीवन चरित्र' (ई. स १९०५) 'कबीर कसौटी' (ई. स. १९०६) आदि ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए।

(२) कबीर वचनावली—इसका संपादन पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

---

१. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृष्ठ १०६।
२. नामदेव की परचियी (हस्तलिखित ग्रन्थ) क्रमांक ३९८।
—जयकर ग्रन्थालय, पूना विश्वविद्यालय, पूना।

ने संवत् १९७३ में किया 'हरिऔध' जी ने कबीर की साहित्यिक, सैद्धांतिक और जीवन संबंधी बातों की चर्चा आलोचनात्मक ढंग से की है।

(३) कबीर ग्रंथावली—इसका संपादन डॉ० श्याम सुंदरदास ने संवत् १९८५ में किया। वे रामानंद को कबीर का मानस गुरु मानते हैं। उन्होंने कबीर के प्रेमतत्त्व पर सूफियों का प्रभाव स्वीकार किया है। साथ ही यह भी कहा है कि उनमें भारतीयता का पुट भी कम नहीं है। वे नामदेव के महत्व को स्वीकार करते हुए भी कबीर को निर्गुण धारा का प्रवर्तक मानते हैं।[1]

(४) 'मिश्र बन्धु 'विनोद'—मिश्र बंधुओं द्वारा लिखित 'मिश्र बंधु विनोद' सन् १९१३ ई० (सं० १९७०) में प्रकाशित हुआ जिसमें कबीर के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन किया गया है।

(५) हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल का यह अद्वितीय ग्रन्थ सन् १९२९(संवत् १९८६) में प्रकाशित हुआ। वे मानते हैं कि निर्गुण पथ के प्रवर्तक कबीर ही थे।[2]

(६) कबीर—सन् १९४१ (संवत् १९९८) में डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'कबीर' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। कबीर साहित्य पर पड़े हुए विभिन्न प्रभावों और कबीर के दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डालना ही उनका प्रमुख लक्ष्य रहा है।

(७) उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—संत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी का यह ग्रन्थ संवत् २००७ में प्रकाशित हुआ। इसमें लगभग २०० पृष्ठों में कबीर के जीवन, साहित्य, सिद्धांत और साधना के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से विचार किया गया है। संत मत एवं इससे संबंधित पंथों का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

(८) हिंदी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि—डॉ० गोविंद त्रिगुणायत का यह आगरा युनिवर्सिटी द्वारा डी० लिट० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध है। इसका प्रथम संस्करण सं० १९६१ ई० में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि का सांग,

---

१. 'कबीर इस निर्गुण भक्ति प्रवाह के प्रवर्तक हैं परंतु भक्त नामदेव इनसे भी पहले हो गये थे। ये पहले सगुणोपासक थे परंतु आगे चलकर इनका झुकाव निर्गुण भक्ति की ओर हो गया।'

—कबीर ग्रंथावली—भूमिका, पृष्ठ १५।

२. 'जहाँ तक पता चलता है निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीर ही थे।'

—हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७२।

व्यवस्थित, पाडित्यपूर्ण और अनुसंधानात्मक विवेचन किया गया है। अब तक निर्गुण विचार धारा और उसके मूल स्रोतों का अध्ययन उपेक्षित रहा। डॉ० त्रिगुणायत ने प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा इस अभाव की पूर्ति की है। इनके अनुसार निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक कबीर हैं।[१]

(९) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा का यह इतिहास सन् १९३८ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अपनी विशेष दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। डॉ० वर्मा ने कबीर को संत मत का प्रचारक माना है।[२]

(१०) हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। रचनाकाल सन् १९३६ ई०। इस पुस्तक की मूल प्रति डॉक्टरेट की उपाधि के निमित्त थीसिस के रूप में लिखी गई थी। इसमें निर्गुण कवियों का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक अपने ढंग की अकेली है। मेरे विचार से निर्गुण काव्य के सम्बन्ध में यह सर्वाधिक प्रामाणिक और अधिकारपूर्ण रचना है। इसके महत्व को समझकर ही आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सन् १९५० ई० (संवत् २००७) में मूल अंग्रेजी पुस्तक का हिंदी अनुवाद प्रकाशित कराया है।

यद्यपि इसके पूर्व भी हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों और दूसरी रचनाओं में निर्गुण साहित्य के बारे में चर्चा की गई है किन्तु जिस गम्भीरता और प्रामाणिकता के साथ डॉ० बड़थ्वाल ने निर्गुण साहित्य पर लिखा है उतनी गंभीरता और प्रामाणिकता अन्यत्र नहीं है। डॉ० बड़थ्वाल के पूर्व तक निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक संत कबीर माने जाते रहे। यद्यपि आज भी निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक रूप में कबीर को ही मान्यता है किन्तु सम्भवत: डॉ० बड़थ्वाल पहले विद्वान् थे जिन्होंने निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक के रूप में नामदेव की ओर संकेत किया है।[३] डॉ० बड़थ्वाल के बाद भी कबीर

---

१. निर्गुण काव्य धारा के प्रमुख प्रवर्तक संत कबीर माने जाते हैं।'
—हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० १४।

२. 'इस मत (संत मत) के प्रचारक कबीर थे। उन्होंने उसको एक विशिष्ट रूप दिया।'
— हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६१

३. 'निर्गुण संत विचार धारा को कबीर के द्वारा पूर्णता प्राप्त हुई।'
—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १४।

तथा निर्गुण काव्य धारा पर विचार करने वाले लोगों ने अधिकतर कबीर को ही उसका प्रवर्तक माना है।

कबीर सम्बन्धी उर्दू आलोचनात्मक ग्रन्थ

(१) 'सम्प्रदाय' (रचना काल सन् १६०६ ई०)
लेखक: प्रोफेसर बी० बी० रॉय।

(२) 'कबीर और उनकी तालीम' (रचना काल सन् १६१२ ई०)

(३) 'कबीर पंथ।'
इन दोनों ग्रन्थों के लेखक महर्षि शिवव्रतलाल हैं।

(४) 'कबीर साहब' (रचना काल ई० स० १६३०)
लेखक : मनोहरलाल जुत्शी।

ये सभी साधारण कोटि की पुस्तकें हैं। कबीर संबन्धी प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इनका महत्त्व अवश्य है।

कबीर सम्बन्धी अंग्रेजी आलोचनात्मक ग्रन्थ

(१) प्रॉफेट्स ऑफ इडिया—सन् १६०४ ई० में श्री मन्मथनाथ गुप्त की इस पुस्तक का उर्दू अनुवाद 'रहनुमायाने हिंद' बाबू नारायणप्रसाद वर्मा द्वारा अहमदी प्रेस अलीगढ़ से प्रकाशित कराया गया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद अंग्रेजी में कबीर सम्बन्धी जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं प्रायः सभी में 'प्रॉफेट्स ऑफ इंडिया' का किसी न किसी रूप में उपयोग अवश्य किया गया है।

(२) कबीर अण्ड कबीर पंथ—प्रकाशन काल सन् १६०७ ई०। इसके लेखक रेव्हरंड जी० जी० एच० वेस्कट है। इस पुस्तक से कबीर की विचार धारा के सम्बन्ध में बहुत ज्ञात नहीं होता।

(३) हंड्रेड पोएम्स ऑफ कबीर—कवीन्द्र रवीन्द्र ने सन् १६१५ में कबीर के चुने हुए १०० पदों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। इसकी भूमिका अंग्रेजी की प्रसिद्ध विदुषी ईव्हेलिन अंडरहिल ने लिखी है।

(४) 'वैष्णविज्म शैविज्म ॲण्ड अदर मायनर रिलीजस सिस्टिम्स'—डॉ० रा० गो० भांडारकर ने अपनी इस पुस्तक में वैष्णव धर्म, शैव धर्म आदि विभिन्न सम्प्रदायों के उदय और विकास का इतिहास प्रस्तुत किया है और प्रसंगवश रामानन्द तथा कबीर की भी चर्चा की है। कबीर के जन्म और उनके दार्शनिक विचारों का विशेष रूप से प्रतिपादन लेखक के मौलिक दृष्टिकोण का परिचायक है।

(५) कबीर अड हिज फॉलोअर्स—डॉ० एफ० ई० की द्वारा लिखित यह शोध प्रबन्ध ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी में डी० लिट० की थीसिस के रूप में प्रस्तुत किया गया था और स्वीकृत होकर सन् १९३१ में प्रकाशित हुआ। कबीर सम्बन्धी निर्णय में डॉ० की ने वेस्काट की अपेक्षा उदारता का परिचय दिया है। उन्होंने कबीर के दार्शनिक सिद्धांतों एवं विचारों पर अधिक प्रकाश डालकर कबीर के जीवन वृत्त और कबीर पथ का ही खोजपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है।

(६) दि निर्गुण स्कूल ऑफ हिंदी पोयट्री—रचना काल सन् १९३६ ई०। लेखक डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। इस पुस्तक का परिचय हिंदी के आलोचनात्मक ग्रन्थों में दिया जा चुका है।

पत्र-पत्रिकाएँ

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कबीर पर समय-समय पर विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे गये हैं। वे प्राय निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं—

(१) नागरी प्रचारिणी—इस पत्रिका के चौदहवें भाग में पंडित चंद्रबली पाण्डेय का 'कबीर का जीवन वृत्त' नामक निबन्ध छपा है और भाग १६ में डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने कबीर का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। इसी भाग में सूर्यकिरण पारीक का ,राजस्थानी हिंदी और कबीर' शीर्षक निबंध भी प्रकाशित हुआ है।

(२) हिन्दुस्तानी—'हिन्दुस्तानी' भाग दो (अप्रैल १९३२) में डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी का 'कबीर जी का समय' शीर्षक निबन्ध विशेष महत्त्वपूर्ण है जिसमें कबीर का समय निश्चित करने का प्रयास किया गया है।

इसी त्रैमासिक पत्रिका के भाग २३ अंक १ (जनवरी मार्च १९६२) में डॉ० राजनारायण मौर्य का 'हिन्दी साहित्य में संत मत के आदि प्रवर्तक . संत नामदेव' शीर्षक विद्वत्तापूर्ण लेख छपा है।

(३) सम्मेलन पत्रिका—'सम्मेलन पत्रिका' भाग ५३, संख्या—१, २ (पौष-ज्येष्ठ शक १८८६) में राममूर्ति त्रिपाठी का 'निर्गुण मत के प्रवर्तक नामदेव या कबीर' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। उनके अनुसार निर्गुण सम्प्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय कबीर को ही दिया जाना चाहिए।

(४) कल्याण—'कल्याण' के 'योगांक' में आचार्य क्षितिमोहन सेन का 'कबीर का योग वर्णन' नामक निबन्ध कबीर पर यौगिक प्रभाव सिद्ध करने की दिशा में एक स्तुत्य प्रयास है।

(५) परिषद् निबन्धावली—इस पत्रिका के भाग २ में डॉ० सोमनाथ गुप्त का

'कबीर का सिद्धांत और रहस्यवाद' नामक निबन्ध महत्त्वपूर्ण है।

(६) वीणा—'वीणा' के फरवरी सन् १९३८ के अंक में डॉ० बड़थ्वाल का 'कबीर के कुल का निर्णय' और जून सन् १९४३ के अंक मे डॉ० रामकुमार वर्मा का 'कबीर का शुद्ध पाठ' नामक निबन्ध पठनीय है।

इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'साहित्य सन्देश' 'हिन्दी अनुशीलन' आदि में भी कबीर सम्बन्धी अनेक लेख प्रकाशित होते रहे हैं।

सन्त मत के प्रारम्भकर्त्ता के रूप में नामदेव के प्रति संकेत

ऊपर के उद्धरणों में एक ओर जहाँ कबीर को संत मत के प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया गया है वहाँ उनमें शंकाएँ भी की गई है। उपरिलिखित विद्वानों ने, जिनके मत ऊपर उद्धृत किये गये है, कबीर को संत मत का प्रवर्तक मानते हुए भी नामदेव की ओर उसका प्रारम्भ कर्त्ता होने का संकेत किया है। फिर भी संत मत के प्रवर्तक के रूप में संत नामदेव को स्वीकार करने के लिए वे तैयार नहीं है।

निम्नलिखित विद्वानों की रचनाओं से इस बात का संकेत मिलता है कि नामदेव कबीर से पहले ही गये थे और उनकी हिंदी रचनाओं में निर्गुण पंथ की सारी प्रवृत्तियाँ पाई जाती है—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार नामदेव निर्गुण पंथ के प्रारम्भ कर्त्ता है।[1]

डॉ० मोहनसिंग का विचार है कि कबीर के विचार तथा वर्णन शैली दोनो पर नामदेव की छाप है।[2]

संत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते है कि नामदेव उत्तर भारत के संतों के पथ प्रदर्शक थे।[3]

---

१. 'नामदेव की रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'निर्गुण पन्थ' के लिए मार्ग निकालने वाले नाथ पंथ के जोगी और भक्त नामदेव थे।'

—हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२।

२. 'यदि ध्यानपूर्वक एवं सूक्ष्म रूप से नामदेव की रचनाओं का अध्ययन किया जाय तो ज्ञान पड़ेगा कि कबीर साहब ने अपनी भावना-दृष्टि एवं वर्णन शैली दोनों में ही नामदेव का स्पष्ट अनुसरण किया है।'

—कबीर अॅण्ड दी भक्ति मुव्हमेंट, पृ० ४८।

३. 'इतना हम निःसंकोच भाव के साथ कह सकते हैं कि उत्तरी भारत के संत भी नामदेव के ऋणी हैं और उनके लिए (तथा महाराष्ट्र के अनेक संतो के लिए भी) संत नामदेव ने एक पथ-प्रदर्शक का काम किया है।'

—उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० १०७।

आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार नामदेव उत्तरी भारत के संतो के प्रेरणा स्रोत रहे है। वे कबीर के पूर्व हुए। फिर भी हिंदी साहित्य में विद्वान् उनको निर्गुण मत का प्रवर्तक मानने में हिचकिचाते है।[१]

डॉ० पीतांबरदत्त बड्थ्वाल संत मत के प्रवर्तक होने का श्रेय कबीर को देते है किन्तु इसके साथ वे यह भी स्वीकार करते हैं कि उसका बीजारोपण पहले ही हो चुका था।[२]

डॉ०सरनामसिंह स्पष्ट शब्दो में कहते है कि कबीर को संत मत का प्रवर्तक मानना भूल है। उनको हम संत मत की उज्ज्वल मणि कह सकते है।[३]

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी इस संदर्भ में विभिन्न मत रखते हैं। उनके अनुसार केवल नामदेव और कबीर में पाई जानेवाली विशेषताओ के आधार पर नामदेव निर्गुण मत के प्रवर्तक नही हो सकते।[४]

नामदेव के निर्गुणधारा के प्रारम्भकर्त्ता न माने जाने के कारण

ऊपर यह कहा गया है कि कई विद्वानो ने नामदेव के निर्गुण धारा के प्रवर्तक

---

१. 'नामदेव कबीर से पूर्व हुए। उन्होने निर्गुण भक्ति का उत्तर में वर्षों प्रचार किया। फिर भी उन्हे इस पथ का प्रवर्तक मानने में विद्वानो को क्यो झिझक होती है ?'' —हिंदी को मराठी संतो की देन, पृष्ठ १२६।

२ 'निर्गुण संत विचार धारा को कबीर के द्वारा पूर्णता प्राप्त हुई परन्तु रूपाकार तो यह पहले से ही ग्रहण करने लग गई थी।' —हिंदी काव्य मे निर्गुण संप्रदाय, पृ० ६४।

३. 'कबीर पंथवादी थे यह समझना भ्रम होगा। किंतु यह सत्य है कि उन्हें नया पथ चलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई थी क्योंकि वे समन्वयवादी थे। निर्गुण पथ इसीलिए उनका नहीं समझ लेना चाहिए कि उसमें कोई नया चीज थी। ईंट और रोड़े सब पुराने थे। यदि कोई नवीनता थी तो उनसे भानुमती का कुनबा जोड़ने में थी।' —कबीर एक विवेचन, पृ० १०३।

४ 'निष्कर्ष यह कि निर्गुण धारा के कबीर जैसे संत से पूर्ववर्ती साधकों में भी यदि समान विशेषताएँ ढूँढ़ी जायें तो मिल सकती हैं। अत केवल समान विशेषताओं के आधार पर नामदेव को निर्गुण मत का प्रवर्तक सिद्ध नही किया जा सकता।' 'निर्गुण मत के प्रवर्तक नामदेव या कबीर' —सम्मेलन पत्रिका भाग ५३ संख्या १, २ पौष-ज्येष्ठ शक १८८६।

होने की बात कही है और स्पष्ट संकेत भी किया है। स्पष्ट संकेत पर भी नामदेव को निर्गुण धारा का प्रारम्भकर्त्ता क्यों नहीं माना गया ?

नामदेव ने उत्तर भारत की यात्रा कर सिद्धों और नाथों के निर्गुण मत मे भक्ति का समावेश किया और इस प्रकार कबीर का पथ प्रशस्त किया। उनके पदों के भावों की छाया कबीर में स्वभावतः मिलती है। स्वयं कबीर ने[1] उनका सादर स्मरण किया है। फिर भी किसी को यह कहने का साहस नहीं हुआ कि नामदेव ही निर्गुण काव्य-धारा के प्रवर्तक है। मेरे विचार से इसके दो कारण हो सकते हैं—

(१) नामदेव की रचना का हिंदी में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होना।

(२) कबीर का प्रखर व्यक्तित्व और उनके विचारों का प्रभाव।

श्री गुरु ग्रन्थ साहब और नामदेव

संत नामदेव ने मराठी में अभंगों की रचना की है जिनकी संख्या लगभग ढाई हजार है। मराठी के अतिरिक्त उन्होंने हिंदी में भी रचना की है। नामदेव की कुछ हिंदी रचनाएं 'श्री गुरु ग्रंथ साहब' में संग्रहीत हैं जिनकी संख्या ६१ है। इनके मराठी अभंगों का संग्रह 'नामदेव की गाथा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस गाथा में भी नामदेव के १०२ पद हिंदी के संग्रहीत है। इसके अतिरिक्त कई प्राचीन हस्तलिखित पोथियां है जिनमें नामदेव के हिंदी पद मिलते है। कुछ मिलाकर अब तक लगभग ढाई सौ पद प्राप्त हो चुके हैं।

यहाँ एक प्रश्न स्वभावतः उठता है कि सिक्खों के धार्मिक ग्रंथ में महाराष्ट्रीय संत नामदेव के हिंदी पदों का संग्रह क्यों किया गया ? 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' में नानक तथा अन्य सिख गुरुओं के अतिरिक्त कबीर, नामदेव, त्रिलोचन, वेणी, जैदेव, रैदास, शेख फरीद आदि की रचनाएं संग्रहीत है। नानक और कबीर के बाद संत नामदेव के ही पद अधिक हैं, जिससे यह प्रमाणित होता है कि संत नामदेव की हिंदी रचनाएँ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' के संकलन के समय प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी।

संतों की परम्परा में अन्य अनेक संत भी रहे होंगे किंतु 'श्री गुरु ग्रन्थ' के संकलनकर्त्ता ने इन्हीं संतों की रचनाएँ संकलित की। निश्चय ही ये संत उस समय तक जन मानस में स्थान बना चुके थे। संत नामदेव यद्यपि महाराष्ट्रीय संत थे और उनको

---

१. जागे सुक उद्धव अक्रूर हणवत जागे लै लंगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जैदेव॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३०२।

हिंदी रचनाएं भी पर्याप्त मात्रा में नहो थो फिर भी 'श्री गुरु ग्रन्थ' में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने को अधिकारो हुई।

यहाँ एक बात और विचारणीय है। जिस समय 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' का संकलन हुआ था, उसका स्वरूप साम्प्रदायिक नहो था। गुरु अर्जुनदेव ने तत्कालीन प्रसिद्ध सन्तो को रचनाओं का संग्रह किसी विशिष्ट साम्प्रदायिक आधार पर नहो किया था। यदि इसमें जरा भी साम्प्रदायिक भावना होती तो नानक तथा गुरुओं के अतिरिक्त अन्य संतो के पद संग्रहीत न होते।

'श्री गुरु ग्रंथ साहब' में प्राप्त होनेवाले संत नामदेव के ६१ पद उसमें किस स्रोत से आये यह अभी तक ज्ञात नहो हो सका है। वैसे नामदेव की हिंदी रचना सम्बन्धी 'श्री गुरु ग्रन्थ' ही सबसे प्राचीन प्रमाण है। अन्य हस्तलिखित ग्रंथ जो प्राप्त हुए हैं वे उसके बाद के ही हैं। यद्यपि लगभग ४०० वर्ष पूर्व संकलित होने के कारण इसका पाठ अधिक विश्वसनीय होना चाहिए था पर दुर्भाग्यवश ऐसा नहो है। नामदेव की रचना संबंधी जितनी मुद्रित और अमुद्रित प्रतियाँ अब तक प्राप्त हुई है उनमें 'श्री गुरु ग्रन्थ' का पाठ सबसे अधिक स्वच्छंद है। इस स्वच्छंदता पर आश्चर्य भी होता है क्योंकि धर्म ग्रंथ होने के कारण इसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहो किया गया। यदि शुद्ध अशुद्ध लिखे है तो अन्य प्रति मे भो वैसे ही लिखे गये। इस सदर्भ में डॉ० पारसनाथ तिवारी का मत दृष्टव्य है।[1] किन्तु 'गुरु ग्रन्थ' के कम से कम नामदेव के पदों का पाठ देखकर इसकी प्राचीनता पर संदेह होने लगता है। यह जाँच करना आवश्यक है कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' अपने संकलन के साथ ही स्थायित्व को प्राप्त हो गया था या बाद में उसको स्थायित्व मिला। इसमें कोई संदेह नहो कि इसका संकलन सिक्खो के पाँचवें गुरु अर्जुन सिंह ने किया है जिनका काल ई० स० १५६१-१६०६ माना जाता है।

परन्तु 'गुरु ग्रंथ साहब' को उसी समय स्थायित्व प्राप्त नहो हुआ। गुरु गोविंदसिंह (ई० स० १६७५-१७०८) ने आगे चलकर इसमें कुछ वृद्धि भी की और कुछ रचनाओं को हटा भो दिया। उन्होंने मूल 'ग्रन्थ साहब' का पूरा पाठ भाई मनीसिंह को बैठा कर लिखवाया था और उसमें गुरु तेग बहादुर की भी कुछ रचनाएँ सम्मिलित कर ली थी। इसी के साथ कुछ नये संतों की रचनाएँ भो सम्मिलित कर ली गई होंगी। गुरु गोविन्दसिंह जैसे प्रतिभाशाली और महत्वाकांक्षी कवि के लिए यह स्वाभाविक भी

---

१. 'गुरु ग्रन्थ साहब' का प्रकाशित संस्करण जो हमारे सामने है निरापद रूप से सं० १६६१ की मूल प्रति का प्रतिरूप माना जा सकता है।...वह किसी सम्पादक या लिपिकर्त्ता द्वारा न तो शोधा गया है और न परिवर्तित किया गया है।'

—कबीर ग्रंथावली, पृ० ७२।

कहा जा सकता है। अतः ऐसा लगता है कि ई० स० १७०० के आसपास या उसके पश्चात् ही 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' को स्थायित्व प्राप्त हुआ होगा। इतने लम्बे काल तक मौखिक परम्परा में रहने वाले इन पदों की पंक्तियों और पाठों में इतना परिवर्तन हो गया जो असम्भव नहीं।

'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' में प्राप्त होनेवाले ६१ पदों में से ४० पद मराठी गाथा में प्राप्त होते हैं। विभिन्न स्थानों से जो हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ मिली हैं उनमें भी 'गुरु ग्रन्थ' के केवल ३० पद प्राप्त होते हैं। 'गुरु ग्रंथ' में १६ पद ऐसे हैं जो कहीं भी नहीं मिलते। जो पद मराठी गाथा तथा हस्तलिखित प्रतियों मे प्राप्त हुए हैं उनके नामदेव रचित होने में कोई संदेह नहीं है पर शेष पदों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये नामदेव के पद है। इनमें से अधिकांश पद किसी अन्य कवि के हैं जो नामदेव के नाम पर प्रसिद्ध हो गये।

रज्जब की 'सर्वंगी' का महत्त्व इस संबंध में अधिक है। 'सर्वंगी' का संग्रह गुरु अर्जुनसिंह के काल में ही अथवा कुछ वर्ष आगे-पीछे हुआ होगा क्योंकि रज्जब का काल ई० सन् १५६३-१६०६ है। 'गुरु ग्रन्थ' में गुरु गोविन्द सिंह द्वारा कुछ परिवर्तन भी किया गया है पर 'सर्वंगी' में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसी प्रकार के कुछ अन्य पद भी हो सकते है जिनके विषय में अभी पूरी खोज नहीं हो पाई है।

पदों के अतिरिक्त 'गुरु ग्रन्थ साहब' में निम्नलिखित[1] तीन साखियाँ भी हैं जिनमें नामदेव का नाम आया है। प्रथम दो साखियों में त्रिलोचन और नामदेव का संवाद है। संभव है ये साखियाँ अन्य किसी की हो और नामदेव तथा त्रिलोचन के संवाद के रूप में प्रस्तुत की गई हों। वैसे भी ये साखियाँ कबीर की साखियों के अन्तर्गत आई हैं। अंतिम साखी नामदेव की है। प्राचीन हस्तलिखित जो पोथियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें नामदेव की १३ साखियाँ मिलती हैं। अन्तिम साखी भी उन्हीं में से एक है।

महत्त्व का प्रश्न यह है कि क्या नामदेव की रचना प्रमाणित है ? यह भी तो हो सकता है कि किसी बाद के संत की ये रचनाएँ हों। नामदेव के १०० वर्ष बाद के

---

१ नामा माइआ मोहिआ, कहै तिलोचन मीत।
काहे छीपउ छाइलइ राम न लावहु चीत ।। २१२ ।।
नामा कहै तिलोचना मुखतें राम सम्हालि।
हाथ पाउ करि कामु सभु चित निरंजन नालि ।। २१३ ।।
ढूंढत डोलह अंध गति अरु चीन्हत नाही संत।
कहु नामा क्यूँ पाइअइ बिनु भगवहु भगवंत ।। २१४ ।।

—श्री गुरु ग्रन्थ साहब (नागरी संस्करण) पृष्ठ १३७७ सर्व हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर।

कबीर की रचना और पाठ निर्णय का अभी पहला प्रयास डॉ० पारसनाथ तिवारी (प्रयाग) द्वारा हो पाया है तब नामदेव की प्राप्त रचनाओं की प्रामाणिकता का निर्णय और भी कठिन माना जा सकता है। वास्तविक बात यह है कि संत नामदेव की रचनाओं का अभी तक हिंदी संसार को पता नहीं था। 'ग्रन्थ साहब' के ६१ पद ही अभी तक नामदेव की संपूर्ण हिंदी रचना समझी जाती रही है।

आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिंदी को मराठी संतों की देन' में ११ और पद दिये हैं जो 'ग्रन्थ साहब' से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त संत नामदेव की गाथा में १०३ हिंदुस्तानी पद हैं जिनमें कुछ ग्रन्थ साहब के हैं और कुछ दूसरे। किंतु नामदेव की हिंदी रचनाएँ इतनी ही नहीं हैं। मुझे विभिन्न प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियों से कुल ३०० पद नामदेव के प्राप्त हुए हैं। हस्तलिखित प्रतियाँ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सेंट्रल पब्लिक लायब्रेरी, पटियाला, बाबा नामदेवजी का गुरुद्वारा घुमान (गुरुदासपुर), पंढरपुर, पूना विश्वविद्यालय आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं। कुछ प्रतियाँ जयपुर में भी हैं जिन्हें देखने का अभी तक अवसर नहीं मिला। रज्जब की 'सर्वंगी' में भी नामदेव के ५० से ऊपर पद संग्रहीत हैं। और भी अनेक संत वाणियों के संग्रहों में नामदेव के पद पाये जाते हैं।

देखना यह है कि इन रचनाओं में प्रामाणिकता कहाँ तक है। 'गुरु ग्रंथ साहब' का संकलन १६०४ में हुआ। नामदेव की रचना सम्बन्धी यही सबसे प्राचीन ग्रन्थ अब तक माना गया है। मुझे एक हस्तलिखित प्रति सन् १६५८ ई० की देखने को मिली है। जिसमें नामदेव के पदों की संख्या १२८ है। यही सबसे पुरानी प्रति अभी तक मिली है। इसके अतिरिक्त १८ वीं, १९ वीं शताब्दी की कई प्रतियाँ भी मिली हैं। पाठ की दृष्टि से 'गुरु ग्रन्थ साहब' का पाठ सबसे भ्रष्ट है। इसके कुछ पद तो अभी तक कहीं भी नहीं प्राप्त हुए हैं। जैसे अन्य संत कवियों के नाम पर बहुत सी रचनाएँ प्रसिद्ध हो गई हैं वैसे नामदेव के नाम पर भी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। पर पाठशास्त्र के आधार पर लगभग १५० पद निश्चित ही नामदेव के हैं। ५० पद ऐसे हैं जो आधे मराठी के, आधे हिंदी के हैं या सम्पूर्ण मराठी के भ्रष्ट रूप में हैं और शेष ५० अभी तक संदिग्ध हैं। उनमें से कुछ गोरखनाथ, कबीर आदि के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ—

'देवा बेन बाजे, गगन गाजे, शब्द अनाहद बोलै।।'' यह पद कबीर ग्रन्थावली (ना० प्र० स०) के पद १६६ पृ० १५४ से बिलकुल मिलता-जुलता है। कबीर की पाठ समस्या पर काम करने वाले डॉ० पारसनाथ तिवारी ने इसे कबीर की प्रामाणिक रचना नहीं माना है। गुरु ग्रन्थ साहब में प्राप्त पद १६ 'तीन छंद पेनु आये' गोरख-बानी (डॉ० बड़थ्वाल द्वारा संपादित) के पद ४२ से मिलता-जुलता है। इस प्रकार

अनेक ऐसे पद है जिनके संबंध में निर्णय करना अभी शेष है ।

ये हस्तलिखित प्रतियाँ, जो विभिन्न स्थानो से प्राप्त हुई है और नामदेव की हिंदी पदों की परंपरा तथा नामदेव के पश्चात् होनेवाले हिंदी संत कवियो द्वारा नामदेव की प्रशस्ति निश्चित रूप से यह प्रमाणित करती है कि नामदेव ने हिंदी में कविता की थी और वह भी नमूने के लिए नही बल्कि सैकड़ो की संख्या में ।

नामदेव की उपलब्ध हिंदी पदावलियो में डॉ० भगीरथ मिश्र तथा डॉ० राज-नारायण मौर्य द्वारा संपादित तथा पूना विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'संत नामदेव की हिंदी पदावली' अद्यतन और प्रमाणित पदावली है । इस पदावली में नामदेव के २३० पद तथा १३ साखियाँ संग्रहीत है ।

पर्याप्त काल तक बहुत को यह विदित न था कि नामदेव ने हिंदी में भी रचना की है । हिंदी जगत् में इनकी रचनाओ का प्रचार पर्याप्त मात्रा में नही था । जहाँ संतो की रचनाएँ संकलित की जाती थी वहाँ नामदेव की रचनाओ को भी स्थान दिया जाता था । इसका प्रमाण है सैकड़ो की संख्या मे पाये जाने वाले नामदेव के हस्तलिखित ग्रंथ ।

इन सभी तथ्यो पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि नामदेव की हिंदी रचनाएँ अल्प मात्रा में उपलब्ध होने के कारण उनको वह प्रधानता न मिल सकी जो कबीर को मिली । इस संदर्भ में आचार्य विनयमोहन शर्मा की सम्मति उल्ले-खनीय है ।[1]

कबीर का प्रखर व्यक्तित्व और उनके विचारों का प्रभाव

हिंदी साहित्य में कबीर से अधिक क्रांतिकारी व्यक्तित्व रखनेवाला कोई दूसरा कवि नही हुआ । उनके व्यक्तित्व को क्रांतिकारी बनाने वाली वे परिस्थितियाँ है जिनमे उन्होंने जन्म लिया और जिनमें उन्हे जीना और मरना पडा । इन परिस्थितियो

---

१. यह सत्य है कि कबीर के समान नामदेव की हिंदी रचनाएँ प्रचुर मात्रा मे नही मिलती परन्तु जो कुछ भी प्राप्त है उनमें उत्तर भारत की संत परंपरा का पूर्व आभास मिलता है और उनके परवर्ती संतों पर निश्चय ही उनका प्रभाव पडा है जिसे उन्होने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है । ऐसी दशा में उन्हे उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्तक मानने में हमे कोई झिझक नही होनी चाहिए । संभवत. हिंदी जगत् तक उनके संबंध में पर्याप्त जानकारी न पहुँच सकने के कारण उन्हे वह स्थान नही प्राप्त हो सका, जिसके वे अधिकारी है ।

—हिंदी को मराठी संतों की देन, पृष्ठ १२६ ।

के आलोक में ही हम इस तथ्य को हृदयगम कर सकते है कि कबीर ने क्यो अपनी प्रखर भाषा और तीखी भाव व्यजना से ऐसे काव्य का सृजन किया जो साहित्यिक मर्यादा की चिंता न करते हुए साहित्य और धर्म में युगातर लाने वाला सिद्ध हुआ ।

कबीर को क्रांतिकारी बनाने वाली परिस्थितियाँ

वस्तुत कबीर के जन्म के समय राजनीति, समाज और धर्म में सर्वत्र एक अशाति और अव्यवस्था की स्थिति थी । राजनीतिक दृष्टि से देखें तो मुसलमानो के आतक से पीडित हिंदू जनता राजाओ का भरोसा छोडकर हताश हो गई थी और अपने को ईश्वर के अधीन कर बैठी थी । धार्मिक दृष्टि से देखें तो नाथ पथियो और सिद्धो ने रहस्यात्मक और चमत्कारात्मक तत्र मत्र आदि के प्रचार द्वारा जनता को धर्म पथ से हटा दिया था । तीर्थयात्रा, व्रत, पर्व, स्नान आदि की निस्सारता बताकर ये लोग जनता को ईश्वर प्राप्ति का एक ही मार्ग दिखला रहे थे और वह था हठयोग तथा अन्य शारीरिक क्रियाए । भक्ति और प्रेम जसी कोमल भावनाओ का इनके लिए कोई महत्व नहीं था । सामाजिक दृष्टि से देखें तो हिंदू मुसलमानो में पारस्परिक कलह और कटुता के बीज मौजूद थे । सकीणता, द्वेष और अविश्वास से दोनो ओर खिचाव था ।

ऐसी विषम परिस्थिति मे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो कलह के कुहरे को चीरता हुआ सूरज की भाँति प्रकाशित होकर किंकर्त्तव्य विमूढ जनता को नवीन मार्ग पर ले जाय । निरीह और निष्प्राण जनता का आत्मविश्वास और मनुष्यता के प्रति श्रद्धा और विश्वास से सशक्त बनाकर परिस्थिति का सामना करने के लिए खड़ा कर दे । कबीर ऐसे ही युग द्रष्टा पुरुष थे ।

कबीर के व्यक्तित्व, उनके धार्मिक आदर्श, समाज के प्रति उनका पक्षपात रहित स्पष्ट दृष्टिकोण तथा उनकी कथन शैली पर नाभादास के इस छप्पय मे सम्यक् प्रकाश डाला गया है ।[1] भक्ति रहित धर्म को कबीर ने अधर्म कहा और भजन के बिना तप, योग, दान, व्रत आदि सब को तुच्छ बताया । उन्होने हिंदू मुसलमान दोनो के लिए

१. भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो ।
जोग, जग्य, जप, दान, भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिंदू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी ।
पक्षपात नहि वचन सबहि के हित की भाखी ॥
आरूढ दसा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी ।
कबीर कानि राखी नही वर्णाश्रम षट दरसनी ॥
भक्तमाल (नाभादास) पृष्ठ ४६१ ।

साखी, सबद और रमैनी की रचना की और बिना पक्षपात किये, बिना किसी को तरफदारी किये सब के हित की बातें कही अर्थात् मानव मात्र के हित की बातें उन्होंने कही। सारे संसार पर छा गये परंतु किसी के दबाव में आकर उन्होंने मुँह-देखी नहीं कही, किसी की ठकुर-सुहाती नहीं की। कबीर ने परंपरा से चले आये चार वर्ण, चार आश्रम, छह दर्शन किसी को स्वीकार नहीं किया।

सच तो यह है कि कबीर अपना घर फूंक कर लाठी लेकर बाजार में आकर खड़े हो गये थे और उन्होंने अपने साथ आने वालों को भी वैसा ही करने की सम्मति दी थी।[१] यही नहीं वे शब्द-प्रमाण की अपेक्षा प्रत्यक्ष अनुभव को अधिक महत्व देते थे।[२] वे प्रेम के उपासक थे। इस कारण उनको पाखंड और ढोंग से चिढ़ हो गई थी। भक्त या संत को जैसा होना चाहिए उसके विपरीत लोग आडम्बर के फेर में पड़कर जनता को पथ भ्रष्ट कर रहे थे।

कबीर जैसा भक्त जो सभी प्रकार के धार्मिक, सामाजिक और शास्त्रीय बंधनों का तिरस्कार कर के 'मानव धर्म' की प्रतिष्ठा करना चाहता था, उस आडम्बर का विरोध किए बिना कैसे रह सकता था जो मनुष्य के लोक-परलोक को बिगाड़ने वाला था। यही कारण था कि कबीर ने उस भक्ति काल में, जिसमें 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' कहने वाले सूर तथा 'तू दयालु दीन हौं' कहने वाले तुलसी तथा उनके जैसे अनेक भक्त कवि विनयशीलता तथा आत्मभर्त्सना का प्रदर्शन कर रहे थे, अपनी सार-ग्राहिणी प्रतिभा और तर्क-व्यंग्य-मय अभिव्यक्ति से धार्मिक और सामाजिक जीवन पर पड़े हुए आडम्बर के पर्दे को छिन्न भिन्न कर दिया।

कबीर स्वभाव से फक्कड़ थे। अच्छा हो या बुरा, खरा हो या खोटा जिससे एक बार चिपट गये उसमें जिंदगी भर चिपटे रहे, यह सिद्धांत उन्हें मान्य नहीं था। वे सत्य के जिज्ञासु थे और कोई मोह-ममता उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थी।

कबीर स्वाधीन-चिंता के पुरुष थे। उन्होंने समय का प्रवाह देखकर धर्म और देश के उपकार के लिए जो बातें उचित और उपयोगी समझी उनको अपने विचारों पर आरूढ़ होकर निर्भीक चित्त से कहा। झूठे संस्कारों के कारण लोग नाना प्रकार के कर्म

---

१. हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासुका जो चलै हमारे साथ॥
—संत कबीर की साखी ५१८।

२. मै कहता हौं आँखिन देखी, तूँ कागद की लेखी रे॥
संक्षिप्त संत सुधा-सार पृष्ठ ५६

काडो मे फँसे हुए थे, आडम्बरमूलक नाना प्रकार के आचारों-व्यवहारो को धर्म समझ रहे थे। उनमे यह बात नहो देखी गई। उन्होने इनके विरुद्ध अपना प्रबल स्वर ऊँचा किया, बडे साहस के साथ केवल अपने आत्मबल के सहारे उनका सामना किया।

मसजिद पर बाग देते हुए मुल्ला पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि खुदा क्या बहरा है जो तू इतनी ऊँची आवाज से बाँग दे रहा है।[1]

यदि खुदा मसजिद में ही रहता है तो शेष विश्व किसका है ?[2]

अहिंसावादी कबीर मुसलमानों में प्रचलित 'खतना' को भी पसद नहो करते।[3]

इस्लाम धर्म और समाज की बुराइयो पर कुठाराघात कर वे हिंदू धर्म और समाज की ओर मुडते है। हिंदू धर्म के तीर्थ, व्रत, मूर्ति पूजा आदि से उन्हें बेहद चिढ है।

कबीर साहब कहते है कि पत्थर की पूजा करने से यदि परमात्मा की प्राप्ति होगी तो मै पहाड की पूजा करूँगा।[4]

सिर मुड़ाकर सन्यासी होने वाला पर भी उन्होने व्यंग्य किया है।[5]

चारो वर्णों में श्रेष्ठ ब्राह्मण को भी वे नही छोडते।[6]

---

१. कॉकर पाथर जोरिकै मसजिद लई चुनाय।
ता चढि मुल्ला बाँग दे (क्या) बहिरा हुआ खुदाय ॥

—कबीर वचनावली, पृष्ठ ६६।

२. जो रे खुदाय मसीति बसत है और मुलिक किस केरा ?

—सक्षिप्त-संत-सुधा सार, पृष्ठ ४०।

३. जो तूँ तुरक तुरकनी जाया।
तौ भीतर खतना क्यूँ न कराया ?

—सक्षिप्त सत-सुधा-सार पृष्ठ ३४।

४. पाहन पूजे हरि मिले तो मै पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय ससार ॥

—साखी सग्रह, पृष्ठ १८३।

५. मूँड मुँडाये हरि मिले सब कोई लेइ मुडाइ।
बार बार के मूँडते भेड़ न बैकुठ जाइ ॥

६. जे तूँ बामन बमनी जाया तो आन बाट काहे नहिं आया ?

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ५३।

शूद्रों के अधिकार का भी उन्होंने समर्थन किया।[1]

उन्होंने सब तरह के धार्मिक और सामाजिक जीवन की पक्षपात-रहित आलोचना की है। वे मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं देखते थे।[2]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए उसकी विशेषताओं पर भली भाँति प्रकाश डाला है।[3]

कबीर के समय में भारत अगणित विभिन्न धार्मिक मतों एवं उनके उप-संप्रदायों का बोलबाला था। प्रत्येक मत अपने मत के सामने अन्य मतों को हेय समझता था। इस समाज में दंभ, पाखंड और सामाजिक विशृङ्खलता का साम्राज्य छा रहा था। कबीर समाज के सजग प्रहरी थे। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था, अवतारवाद, बाह्याडम्बर आदि का अपनी निर्भय एवं कठोर वाणी द्वारा खण्डन किया और एक सामान्य सत्य का स्वरूप उपस्थित कर उसे सुधारने का प्रयत्न किया। ऐसा करने में उन्होंने पूर्ण निष्पक्षता से काम लिया।

कबीर साहब के सत्य कथन का बड़ा प्रभाव रहा। उन्होंने जैसी क्रांतिकारी बातें कहीं, एक युग द्रष्टा ही कह सकता है। जनसाधारण को यदि ऐसा लगता था कि सन्त साहित्य में ऐसी बातें पहली बार कही जा रही हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

नामदेव और कबीर की रचनाओं की तुलना

वास्तविक रूप से यदि कबीर और नामदेव की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो दोनों की विचारधारा में अद्भुत साम्य दिखाई देता है।

---

१. एक जोति थे सब उपजानां, को बामन, को सूदा ?

—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ २१०।

२. साँई के सब जीव हैं कीड़ी कुंजर दोई।
जात पाँत पूछे नहिं कोई, हरिको भजे सो हरिका होई।

—कबीर वचनावली, पृष्ठ ११५।

३. 'ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड़ आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरस्त, भीतर के कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय। वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसीलिए उनकी उक्तियाँ बेधने वाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे।

—कबीर, पृष्ठ १६७।

नामदेव की हिंदी रचनाएँ बहुत कम उपलब्ध हैं। ६२ पद तो 'गुरु ग्रंथ साहब' में मिलते हैं तथा कुछ और मिलाकर हिंदी पदों की संख्या २३० तक हो जाती है। विद्वानों का अनुमान है कि इनकी मराठी रचनाएँ युवाकाल की हैं और हिन्दी रचनाएँ वृद्धावस्था की है। कहते हैं कि नामदेव अपनी युवावस्था में सगुणोपासक थे और बाद में निर्गुणवादी हो गये। उनके हिन्दी पदों में उनकी निर्गुणवादिता स्पष्ट हो जाती है। नामदेव और उनकी रचनाओं का कबीर और उनकी बानी पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। संक्षेप में नामदेव से कबीर को निम्नलिखित बातें विरासत के रूप में मिली हुई जान पड़ती हैं क्योंकि दोनों ही में वे समान रूप से मिलती हैं—

(१) धर्म और वैराग्य का सम्बन्ध—नामदेव भारत के प्राचीन संतों के समान कोरे वैरागी न थे। अपनी जीविका का काम करते हुए हरि भजन या नाम स्मरण करते रहना वे आवश्यक समझते थे। अपने एक पद में नामदेव कहते हैं—'मैं कपड़ा रंगने और सिलने का काम करता हूँ। घड़ी भर के लिए भी भगवन्नाम विस्मृत नहीं करता हूँ। मैं भगवद् भक्ति करता हूँ और उनके गुणों का गान करता हूँ। आठो पहर मैं अपने स्वामी के ध्यान में मग्न रहता हूँ। मेरी सोने की सुई और चाँदी का धागा है, मेरा चित्त भगवान से लगा हुआ है।'[1]

नामदेव की यह प्रवृत्ति कबीर में भी पाई जाती है। ज्ञान भक्ति की सतत साधना करते हुए भी कबीर ने अपना घरेलू व्यवसाय नहीं छोड़ा।[2] कपड़ा बुनते समय भी लौ उनकी राम से ही लगी रहती थी।

किंतु पैतृक व्यवसाय में संभवतः उनकी तबीयत नहीं लगती थी।[3]

---

१ रागनि रागउ सीवनि सीवउ।
राम नाम बिनु घरीय न जीवउ॥
भगति करउ हरि के गुन गावउ।
आठ पहर अपना खसमु धिआवउ।
सुइने की सुई रुपे का धागा।
नामे का चितु हरिसुँ लागा॥

—सन्त नामदेव की हिंदी पदावली, पद १८।

२. हम घर सूत तनहि नित ताना।

—श्री गुरु ग्रंथ साहब आसा, २६।

३ तनना बनना तज्या कबीर राम नाम लिखि लिया सरीर।
जब लग भरौ नली का बेह तब लग टूटै राम सनेह॥

—श्री गुरु ग्रन्थ साहब गुज, २।

(२) भेदभाव विहीनता—नामदेव वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे। भक्ति के क्षेत्र में जाति पाँति के झगड़े को वे निरर्थक समझते थे। उनकी वाणी में यह बात अनेक स्थलों पर ध्वनित की गई है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है—'मैं जाति-पाँति को लेकर क्या करूँ ? मैं तो रात दिन राम नाम का जप करता हूँ।'[१]

'हिंदू अन्धा है और मुसलमान काना। इन दोनों में ज्ञानी चतुर है। मैं तो ऐसे भगवान् की आराधना करता हूँ जो न मंदिर में है और न मसजिद में।'[२]

अपनी गुरु परम्परा से प्राप्त इस बात का अनुसरण कबीर ने भी किया है। जाति व्यवस्था जीवोत्पत्ति की दृष्टि से अप्राकृतिक है। कबीर कहते हैं—'यदि सिरजनहार ने चार वर्णों के भेद का विचार किया है तो जन्म से ही वह एक समान सब के साथ भौतिक, दैहिक और दैविक ये तीन दण्ड क्यों लगा देता ? कोई हल्का (छोटा) नहीं है, जिसके मुख में राम नाम नहीं है वह छोटा है।'[३]

सन्तों की जाति नहीं होती। सभी जातियों में सन्त हुए हैं। सभी लोगों को सन्तों के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए।[४]

सभी मानवों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू या मुसलमान नहीं होना है। ये विषमता पैदा करने वाले मानवीय रूप हैं। ये रूप हरिजन-रूप या भक्त-रूप से तुच्छ है। भक्त के समान ये नहीं है।[५]

---

१. का करौं जाती का करौं पाँती।
राजाराम सेऊँ दिन राती॥ टेक॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १८।

२. *हिन्दू अन्हा तुरकू काणा। दोहाने गिआनी सिआणा॥ ॥*
हिंदू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत॥
नामे सोई सेविआ जह देहुरा न मसीत॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २०८।

३. जो मैं करता वरण विचारै,
तौ जनमत तीनि डाँडि किन सारै॥
—कबीर ग्रन्थावली, पद ४१, पृ० १०१।

४. संतन जात न पूछो निरगुनियाँ।
—संक्षिप्त संत-सुधा-सार, पृ० ४८।

५. अबरन बरन न गनिय रंक धनि, बिमल बास निज सोई।
ब्राह्मन क्षत्रिय वैस सूद्र सब गत समान न कोई॥
—कबीर ग्रंथावली, पृ० १०५

(३) ब्रह्म की निर्गुणता—प्रसिद्ध है कि सन्त नामदेव पहले मूर्ति-पूजक और सगुणोपासक थे किन्तु बाद में वे कट्टर निर्गुणवादी हो गये। वे ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप मे विश्वास करते थे। इस निर्गुण स्वरूप का वर्णन उन्होने अनेक प्रकार से अनेक स्थलो पर किया है। उस निर्गुण का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—'वह निर्गुण ब्रह्म अनेक और एक सब कुछ है। सर्वत्र उसी का प्रकाश दिखाई पड़ता है।'[१]

'मैं जिधर भी जाता हूँ उधर भगवान् है जो परमानन्द में लीन हो सदैव लीलाएँ करता है। नामदेव कहते हैं—'हे भगवान्! पृथ्वी के जल थल आदि सभी स्थानों में तुम व्याप्त हो। इधर भगवान् है, उधर भगवान् है, भगवान् के बिना संसार में कुछ भी नही है।'[२]

'प्रत्येक जीव के हृदय में भगवान् है। हाथी और चीटी एक ही मिट्टी के बने है। ये सब उसी भगवान् के अतीव पात्र हैं।'[३]

निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हुए कबीर कहते है कि उसके किसी प्रकार का रूपाकार नही है। उसके 'रूप अरूप' भी नही है। वह पुष्प की सुगन्ध से सूक्ष्म अनुपम तत्त्व है।[४]

कबीर ने अपने ब्रह्म को अनेक निर्गुणतावाचक विशेषणों से विशिष्ट किया है। वे कहते है—'वह अलख है, निराकार है, उसका कोई स्थूल रूप नहीं है, उसका आदि भी नही, अंत भी नही। वह उत्पन्न भी नहीं होता, नष्ट भी नहीं होता। समझ में

---

१. एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
माइया चित्र बिचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई।
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंद बिनु नहि कोई॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १२०।

२. जत्र जाउँ तत्र बीठल भैला। बीठलियो राजाराम देवा॥ टेक॥
ईभै बीठलु उभै बीठलु बीठल बिनु ससार नही॥
—सन्त नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६१।

३. राम बोने राम बोने राम बिना को बोने रे भाई॥ टेक॥
ऐकल मीटी कुंजर चीटी भाजन रे बहु नाना।
थावर जगम कीट पतगा सब घटि राम-समाना॥
—सन्त नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६।

४. जाके मुँह माथा नही नाहि रूप अरूप।
पुहुप बास से पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥
—कबीर वचनावली, पृ० १।

नहीं आता कि उसका वर्णन किस प्रकार किया जाय।'[1]

वह गुण-रहित है, उसका नाम नहीं रखा जा सकता वह 'गुन विहू्न' है।[2]

(४) सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद—नामदेव में इन दोनों वादों की प्रतिष्ठा दृढ़ भूमिका पर पाई जाती है। उनके अनुसार परमात्मा सारे संसार में व्याप्त है। वे कहते हैं—'हे परमात्मा! जिससे सारे संसार की उत्पत्ति हुई है ऐसे तुम सारे संसार में व्याप्त हो। संसार के लोगों ने माया से अभिभूत होकर उस सर्वव्यापी परमात्मा को भुला दिया अन्यथा तुम घट-घट-वासी हो।'[3]

'वास्तव में प्राणि-मात्र में परमात्मा का वास है। क्या स्थावर जंगम, क्या कीट पतंग, सब में वह व्याप्त है।'[4]

'मैं जहाँ जाता हूँ केवल तुझे देखता। तू जल, थल, काष्ट, पाषाण, निगम, आगम, वेद तथा पुराणों में भी है।'[5]

अद्वैतवाद के लिए हम नामदेव की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर सकते हैं—'लोग मनुष्य द्वारा निर्मित मूर्ति के आगे नाचते हैं और स्वयंभू परमात्मा को भुला देते हैं। वे यदि स्वयंभू परमात्मा की सेवा करें तो उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो। नामदेव *कहते हैं कि मेरी यही पूजा है। आत्माराम ही परमात्मा है, अन्य कोई नहीं।'*[6]

---

१. अलख निरंजन लखै न कोई निरभै निराकार है सोई।
सुनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २३०-२३१।

२. अवगति की गति क्या कहूँ जस कर गाँव न नाँव।
गुन विहू्न का पेखिये काकर धरिये नाव॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २३६।

३. जामैं सकल जीव की उतपति। सकल जीव में आप जी।
माया मोह करि जगत भुलाया। घटि-घटि व्यापक बाप जी।
— सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ४८।

४. थावर जंगम कीट पतंगा सत्य राम सबहिन के संगा॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ३०।

५. सबै भूत नानां पेखूं। जब आऊँ तब तूं ही देखूं।
जल थल मही थल काष्ट पषानां। आगम निगम सब वेद पुरानां॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १२।

६. कृतम आगै नाचै लोई। स्यंभू देव न चीन्है कोई।

'रे मानव ! ईश्वर की सृष्टि को अपने हृदय में विचार कर देख। एक ही ईश्वर घट घट और चराचर में समान रूप से व्याप्त है।'[१]

कबीर में भी सर्वत्र सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद का प्रतिपादन मिलता है। कबीर ब्रह्म को सर्वत्र व्याप्त तो कहते ही है वे ब्रह्म मे जगत् को भी व्याप्त बताते है। जगत् उसमें और वह जगत् में दोनों एक दूसरे मे ओतप्रोत है।'[२]

'वह ब्रह्म व्यापक है, सब मे एक भाव से व्याप्त है। पंडित हो या योगी, राजा हो या प्रजा, सबमें वह आप रम रहा और सब उसमें रम रहे हैं। यह जो नाना भाँति का प्रपच दिखाई दे रहा है, अनेक घट, अनेक भाडे दिख रहे है, सब कुछ उसी का रूप है।'[३]

अपने ब्रह्म की अद्वैतता सिद्ध करने के लिए कबीर ने उसकी अखण्डता एव एकरसता पर विशेष जोर दिया है। वे कहते— 'जब वह अद्वैत तत्व अविहड, एक रस और अखण्ड है तो अवश्य ही पूर्ण होना चाहिए।'[४]

प्रतिबिंबवाद का आधार लेकर कबीर कहते है—'जलाशय के किनारे बैठे मनुष्य को लहरदार जल में जैसे अपने कई प्रतिबिंब दिखाई देते है, उसी प्रकार आत्मा

स्वंभू देवकी सेवा जाने। तौ दिव दिष्टी ह्वै सकल पिछाने ॥
नामदेव भणै मेरे यही पूजा। आतमाराम अवर नहीं दूजा ॥

—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २०।

१. कहत नामदेऊ हरि की रचना दखहु रिदै बिचारी।
घट घट अतरि सरव निरंतरी केवल एक मुरारी ॥

—स० ना० हिं० प०, पद १५०।

२. खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रह्यो समाई।
कहै कबीर मैं पूरा पाया सब घटि साहिब दीठा ॥

—कबीर ग्रंथावली पद ५१, पृ० १०४।

३. व्यापक ब्रह्म सबनि मै एकै, को पडित को जोगी।
राणा राव कवन सूं कहिये, कवन वेद को रोगी ॥
इनमें आप आप सबहिन मैं आप आपसूं खेलै।
नाना भांति घड़े सब भांडे, रूप धरे धरि मेलै ॥

—कबीर ग्रंथावली, पद १८६, पृ० १५१।

४. आदि मध्य और अन्त लौं अविहड सदा अभंग।
कबीर उस कर्त्ता की सेवक तजै न संग ॥

—कबीर ग्रंथावली, अविहड कौ अंग। पृ० ८६।

भी एक है जो अनेक दिखाई देती है।'[1]

कबीर इससे भी आगे बढ़ कर कहते हैं—'सकल विश्व में आत्म तत्व के अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ अन्त-तम अस्तित्व के रूप में है ही नहीं। केवल आत्मा पारमार्थिक सत्य है।'[2]

(५) अनन्य प्रेम साधना—भक्त जब अपने इष्टदेव की आराधना करता है तब उसमें अनन्यता का भाव ही प्रधान होता है। नामदेव की रचना में सर्वत्र अनन्य प्रेम साधना को महत्व दिया गया है। वे कहते है—'राम की वंदना करने पर मैं और किसी की वंदना न करूँगा। यदि मेरा लौकिक जीवन नष्ट हो जाता है तो अपना पारमार्थिक जीवन क्यों नष्ट करूँ ? मै अपनी रसना से राम-रसायन का परम स्वाद लूँगा।'[3]

जिस निधि के लिये मैं त्रिभुवन का चक्कर काट कर आया वह मुझे अपने हृदय में ही मिली। नामदेव कहते हैं—तुमको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। अपने घर बैठकर तुम राम-नाम का जप करो।[4]

सचमुच उनके हृदय मे सब कुछ है। 'माला हृदय में है तथा गोपाल भी मेरे हृदय में है। संसार का पालनहार दीन दयाल परमात्मा भी मेरे हृदय में है। मेरे हृदय में वह दीप जल रहा है जिसके आलोक से सारा संसार आलोकित है।'[5]

---

१. ज्यूँ जल मैं प्रतिब्यंब, त्यूँ सकल रांमहि जाणीजे।
—कबीर ग्रंथावली, विचार कौ अंग, पृ० ५६।

२. हम सब मांहि सकल हम मांही हमथैं और दूसरा नाही।
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २००।

३. राम जुहारि न और जुहारों। जीवनि जाइ जनम कत हारों ?
आन देव सौं दीन न भाषौं। राम रसाइन रसना चाषौं॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ३०।

४. जा कारन त्रिभुवन फिरि आये।
सो निधान घटि भीतरि पाये॥
नामदेव कहै कहूँ आइये न जाइये।
अपने राम घर बैठे गाइये॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६।

५. हिरदै माला हिरदै गोपाला। हिरदै सिंधि कौ दीन दयाला॥ टेक॥
हिरदै दीपक घटि उजियाला। पूटि किवार टूटि गयौ ताला॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ३६।

अपने इस सत्यान्वेषण के आधार पर वे डंके की चोट पर यह निर्णय देते हैं—'ऐ लोगो! करोड़ो उपाय करने पर तुम्हें मुक्ति न मिलेगी। मुक्ति पाने का राम-नाम के स्मरण बिना कोई अन्य मार्ग नहीं है।'[1] संत नामदेव की वाणी का यही मूल भाव है।

कबीर ने भी इसी अनन्य प्रेम भावना को नामदेव के ढंग पर अपनाया है। वे कहते हैं—हे अनेक गुणों से विभूषित ईश्वर! कबीर का एकमात्र तुमसे ही प्रेम है। यदि मैं तुझे छोड़कर किसी अन्य से प्रेम करूँ तो वह मुँह पर स्याही लगाने के समान है।'[2]

अपने साँई के प्रति कबीर की भक्ति अडिग है। वे राम के कुत्ते के रूप में अपना परिचय देते नहीं लजाते। 'मैं राम का स्वामिभक्त कुत्ता हूँ और मेरा नाम मोती है। मेरे गले में राम नाम की रस्सी है। राम जिधर मुझे खींचता है उधर ही मैं चलता हूँ।'[3] आत्मसमर्पण की यह हद है।

कबीर जिस साँई की साधना करते थे वह मुख की बातों से हाथ नहीं आता था। उस राम से सिर देकर ही सौदा किया जा सकता था।[4]

कबीर भक्त और पतिव्रता को एक कोटि में रखते थे। दोनों का धर्म कठोर है, दोनों की वृत्ति कोमल है। वे कहते है—'मेरे नेत्रों में राम की तसवीर बसी हुई है। उनमें और किसी के लिए स्थान नहीं है। कोई पतिव्रता सिंदूर की रेखा को छोड़कर काजल की रेखा अपनी माँग में कैसे लगा सकती है?'[5]

---

१. राम भगति बिन गति न तिरत को। कोटि उपाइ जु करही रे नर॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६२।

२. कबीर प्रीतड़ी तो तुझ सौं बहु गुणियाले कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं तौ नील रगाऊँ दंत॥

—कबीर ग्रंथावली निहकर्मी पतिव्रता को अंग, पृ० १८।

३. कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी जित खैंचै तित जाऊँ॥

—कबीर ग्रंथावली, निहकर्मी पतिव्रता को अंग, पृ० २०।

४. साँई सेंत न पाइये बातां मिलै न कोय।
कबीर सौदा रामसों सिर बिन कदे न होय॥

—संत कबीर साखी ८५।

५. कबीर रेख स्यदूर की काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमइया रमि रह्या दूजा कहाँ समाई॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १६।

कबीर का अपने स्वामी पर अटल विश्वास है। कहते हैं—'मैं उस समर्थ का सेवक हूँ जो महान् और असीम है। इसी कारण मेरा अनर्थ नहीं हो सकता। यदि पतिव्रता नंगी रहेगी तो उसके स्वामी को ही लज्जा आयेगी।'[1]

(६) निर्गुण भक्ति—भागवत में तो निर्गुण भक्ति सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। नामदेव में यही निर्गुण भक्ति भावना पाई जाती है।

नामदेव कहते हैं—'हे परमात्मा! तेरी गति तू ही जानता है। मैं अल्प मति तेरा क्या बखान करूँ? तू वैसा नहीं है जैसा कि तेरा वर्णन किया जाता है। तू जैसा है, वैसा है।'[2]

'जो परम सुख का निधान है उसको छोड़कर लोग अन्य धंधों में लग जाते हैं। वे पत्थर की मूर्ति के आगे सजीव प्राणि की बलि चढ़ाते हैं। जिसके प्राण नहीं उसको पूजते हैं। पत्थर को पूजा कर मनुष्य कुछ और ही हुआ है।'[3]

'मैं फूल तथा पत्तियों को चढ़ाकर परमात्मा की पूजा न करूँगा क्योंकि परमात्मा मंदिर में नहीं है। नामदेव कहते हैं कि मैंने उसके चरणों पर आत्मसमर्पण कर दिया है अतः मेरा पुनर्जन्म न होगा।'[4]

नामदेव के अनुसार वह परम तत्त्व ऐसा है जिसका न कोई रूप है, न रंग है, न आकार है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।[5]

---

१. उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नागी रहै तो उसही पुरिस कौं लाज॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २०।

२. तेरी तेरी गति तूं ही जानै। अल्प जीव गति कहा बषानै।
जैसा तूं कहियै वैसा तूं नाही। जसा तूं है वैसा आछि गुसाईं॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १४।

३. कहा करूँ जग देषत अंधा। तजि आनंद विचारै धंधा॥ टेक॥
पाहन आगै देव कटीला। वाको प्राण नहीं वाकी पूजा रचीला॥
निरजीव आगै सरजीव मारै। देषत जनम आपनौ हारै॥
आंगणि देव पिछौकड़ि पूजा। पाहन पूजि भए नर दूजा॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ४७।

४. पाती तोड़ि न पूजूं देवा। देवलि देव न होई।
नामा कहै मैं हरि की सरना। पुनरपि जनम न होई॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६५।

५. कहै नामदेव परम तत है ऐसा।
जाके रूप न रेख वरण कहौ कैसा॥ —संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७६।

वैरागी होकर मैं राम के गुण गाऊँगा। मैं उस परम तत्त्व के निवास स्थान तक जाऊँगा जो वर्णनातीत अनहद नाद में रत है तथा अगम्य है।[1]

अपने मराठी के एक अभंग में नामदेव कहते हैं—'पत्थर की मूर्ति भक्तों के साथ बातें करती है ऐसा कहने वाले तथा सुनने वाले दोनों मूर्ख हैं।'[2]

कबीर की भक्ति भी निर्गुण भक्ति ही थी। कबीर ने ब्रह्म को निर्गुणवाचक विशेषणों से युक्त करके उसका वर्णन किया है—'ब्रह्म आँखों से देखा नहीं जा सकता अतः वह अलख है।[3] 'वह अत्यंत सुन्दर है, सदा सर्वदा रहने वाला है, वह अनुपम है।'[4] 'ब्रह्म का भेद पाना असम्भव है, उसे इंद्रियों से पाया नहीं जा सकता अतः वह अगम और अगोचर है।'[5]

'ब्रह्म को अजर-अमर तो कहते ही हैं परन्तु वह अरूप है। उसे आँखों के द्वारा देख पाना असम्भव है, इसी से वह अलख है।[6]

'वह सभी कर्मों से अलिप्त है, निर्भय है। उसका कोई आकार नहीं, वह निराकार है।[7]

---

१. वैरागी रामहि गाऊँगा।
सब्द अतीत अनाहद राता। अकुला के घरि जाऊँगा॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६६।

२. पाषाणाचा देव बोलत भक्तांतें।
सांगते ऐकते मूर्ख दोघे॥
—पाँच संत कवी, पृ० १५०।

३. अलख निरंजन लखै न कोई।
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २३०।

४. अविगत अकल अनुपम देख्या कहता कह्या न जाई।
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ६०।

५. अगम अगोचर गमि नहीं तहाँ जगमगै जोति॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १२।

६. अजरा अमरा कथै सब कोई।
अलख न कथणा जाई॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १४६।

७. निरभय निराकार है सोई।
कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २३०

अंत में कबीर ने 'नेति नेति' का आश्रय लिया। वह ऐसा है, वैसा नहीं। इस वाद विवाद पर समय व्यर्थ खर्च न करके उसका गुणगान करना ही श्रेयस्कर है।'[1]

(७) नाम साधना—यों तो नाम-साधना भक्ति के क्षेत्र में प्राचीन काल से ही प्रचलित है किंतु नामदेव ने उसको बहुत अधिक महत्त्व दिया था।

हरिनाम की महिमा अपार है। वही तो इस विश्व में एक तत्त्व है। नामदेव कहते हैं—'हरि का नाम सारे संसार का सार है। मैंने हरिनाम रूपी नाव से भव-सागर को पार किया।'[2]

'संसार माया है, तुम्हारा नाम सार-स्वरूप है। इस कलियुग में तुम्हारा नाम एकमात्र आधार है।'[3]

हरि नाम ने संसार में साधारण काम नहीं किया है। 'हरि का नाम स्मरण करने से कमला श्री विष्णु की दासी हुई। शंकर अविनाशी हुए, ध्रुव को अटल स्थान प्राप्त हुआ और प्रह्लाद का उद्धार हुआ।'[4]

'राम का नाम लेने से किसका कलंक दूर नहीं हुआ? राम कहते ही, उनके स्मरण मात्र से पापी जनों का उद्धार हुआ।'[5]

नाम की इस महत्ता को देखकर नामदेव कहते हैं—'राम नाम रूपी पूँजी में मैंने अपना सब कुछ लगा दिया। मुझे राम नाम से लौ लगी! मैं उससे अनुरक्त

---

१. दीठा है तो कस कहूँ कहिया न कोई पतिआइ।
हरि जसा है तैसा रहो, तू हरषि हरषि गुण गाई॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ११८।

२. हरि नांव सकल भुवन तत सारा।
हरि नांव नामदेव उतरे पारा॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १।

३. सार तुम्हारा नांव है झूठा सब संसार।
मनसा वाचा कर्मना कलि केवल नाव अधार॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५१।

४. हरि नाव मैं निज कवला दासी। हरि नावै संकर अविनासी।
हरि नाव मैं ध्रू निहचल कराया। हरि नाव मैं प्रहलाद उधरीय॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५४।

५. कौन के कलंक रह्यौ राम नाम लेत हो।
पतित पावन भयो राम कहत हो॥ टेक॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २८।

हुआ ।'[१]

'जिसके पास राम नाम रूपी धन हो उसे किस बात की कमी है ? अष्ट सिद्धि तथा नव निधि उसकी सेवा में तत्पर है ।'[२]

यही कारण है कि नामदेव ने अपने मनको पूर्णत 'नाम' पर केंद्रित किया । वे कहते है— मेरा मन राम नाम पर इस प्रकार केंद्रित हुआ है जिस प्रकार सुवर्णकार का सोने की तुला पर होता है ।'[३]

'जब तक राम नाम के लिए हृदय म सच्चा प्रेम न हो, आकर्षण न हो तब तक 'यह मेरा है' 'यह मेरा है' कहते कहते जीवन व्यर्थ जायगा ।'[४]

नाम साधना की दिशा मे कबीर ने नामदेव का पूरा अनुसरण किया । उन्होंने भक्ति-क्षेत्र में नाम जप को विशेष महत्त्व दिया है । कबीर साहब हाथ उठाकर कहते है—'राम का नाम लेने से ही भला होगा । मैने तो कहा ही है, ब्रह्मा और महेश ने भी कहा है कि राम का नाम ही जीवन मे सार तत्त्व है ।'[५]

कबीर उस नाम स्मरण को सबसे बढ़कर मानते है जो मनसा, वाचा व कर्मणा किया जाय ।[६]

---

१. राम नाम मेरे पूँजी धनां ।
ता पूँजी मेरो लागो मना ॥ टेक ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १२८ ।

२. रामसा धन ताको कहा अब थोरो ।
अठ सिधि नव निधि करत निहोरो ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ३ ।

३. ऐसे मन राम नामै बेधिला । जैसे कनक तुला चित राखिला ॥ टेक ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६ ।

४. जौ लग राम नामै हित न भयो ।
तौ लग मेरी मेरी करता जनम गयो ।
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २२ ।

५. कबीर कहता जात हूँ सुणता है सब कोई ।
राम कहें भला होइगा नहिं तर भला न होइ ॥
कबो कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस ।
राम नांव तत सार है सब काहू उपदेश । —कबीर ग्रन्थावली पृ० ४, ५, ।

६ भगति भजन हरि नाव है दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा वाचा क्रमना कबीर सुमिरण सार ॥ —कबीर ग्रंथावली, पृ० ५ ।

कबीर ने स्पष्ट घोषणा की है कि समस्त साधनों का सार तत्त्व सुमिरन ही है। धर्म, उपासना और साधना के समस्त अंग नाम सुमिरन की समानता नहीं कर सकते।[१]

कबीर ने भगवान की शरण में जाकर नाम-जप करने का उपदेश दिया है।[२]

कबीर ने नाम रस का वर्णन प्रेम रस और राम रस के रूप में किया है। उन्होंने नाम-रस का प्याला पीने का अनुरोध किया है।[3]

कबीर कहते है—नाम स्मरण के बिना जप, तप, ध्यान सब झूठ हैं।[४]

कबीर के अनुसार भक्त को अखंड नाम-जप करना चाहिए।[५]

किन्तु नाम-स्मरण ऐसा न हो कि मुँह मे तो राम का नाम हो और मन विषयों का ध्यान करे। राम का स्मरण तो सभी करते है लेकिन उसकी भी अनेक विधियाँ है। उसी राम के नाम का उच्चारण साध्वी और पतिव्रता भी करती है और तमाशबीन भी करते है। जिस प्रकार आग का नाम मात्र लेने से मनुष्य जलता नहीं उसी प्रकार राम का नाम लेने से वह मुक्त नहीं हो जाता। उसे राम के सत्य स्वरूप की अनुभूति कर लेनी चाहिए।[६]

---

१. कबीर सुमिरन सार है और सकल जंजाल।

—कबीर साखी संग्रह पृ० ९६।

२. कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छाडहु मन के भरमा।
केवल नाम जपहु रे प्रानी परहु एक की सरना॥

—कबीर ग्रन्थावली पृ० २६७।

३. पी ले प्याला हो मतवाला। प्याला नाम अमी रस का।

—संक्षिप्त संत सुधा-सार, पृ० ५३।

४. हरि बिन झूठे सब ब्योहार केते कोऊ करौ गँवार।
झूठा जप, तप झूठो ग्यान, राम नाम बिन झूठा ध्यान॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १७४।

५. काम परे हरि सिमिरिये ऐसा सिमरो नित।
अमरापुर वासा करहु हरि गया बहौरे वित॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २५०।

६. राम नाम सबको कहै, कहिबे बहुत विचार।
सोई राम सती कहै सोई कौतिगहार॥
आगि कह्या दाझै नही जे नहीं चंपै पाइ।
जब लग भेद न जाणिये राम कह्या तो काइ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पद १२२, पृ० १२७।

(८) सेव्य सेवक भाव—भक्तों में सेव्य-सेवक भाव सदैव से ही सामान्य रहा है। नामदेव ने अपनी भक्ति में सेव्य-सेवक भाव को विशेष महत्व दिया है। उनकी हिंदी पदावली में संग्रहीत पदों से यह बात स्पष्ट प्रगट होती है।

नामदेव कहते हैं—'राम भक्ति की बड़ी प्रबल अभिलाषा मेरे मन में घर कर गई है। शेष सभी अभिलाषाओं का मैंने त्याग किया। उस राम के चरणों की वंदना करते हुए निष्काम नामदेव कहते हैं—'तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारा दास हूँ।'[१]

'नामदेव राम के अनुरूप है और राम नामदेव के अनुरूप है। हे राम! तुम मेरे मालिक हो और मैं तुम्हारा सेवक हूँ।'[२]

'लोग वेदों के साथ मोह-नदी की तेज धारा में बह गये। हे नामा के स्वामी विट्ठल! मुझे पार उतार दो।'[३]

'हे स्वामी! तुम मेरे ठाकुर हो, मेरे राजा हो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ।[४]

नामदेव कहते हैं—'तुम मेरे स्वामी हो। तुम्हारा भक्त अपूर्ण है और तुम पूर्ण हो। इससे उसे तुम्हारे आश्रय की आवश्यकता है।'[५]

'नामदेव के स्वामी विट्ठल ने अपने जपहीन, तपहीन, कुलहीन और कर्महीन भक्तों का उद्धार किया।'[६]

---

१. ऐकल चिंता राहिले निता छूटे सब आसा।
प्रणवत नामा भये निहकामा तुम ठाकुर मैं दासा।

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६

२. राम सो नामा, नाम सो रामा। तुम साहिब मैं सेवग स्वामा ॥टेक॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७।

३. लोग वेद कै संगि बह्यो सलिल मोह की धार।
जन नामा स्वामी बीठला मोहि पेइ उतारो पार ॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५१।

४. तू मेरौ ठाकुर तूं मेरो राजा, हौं तेरे सरनै आयो हो।

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १३१।

५. कहत नामदेउ तूं मेरो ठाकुर जनु ऊरा तू पूरा ॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६१।

६. जपहीन तपहीन कुलहीन क्रमहीन।
नामेंचे सुआमी तेऊ तरे ॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १४६।

'हे नरहरि। मैं तुम्हारा सेवक हूँ, आवागौन के फेर से मुझे मुक्त करो।'[1]

'नामदेव का स्वामी नरहरि खंबे में से प्रगट हुआ।'[2]

'मुक्ति मिलने पर तथा नाम का उच्चारण करने पर स्वामी और सेवक (भक्त और भगवान) साथ रहे।'[3]

'देवता मैले हैं, गंगाजल भी अशुद्ध है। केवल नामदेव के स्वामी निर्मल हैं, शुद्ध है।'[4]

कबीर ने भी सेव्य-सेवक भाव पर विशेष जोर दिया है। भगवान् के प्रति कबीर का आत्मसमर्पण देखने योग्य है। वे कहते हैं—'हे स्वामी। मैं तुम्हारा गुलाम हूँ। तू मुझे जहाँ चाहे बेच डाल। तूने तो मुझे ऐसे हाट में उतार दिया है जहाँ पर तू ही गाहक है और बेचनेवाला भी तू ही है।'[5]

कबीर के विनयभाव की उत्कृष्टता अवलोकनीय है। कबीर कहते हैं—'मैं राम का स्वामिभक्त कुत्ता हूँ और मेरा नाम मोती है। मेरे गले में राम नाम की रस्सी है अर्थात् राम के प्रेम की रस्सी से मैं बँधा हूँ। जिधर राम मुझे खींचता है उधर ही मैं चलता हूँ।'[6]

---

१. नामदेव कहै मैं सेवग तेरा।
आवा गवण निवारि हो नरहरी॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६७।

२. थंभा माँहि प्रगट्यो हरी। नामदेव को स्वामी नरहरी॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १२७।

३. मुक्ति भऐला जाप जपेला। सेवक स्वामी संग रहेला॥
संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ४५।

४. मैला सुर मैली सुरसरी। नामदेव को ठाकुर निरमल हरी॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १२१।

५. मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं।
तन मन धन मेरा रामजी कै ताईं॥ टेक॥
आनि कबीरा हाटि उतारा।
सोई गाहक सोई बेचनहारा॥
—कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १२४।

६. कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेवड़ी जित खैंचै तित जाऊँ॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २०।

'हे रामजी ! आप पर मेरा दृढ़ विश्वास है। फिर मैं और किसी का निहोरा क्यों करूँ ? रामचन्द्रजी जैसा जिसका स्वामी हो वह और को क्यों पुकारे ?'[1]

मैं उस समर्थ का सेवक हूँ जो महान् और असीम है, इसी कारण मेरा अनर्थ नहीं हो सकता। यदि पतिव्रता नंगी रहे तो ईश्वर के लिए बड़ी लज्जा का विषय होगा।'[2]

'मेरा ठाकुर, मेरा स्वामी ऐसा भक्तवत्सल है कि उसकी शरण में जाने पर वह अपने भक्तों का उद्धार करता है।'[3]

ऊपर नामदेव तथा कबीर दोनों की रचनाओं में समान रूप से पाई जाने वाली निर्गुण पथ की जो विशेषताएँ बताई गई हैं उनसे नामदेव और उनकी रचनाओं का कबीर और उनकी बानी पर प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। संत मत की ये सभी विशेषताएँ कबीर को नामदेव से उत्तराधिकार में मिली थी।

संत नामदेव का निर्गुण भक्ति की ओर झुकाव पंजाब आने के पूर्व संत ज्ञानेश्वर के संपर्क से हो चुका था। पंजाब में इसके लिए उपयुक्त वातावरण मिला। अत उनकी निर्गुण भक्ति खूब विकसित हुई, जिसकी अभिव्यक्ति उनके हिंदी पदों में है। यहाँ मैं एक बात की ओर संकेत करना चाहता हूँ और वह यह कि नामदेव के हिंदी पदों में उनके परिपक्व अनुभव साधना के संबंध में प्रौढ विचार और आध्यात्मिक समन्वयवाद का स्पष्ट निखार है। इनके मराठी अभंगों में वर्णनात्मकता अधिक है और जहाँ भावुकता अधिक है वहाँ भक्ति की विह्वलता है परंतु हिंदी पदों में आत्मानुभूति तथा ज्ञान और भक्ति का वह सुन्दर पाक है जो स्वाद लेने वाले के लिए गूँगे के गुड़ की तरह है।

वस्तुत देखा जाय तो नामदेव की हिंदी रचना का क्षेत्र बहुत विशाल है।

---

१ अब मोहि राम भरोसा तेरा।
और कौन का करौं निहोरा ॥ टेक ॥
जाके राम सरीखा साहिब भाई।
सो क्यूँ अनत पुकारन जाई ॥

—कबीर ग्रन्थावली पद १२२, पृष्ठ १२७।

२ उस समृथ का दास हौं कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नाँगी रहे तो उसकी पुरिस कौ लाज ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २०।

३. दास कबीर को ठाकुर ऐसो भगत की सरन उबारै।

—कबीर ग्रन्थावली, पद १२२, पृष्ठ १२७।

ध्यानपूर्वक इन पदों का अध्ययन करने से यह बात निश्चित रूप से दिखाई पड़ती है कि निर्गुण संतों की रचनाओं में जो विशेषताएँ प्राप्त होती है वे सभी नामदेव में है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदीजी ने भी इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख किया है—

(१) प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर सत्य का अन्वेषण
(२) सद्गुरु के महत्व का प्रतिपादन
(३) परम तत्त्व के साथ एकात्म भाव
(४) नाम स्मरण का आग्रह, तथा
(५) बाह्याडम्बर की व्यर्थता

संत नामदेव की हिंदी रचनाओं में ये सभी विशेषताएँ प्राप्त होती है। नामदेव और कबीर की समान विचार-धारा की तुलना में इन विशेषताओं का उल्लेख किया जा चुका है पर यहाँ उन्हे और स्पष्ट रूप से रखना चाहता हूँ।

नामदेव ने सर्वदा इस बात पर जोर दिया है कि ब्रह्म अथवा सत्य का अन्वेषण प्रत्यक्ष अनुभव के बिना नही हो सकता। कहना-सुनना उसके परिचय में सहायक नही हो सकता। कहना-सुनना जब समाप्त होगा तब उसका परिचय मिलेगा।[1]

वे बार-बार आत्मानुभव की ओर संकेत करते है—'रे मानव ! ईश्वर की सृष्टि को अपने हृदय मे विचार कर देख। एक ही ईश्वर घट-घट और चराचर में समान रूप से व्याप्त है।'[2]

वे वेद और पुराण पढ़ने के बाद भी स्वतः विचार करने को अधिक महत्त्व देते है—'हे पंडित ! तुम वेदों और पुराणो को पढ़ो और सोचो कि हरि का दास संसार से बिलकुल अलग है।'[3]

गुरु के महत्व के अनेक उदाहरण हम पहले दे आये हैं। 'सारा संसार भ्रम में भूला हुआ है, निर्वाण पद को कोई पहचानता ही नही। नामदेव के गुरु ने उस परम तत्त्व

---

१. कहिबो सुनिबो जब गत होइबो तब ताहि परचो आवै ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६६।

२. कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै बिचारी ॥
घट-घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १५०।

३. ऐसे जगथैं दास निधारा।
वेद पुरान सुमृत किन देखौ पंडित करउ विचारा ॥ टेक ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ८२।

को नामदेव के बहुत ही समीप बताया।'[1]

उस परम तत्त्व, पर ब्रह्म के साथ नामदेव जैसे एकाकार हो गये हैं। वे कबीर की विरहिणी की तरह उस प्रिय से अपना संबंध जनम-जनम का बतलाते है।[2]

और यह प्रीति कच्ची नहीं है। यह तो चातक के अनन्य भाव से भी बढ़कर है। 'चातक पानी से भरे हुए गढ़े की ओर नहीं जाता। मेघ से टपकने वाली बूंद का पान किये बिना उसको संतोष नहीं होता। उसके स्नेह की ओर देखो।'[3]

नामदेव का उस परम तत्त्व से जो सबंध है वह लहर और सरोवर तथा मछली और पानी का है।[4]

नामदेव की हिंदी रचनाओं में नाम-स्मरण का आग्रह बारंबार दिखाई पड़ता है। वे यहाँ तक कहते हैं कि यदि जीभ से राम नाम का उच्चारण न हो तो वह किस काम की ?[5]

उन्हें ज्ञात है कि राम-नाम के स्मरण बिना यम के जाल से छुटकारा नहीं है। अत. वे अपने आलसी मन को सचेत करते हैं।[6]

नामदेव को पूरा विश्वास है कि राम के भजन के अतिरिक्त उद्धार का अन्य

---

१. निरवाने पद कोइ चीन्हे झूठे भरम भुलाइला।
प्रणवत नामा परम तत रे सत गुरु निकटि बताइला ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १६।

२. लागी जनम जनम की प्रीति, चित नही बीसरै रे ॥ टेक ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १३६।

३. भर्‍यौ सरवर लहर्‍या जाइ धायौ नहीं पपीहरौ रे ॥
तेन्हौ घन बिन तपति न थाइ, जोवो तेन्हौ नेहरौ रे ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १३६।

४. हरि सरवर जन तरंग कहावै।
सेवग हरि तजि कहूँ कत जावै ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ७।

तू सायर मै मछा तोरा। —संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ४८।

५. जो बोलै तौ रामहि बोलि।
नही तर वदन कपाट न पोलि ॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ११६।

६. अपने राम कूँ भज लै आलसीया। राम बिना जम जाल सीया ॥टेक॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६३।

कोई मार्ग है ही नहीं। 'तुम करोड़ो उपाय क्यों नही करते, राम भजन के बिना भव सागर को पार करना दुस्तर है।'[1]

नामदेव बाह्याडम्बर के बहुत विरोधी है। ब्राह्मण वेद पढ़ने का आडम्बर करते है तो मुसलमान रोजा और नमाज का। नामदेव कहते है कि जब तक मन में भ्रांति है तब तक इन सबका कुछ उपयोग नही।[2]

ऐसे आडम्बर-प्रेमियो को नामदेव ने पूरी खबर ली है। साधनो ही को महत्व देने वाले भक्तों पर वे व्यंग्य करते है।[3]

उपरि-उल्लिखित सब तथ्यो पर विचार करने पर आचार्य विनयमोहन शर्मा का यह निष्कर्ष समीचीन जान पड़ता है।[4]

नामदेव तथा कबीर का काल

यद्यपि यह सर्वमान्य तथ्य है कि संत नामदेव कबीर के पहले हुए थे किन्तु यहाँ में एक बार पुन: इन दोनो के कालो पर विचार कर लेना चाहता हूँ ताकि दोनों का काल-क्रम स्पष्ट रूप से निश्चित किया जा सके। बड़े खेद की बात है कि कुछ लोगों ने नामदेव और कबीर को समकालीन भी माना है।

नामदेव का जन्मकाल शके ११९२ (सन् १२७० ई०) प्रसिद्ध है।[5] महाराष्ट्र

---

१. राम भगति बिन गति न तिरन की। कोटि उपाइ जु करहो रे नर॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ९२।

२. ब्रह्मा पढ़ि गुणि वेद सुनावै। मन की भ्रांति न जावै॥
करम करै सो सूझै नाहीं। बहुतक करम कराई॥
मास दिवस लग रोजा साधै। कलमा बांग पुकारै।
मनमें काती जीव संघारै। नाव अलह का सारै॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६४।

३. मन मैले की सुधि नहिं जाणी। साबन सिला सराहै पाणी॥

४. 'नामदेव में उत्तरी भारत के संत मत की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसीलिए हम उन्हे उत्तर भारत मे निर्गुण भक्ति मत का प्रथम प्रचारक और प्रवर्तक तथा कबीर आदि संतों का पथ-प्रदर्शक मानते हैं।'

—हिंदी को मराठी संतों की देन, पृष्ठ १२८।

५. अधिक ब्याण्णव गणित अकरा शतें। उगवता आदित्य तेजोराशी।
शुक्ल एकादशी कार्तिकी रविवार। प्रभव संवत् शालिवाहन शके॥

—*सकल संत गाथा, अभंग १२५४।*

के विद्वानो में इस काल के सबध में कोई मतभेद नही है। कुछ विद्वानो ने हिंदी कविता में वर्णित घटनाओ के आधार पर नामदेव का काल कुछ बाद म खीचने का प्रयत्न किया है।

डॉ॰ मोहनसिंह 'दीवाना' ने अपनी पुस्तक 'भक्त शिरोमणि नामदेव' की नई जीवनी, नई पदावली, में नामदेव के काल को ई॰ स॰ १३६॰ और १४५० के बीच माना है। इसका आधार उन्होने नामदेव का मृत गाय जिलानेवाला पद[1] माना है। इस सदर्भ में डॉ॰ राजनारायण मौर्य का मत द्रष्टव्य है।[2]

डॉ॰ मोहनसिंह ने फिरोजशाह बहमनी को ही वह सुलतान माना है जिसने नामदेव को मृत गाय जिलाने की आज्ञा दी थी। वह दक्षिण में था और उसका काल सन् १३९७ से १४२२ ई॰ के मध्य का है। अन्य फिरोज सुलतान फिरोज शाह खिलजी (राज्य काल सन् १२८२ से १२९६ तक) के साथ नामदेव के काल का मेल नही बैठता और फिरोज शाह तुगलक (राज्य काल १३५१ ई॰ से १३८८ ई॰ तक) के साथ स्थान का मेल नही बैठता क्योंकि फिरोज शाह न तो दक्षिण में आया था और न सत नामदेव दिल्ली ही गये थे। अत इसी आधार पर डॉ॰ मोहनसिंह ने नामदेव का काल खीचकर आगे बढा दिया है। उन्होने एक और तर्क दिया है। वह है सत नामदेव का रामानन्द का शिष्य होना। वे रामानन्द का जन्म सन् १४२० और ३० ई॰ के बीच तथा कबीर का सन् १४५० और ६० ई॰ के बीच मानते है।

डॉ॰ मोहनसिंह के इन दोनो तर्कों में कोई तथ्य नही है। इसका तो कही उल्लेख भी नही है कि रामानन्द नामदेव के गुरु थे। महाराष्ट्र और हिंदी साहित्य में भी यह

---

१ सुलतानु पूछै सुनु बे नामा। देखउ राम तुमारे कामा ॥

—गुरु ग्रन्थ साहब, नामदेव के हिंदी पद, पद ४७।

२. 'यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि डॉ॰ मोहनसिंह ने गुरु ग्रन्थ साहब के जिस पद के आधार पर गाय जिलाने की घटना का जिक्र किया है वह पद नामदेव रचित मानने में मुझे सदेह है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में मुझे एक हस्त लिखित संतो की परचई प्राप्त हुई है जिसमें नामदेव की भी परचई है। इसका लिपिकाल स॰ १७४० और रचयिता कृष्णानद हरीदास है। नामदेव की परचई मे (जो दोहे और चौपाई में है) मृत गाय जिलाने का वर्णन है जिसकी शब्दावली गुरु ग्रन्थ साहब के इस पद से बहुत मिलती जुलती है। भाषा और वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी यह पद संदेहात्मक है।'

—हिंदुस्तानी (जनवरी १९६२), पृष्ठ ११२।

प्रचलित है कि संत ज्ञानेश्वर के पिता के गुरु रामानंद थे। किंतु श्री भावे[1] के अनुसार उनके गुरु श्रीपाद स्वामी थे। रामानन्द का काल आज भी निश्चित नहीं है। पर इतना अवश्य निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे संत नामदेव के गुरु नहीं हो सकते। नामदेव के गुरु विसोबा खेचर थे जो नाथ परंपरा के एक सिद्ध योगी थे।

कबीर की रचनाओं में नामदेव का नाम आया है।[2] परन्तु नामदेव की रचना में कबीर का नाम कहीं भी नहीं आया है। अत यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि नामदेव कबीर के पूर्ववर्ती है। एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि नामदेव और कबीर के परवर्ती संतो ने बड़ी ही श्रद्धा से इन दोनो का नाम लिया है पर प्राय: नामदेव का नाम कबीर के पहले मिलता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कबीर का नाम नामदेव के पूर्व कहीं आया ही नहीं है। छंद रचना में जहाँ जो शब्द बैठ गया वहाँ रख दिया गया है। फिर भी नामो का क्रम देखकर लगता है कि वे रचयिता संत नाम-क्रम के प्रति सचेत अवश्य थे।

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत, पृष्ठ १३३।

२. गुर परसादी जैदेव नामा प्रगटि कै प्रेम इन्है कै जाना ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ३२८।

इहि रस राते नामदेव पीपा अरु रैदास।
पीवत कबीर ना थक्या अजहूँ प्रेम पियास ॥ —रज्जब

—सर्वंगी (ह० लि० प्रति) पूना विश्वविद्यालय।

नामदेव कबीर जुलाहो जन रैदास तिरे।
दादू बेगि बार नहिं लागै हरि सो सबै सरे ॥ —दादू

—संत सुधा सार, पृष्ठ ४४१।

जेहि घर नाम कबीरा, पहुँचे करि तन मन धीरा।
अति ही सूछिम होय, जाइ मिले ब्रह्म कूँ सोइ ॥ —तुलसीदास

– संत वाणी संग्रह, (ह० लि० प्रति) पूना विश्वविद्यालय।

नामदेव कबीर तिलोचन सधना सेन तरे।
कह रविदास सुनो रे संतो हरि जीव ते सभै सरे। —रैदास

—संत सुधा-सार, पृष्ठ १८३।

नामा कबीर सु कौन थे कुन राँका बाँका।
भगति समानी सब धरनि तजि कुल काना का ॥ —रज्जब

—संत सुधा-सार, पृष्ठ ५२०।

कबीर का काल निर्णय

संत कबीर का जन्म काल यद्यपि आज भी विवाद-रहित नहीं है फिर भी कबीर के काल निर्णय के संबध में जितने भी लोगों ने विचार किया है उनमें से अधिकांश ने उनका जन्म काल संवत् १४५५ और मृत्युकाल संवत् १५७५ माना है।

कबीर पंथियों में कबीर के आविर्भाव के सम्बन्ध में निम्नांकित दोहा प्रचलित है।[१] इस उल्लेख से कबीर की जन्म-तिथि संवत् १४५५ की ज्येष्ठ की पूर्णिमा प्रामाणिक प्रतीत होती है।

कबीर के काल निर्णय में तीन ऐसे प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जो बाधक या सहायक हैं—रामानन्द, सिकंदर लोदी और नवाब बिजली खाँ।

रामानन्द को कबीर का गुरु कहा जाता है। इसी बात को सिद्ध करने के लिए दोनों को खोंचकर, तान कर, एक साथ लाने का प्रयत्न किया जाता है।

सिकन्दर लोदी (सन् १४८८-१५१७ ई०) और कबीर की भेंट काशी में बताई जाती है। अत. कबीर और सिकंदर लोदी का भी एक साथ होना आवश्यक है। वेस्कॉट, स्मिथ, भांडारकर, मेकालिफ, फर्कुहर, ईश्वरी प्रसाद आदि इतिहासकारों ने भी कबीर को सिकंदर लोदी का समकालीन माना है।

'आर्किऑलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया' में लिखा है कि बिजली खाँ ने कबीर का स्मारक बनवाया था। अत. बिजली खाँ को भी कबीर का समकालीन होना चाहिए।

परिणाम-स्वरूप इन चारों ऐतिहासिक व्यक्तियों को किसी प्रकार आगे पीछे करके एक साथ लाया जाता है। देखना यह है कि क्या सचमुच ये चारों समकालीन हैं?

(१) रामानन्द का काल, सं० १३५६-१४६७।

(२) सिकन्दर लोदी का शासन काल, स० १५४५-१५७५।

(३) नवाब बिजली खाँ द्वारा बनाया गया कबीर का स्मारक, सं० १५०७।

यदि कबीर का काल सं० १४५५ से १५७५ तक माना जाय तो वे रामानन्द के शिष्य नहीं हो सकते, इसलिए लोगों ने रामानन्द की प्रामाणिक तिथि और आगे

---

१. चौदह सौ पचपन साल गए चंद्र वार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रकट भए॥

—कबीर चरित्र बोध, पृष्ठ ६।
(बोधसागर. स्वा० युगलानन्द द्वारा संशोधित)

दी है। उन्होंने रामानन्द का जन्म संवत् १४५६ (वास्तविक जन्म संवत् से १०० वर्ष बाद) माना है जो कपोल कल्पित है।

सिकंदर लोदी और कबीर की भेंट भी एक प्रकार से कपोल-कल्पना ही है। किसी इतिहास ग्रन्थ से यह घटना प्रमाणित नहीं होती। यदि किसी नवाब या सामन्त से कबीर की भेंट हुई भी हो तो वह सिकन्दर लोदी नहीं हो सकता।

ऐतिहासिक काल-क्रम और घटना-चक्र की दृष्टि से यदि किसी ने कबीर के काल पर विचार किया है तो प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी ने।[1] वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि कबीर का काल विक्रम की १५वीं शताब्दी के आगे किसी भी प्रकार नहीं जाता। सिकंदर लोदी के प्रसंग को वे पूर्णतः अप्रामाणिक मानते हैं। उनका मत है कि सवत् १४१७ से १४६१ तक का काल पूर्वी उत्तरी भारत में क्रान्ति का काल है। इन दिनों राजनीतिक क्रान्ति और धार्मिक क्रान्ति साथ-साथ चलती रही। कबीर साहब जैसे प्रबल प्रचारक के लिए यही समय सबसे उपयुक्त था। कबीर सं० १४०५ में उत्पन्न हुए और अपनी २५-३० वर्ष की आयु में सं० १४३०-३५ से उन्होंने अपनी बात लोगों से कहनी प्रारम्भ कर दी थी।

डॉ० रामकुमार वर्मा[2] डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं।

रही बात बिजली खाँ की। वह भी पूर्णरूपेण ऐतिहासिक और प्रामाणिक नहीं है। सं० १५०७ में नवाब बिजली खाँ ने कबीर का स्मारक बनवाया यह ठीक है किन्तु यह बात प्रमाणित नहीं होती कि यह स्मारक मृत्यु के समय का है या कबीर के जीवन-काल का?

वास्तव में बिजली खाँ द्वारा कबीर का स्मारक बनवाना उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना 'आर्किऑलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया' में उसका उल्लेख। यह उल्लेख पूर्णतः ऐतिहासिक है और गलत नहीं हो सकता। एक प्रकार से यह प्रमाणित तथ्य है। नवाब बिजली खाँ ने आमी नदी के किनारे कबीर का स्मारक सं० १५०७ में बनाया। कबीर की मृत्यु सं० १५०५ में हुई। मृत्यु के पश्चात् बिजली खाँ के मन में स्मारक बनाने की बात आयी होगी और उसके बनने में एक डेढ़ साल सहज ही लग गया होगा। अतः

---

१. 'कबीर जी का समय'

—हिंदुस्तानी, अप्रैल १९३२, पृ० २०७-१०।

२. संत कबीर।

—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४७।

यह स्मारक स० १५०७ में बनकर तैयार हुआ। इस ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर कबीर और बिजली खाँ का सम्बन्ध पूर्णत प्रमाणित हो जाता है।

इस सदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की शका द्रष्टव्य है।[१]

कबीर के काल निर्णय के सम्बन्ध में डॉ० राजनारायण मौर्य का निष्कर्ष ठोस प्रमाणो पर आधारित तथा सुचिंतित प्रतीत होता है।[२]

ऊपर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि जनश्रुति कबीर का जन्मकाल स० १४५५ तदनुसार सन् १३९८ ई० तथा उनका मृत्युकाल स० १५७५ तदनुसार सन् १५१८ ई० मानने के पक्ष में है।

नामदेव का जन्म काल सन् १२७० ई० और मृत्यु काल सन् १३५० ई० है। इस प्रकार नामदेव का जन्म कबीर से १२८ वर्ष पूर्व हुआ था। इतना ही नही नामदेव के मृत्युकाल और कबीर के जन्मकाल में भी ४८ वर्षों का अन्तर है। अत यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि नामदेव का काल कबीर के काल से एक शताब्दी पूर्व था।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि उत्तर भारत में भक्ति मार्ग को रामानन्द ले आये थे। सौभाग्य से उनको कबीर जैसा शिष्य मिल गया था। कबीर के अनुयायियो

---

१. 'उपलब्ध सामग्रियो पर विचार करते हुए इस प्रकार का निर्णय करने वालो की प्रवृत्ति इधर कबीर साहब के जीवनकाल को क्रमश कुछ पहले की ओर (सं० १४५५-१५७५) ही ले जाने की दीख पडती है। ऐसी दशा में कभी-कभी अनुमान होने लगता है कि उक्त समय (कबीर का काल) कही (स० १४२५-१५०५) के ही लगभग सिद्ध न हो जाय।'

—उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० १३६।

२ 'ऊपर के सभी तथ्यो का यदि पूर्णरूपेण विश्लेषण किया जाय और ऐतिहासिक दृष्टि से भी विचार किया जाय तो सेंट्रल लायब्रेरी पटियाला से प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ में दिया हुआ कबीर का काल ही ठीक जान पड़ता है।'

'श्री चतुर्वेदी जी के पास ऐसा कोई ठोस प्रमाण नही था जिसके आधार पर वे कबीर का काल स० १४०५-१५०५ बता सकते। किन्तु उन्हे लगने लगा कि स० १४५५-१५७५ वाला कबीर का काल पूर्णत प्रामाणिक नही है। इसीलिए उन्होने संदेह प्रकट किया कि कही स० १४२५-१५०५ के लगभग कबीर का काल न हो। मैं समझता हूँ कि अब एक प्रमाण मिल गया है और उसके आधार पर स० १४०५-१५०५ तक कबीर का काल मानने में कोई हर्ज नही है। मैं स्वय कबीर का यही काल मानता हूँ।'

—'हिन्दुस्तानी' वर्ष ३२।

में निम्नलिखित दोहा प्रचलित है।[1] परन्तु द्रविड़ देश में जो भक्ति उत्पन्न हुई थी उसका वही रूप नहीं है जो कबीर आदि निर्गुण संतों में प्राप्त होता है। रामानन्द ने रामानुजाचार्य के भक्ति सिद्धांतों को उत्तर भारत में अनेक प्रयोगों के साथ प्रस्तुत किया।

दक्षिण से उत्तर की ओर आने में भक्ति को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। पहली बाधा शैव संप्रदाय की थी। अपनी उत्तर की यात्रा में भक्ति की लहर जब महाराष्ट्र में पहुँची तो वहाँ शैव संप्रदाय का प्रभाव वर्तमान था। 'ज्ञानेश्वरी' के रचयिता संत ज्ञानेश्वर स्वयं नाथ पंथ के अनुयायी थे। वे गुरु गोरखनाथ की परम्परा में हुए।

ज्ञानेश्वर के समकालीन संत नामदेव ने विट्ठल की उपासना की जिसमें नाम-स्मरण का अत्यधिक महत्व है। यह विट्ठल सम्प्रदाय सन् १२०६ (सं० १२६६) के लगभग पंढरपुर में प्रचारित हुआ। इसके प्रचारक कन्नड़ संत पुंडलिक कहे जाते हैं। यह विट्ठल संप्रदाय वैष्णव और शैव संप्रदायों का मिश्रित रूप है। इस संप्रदाय के इष्टदेव विट्ठल एक सर्वव्यापी ब्रह्म के प्रतीक बनकर समस्त महाराष्ट्र के आराध्य बन गए। ऐसा ज्ञात होता है कि आठवीं शताब्दी के शैव धर्म से ग्यारहवीं शताब्दी के वैष्णव धर्म का समझौता विट्ठल सम्प्रदाय के रूप में हुआ जिसके सब से बड़े संत नामदेव हुए। विट्ठल संप्रदाय के अन्तर्गत होते हुए भी नामदेव ने मूर्तिपूजा पर बल न देकर नाम स्मरण पर ही अधिक बल दिया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उत्तर भारत में सन्त मत का जो उत्थान वैष्णव भक्ति को लेकर हुआ था उसका पूर्वार्द्ध महाराष्ट्र में विट्ठल सम्प्रदाय के सन्तों द्वारा प्रस्तुत हो चुका था जिनमें ज्ञानेश्वर और नामदेव प्रमुख थे। अपनी उत्तर भारत की यात्रा में इन दोनों ने १५वीं शताब्दी में प्रचारित होने वाले सन्त मत की भूमिका प्रस्तुत कर दी।

निर्गुण भक्ति के प्रेरकों में से एक रामानन्द माने जाते हैं किंतु इनके पूर्व ही सन्त नामदेव ने निर्गुण भक्ति का प्रचार पंजाब में प्रारम्भ किया था। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, नामदेव महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय के सन्त थे जिसमें सगुण भक्ति प्रचलित थी। किन्तु नाथ पंथी बिसोबा खेचर से दीक्षित होने के पश्चात् उनकी प्रवृत्ति निर्गुण भक्ति की ओर हुई और तत्कालीन महाराष्ट्र और पंजाब में प्रचलित नाथ पंथ का उन पर प्रभाव पड़ा। इस तरह निर्गुण पंथ के प्रवर्तक नामदेव ही हो सकते हैं

---

१. भक्ति द्राविड़ उपजी लाये रामानन्द।
प्रगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नव खण्ड॥

अन्य कोई नहीं। आचार्य शुक्ल ने भी इस बात की पुष्टि की है।[१]

श्री रामानन्द पर नामदेव का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा होगा क्योंकि रामानन्द ने उसी परम्परा को आगे बढ़ाया। इस सम्बन्ध में डॉ० शं० गो० तुलपुले का मत द्रष्टव्य है।[२]

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी का मत

'सम्मेलन पत्रिका'[३] में प्रकाशित अपने 'निर्गुण मत के प्रवर्तक नामदेव या कबीर' शीर्षक लेख के अन्त में डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये है—

(१) जहाँ वारकरी-साधना सगुणोपासना द्वारा निर्गुण की प्राप्ति नाम साधना से करती है वहाँ निर्गुण धारा गुरु भक्ति द्वारा सीधे निर्गुण गति के लिए 'शब्द-साधना' करती है। इन स्थिति में नामदेव की वारकरी साधना-धारा निर्गुनियों की साधना धारा से अपना कुछ वैशिष्ट्य रखती ही है और रखना भी चाहिए अन्यथा साधना की भूमि पर दोनो का भेद जाता रहेगा। इस प्रकार निर्गुण सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा का श्रेय तो कबीर को ही दिया जाना चाहिए क्योंकि उन्ही से इस धारा की अवि-च्छिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है।

(२) नामदेव और कबीर के बीच एक दीर्घकालीन व्यवधान भी है।

(३) सगुण का निरसन और निर्गुण पर बल-परिवेश और संस्कारों की दृष्टि से जितना कबीर के साथ चिपकता है उतना नामदेव के साथ नहीं।

(४) परम्परा उन्ही से निर्गुण साहित्य और साधकों के लिए 'निर्गुण' संज्ञा का प्रयोग करती आ रही है।

---

१. 'नामदेव की रचना के आधार पर कहा जा सकता है कि निर्गुण पंथ के लिए मार्ग निकालने वाले नाथ पंथ के जोगी और भक्त नामदेव थे।'

—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२।

२. 'भागवत धर्म का झंडा उत्तर में फहराने वाले नामदेव ही पहले सन्त थे। पंढरपुर की भक्ति मार्ग की लहर उन्होंने सीधे पंजाब पहुँचाई और उससे ही आगे रामानंद, कबीर, नानक, रैदास, पीपा आदि सन्त हुए।'

—पांच सन्त कवी, पृ० १६१।

३. सम्मेलन पत्रिका भाग—५३, संख्या—१, २

—पौष-जेष्ठ—शक १८८६।

(५) नामदेव और कबीर के बीच की कड़ी जोड़ने वाली साधना को नामदेव से प्राप्त कर आगे बढ़ाने वाला निर्गुण धारा में उस प्रकार नहीं मिलता जिस प्रकार कबीर की साधना को आगे बढ़ाने वाले निर्गुण धारा में अविच्छिन्न रूप से मिलते हैं।

(६) वारकरी साधक नामदेव से निर्गुनिये साधकों को पृथक् रखने का कारण यह भी संभावित है कि जिस प्रकार 'भागवत' के प्रभाव में रहने वाले वारकरी सगुणोपासना द्वारा निर्गुण दशा की सालम्ब उपलब्धि के बाद भी स्वरसतः द्वैत की कल्पित भूमिका पर ज्ञानोत्तर भक्ति की धारा में मग्न रहना चाहते हैं, निर्गुनिया सन्त वैसा न चाहते हों, उनका मार्ग भिन्न हो।

डॉ० रामपूर्ति त्रिपाठी के तर्क विचारणीय हैं परन्तु मैं समझता हूँ कि इनके तर्कों से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता।

(१) डॉ० रामपूर्ति त्रिपाठी ने 'नाम साधना' और 'शब्द-साधना' को अलग-अलग बतलाया है। इस प्रकार का वर्गीकरण वारकरी तथा निर्गुण साधना धाराओं के लिए उचित नहीं है। दोनों में नाम साधना और शब्द साधना का महत्त्व है। वारकरी सम्प्रदाय में कभी भी सगुण और निर्गुण नाम की दो स्तरों की उपासना-धारा नहीं रही। निर्गुण धारा की अविच्छिन्नता ही एक मात्र निकष नहीं है जिसके आधार पर कबीर को निर्गुण मत के प्रवर्तक होने का श्रेय मिले। हिंदी साहित्य के अधिकांश विद्वानों और साहित्य के इतिहासकारों का झुकाव अब नामदेव को निर्गुण मत के आद्य प्रवर्तक मानने के पक्ष में है।

(२) नामदेव और कबीर के बीच दीर्घकालीन व्यवधान होने की बात, कोई नई बात नहीं है। निर्गुण मत की सभी विशेषताएँ कबीर के पहले नामदेव में पाई जाती हैं, इसका प्रमाण मिल रहा है।

(३) 'सगुण का खण्डन' और 'निर्गुण पर बल' देने वाली बातें नामदेव की हिन्दी रचनाओं में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। सगुण के खण्डन और निर्गुण के मण्डन पर नामदेव ने भी उतना ही बल दिया है जितना कबीर ने।

(४) परम्परा उन्हीं (कबीर) से निर्गुण साहित्य और साधकों के लिए 'निर्गुण' संज्ञा का प्रयोग करती आ रही है।' डॉ० त्रिपाठी के इस आक्षेप के उत्तर में कहा जा सकता है कि नामदेव ने अपनी बात कही। परवर्ती साधकों ने उसे 'निर्गुण' विचारधारा का नाम दिया। स्वयं नामदेव ने कभी नहीं कहा कि मैं निर्गुण काव्य लिख रहा हूँ।

(५) डॉ० त्रिपाठी के इस आक्षेप में भी कोई सार नहीं है कि कबीर से निर्गुण धारा अविच्छिन्न रूप से बहती है परन्तु इस साधना धारा को नामदेव से प्राप्त कर

उसे आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं मिलता। वस्तुत नामदेव के पूर्व से ही इस धारा का प्रवाह चला आ रहा था किन्तु हिन्दी में इसे लाने का श्रेय नामदेव को ही है।

नामदेव के अस्तित्व से तथा उनके प्रदेय से इनकार नहीं किया जा सकता। नामदेव की हिंदी रचनाओं में इस साधना की सारी विशेषताएँ प्राप्त हैं नामदेव के बाद इस धारा को अपनाने वाला न मिला हो पर वह धारा समाप्त नहीं हुई। कबीर ने उसे अधिक पल्लवित किया। हो सकता है कि इस विचार-धारा का प्रचार करने वाले कवि हुए हो, उन्होंने रचनाएँ भी की हो परन्तु दुर्भाग्य से इस प्रकार की रचनाएँ प्राप्त नहीं होतीं।

(६) 'सुरत' आदि शब्दों का प्रयोग नामदेव में भी मिलता है। वे साधना की उस अवस्था तक अवश्य पहुँचे थे जहाँ तक कबीर। वास्तव में बात यह है कि उनका प्रारम्भ का मार्ग भिन्न था। वे सगुण से निर्गुण की ओर गये थे।

उद्देश्य दोनों का एक ही है—ब्रह्म की अनुभूति। दोनों की साधना-पद्धति में अन्तर अवश्य है। नामदेव को प्रारम्भ में सगुण को अपनाना आवश्यक था। सगुणोपासना की अनुपयुक्तता प्रतीत होने पर उन्होंने निर्गुणोपासना को अपनाया। कबीर पहले ही से निर्गुणोपासक थे।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह भली-भाँति सिद्ध होता है कि डॉ० रामर्मूति त्रिपाठी के तर्कों को ध्यान में रखकर नामदेव को निर्गुण मत का आद्य प्रवर्तक न मानकर कबीर को उसके प्रवर्तन का श्रेय देना अनुचित है। यह नामदेव के साथ सरासर अन्याय है।

इस अध्याय के प्रारम्भ में आचार्य शुक्ल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, आचार्य विनयमोहन शर्मा, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल तथा डॉ० सरनामसिंह आदि संत साहित्य के अध्येताओं के जो मत उद्धृत किये गये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि संत मत का बीजारोपण नामदेव द्वारा हुआ। संत नामदेव द्वारा लगाई इस बेलि को कबीर ने सींचा, विकसित किया और पुष्ट किया। आगे चलकर इस पथ के साथ कबीर की असाधारण प्रतिभा ने अपना नाम अमर कर लिया और नामदेव का नाम पीछे पड़ गया। वास्तव में कबीर और निर्गुण पंथ अन्योन्याश्रित हो गए। यदि कबीर न होते तो नामदेव द्वारा लगाई गई यह बेल सूख जाती।

किसी परम्परा को प्रारम्भ करना महत्त्वपूर्ण तो है ही, उससे भी महत्त्वपूर्ण है उसे सबल और समर्थ बनाकर उसका विकास करना। संत पीपा ने निर्गुण पंथ तथा संत मत के सम्बन्ध में दोनों—नामदेव और कबीर का महत्व समझा है। उन्होंने दोनों को एक-सा ही पद प्रदान किया है।

संत पीपा कहते है—यदि कलि काल में नामदेव और कबीर न होते तो लोक,

वेद और कलियुग मिलकर भक्ति को रसातल पहुँचा देते। पंडितों ने तरह-तरह से सगुण भक्ति की बातें कह कर जगत् को भरमाया और काया रोग बढ़ाया। गुरुमुख से निर्गुण भक्ति का उपदेश न पाने से वक्ता और श्रोता दोनों भ्रम में पड़े। इसमें हम जैसे पतित तो मार्गों की भूल भुलैया में भटकते ही रह जाते। त्रिगुणातीत भगवद् भक्ति विरला ही कोई पाता है। भक्ति का प्रताप रखने के लिए निज जन समक्ष उन्होंने स्वयं उपदेश दिया जिससे पीपा को भी कुछ मिल गया।[1]

पीपा का उपर्युक्त कथन सचमुच बड़े महत्त्व का है। निर्गुण भक्ति के लिए नामदेव और कबीर का ही नाम लिया जा सकता है। नामदेव कबीर के पूर्ववर्ती होने के कारण संत मत के प्रारम्भकर्त्ता कहे जायेंगे। अतः निःसंकोच रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि हिंदी साहित्य में संत मत के प्रवर्तक नामदेव ही हैं।

□□

---

१. जो कलि नाम कबीर न होते।
तौ लोक वेद अरु कलि जुग मिलि करि भगति रसातल देते॥
हम से पतित कहौ क्या कहते, कौन प्रतीति मन धरते।
नाना बरन देपि सुनो सवनों बहुमारग अनुसरते॥
नृगुणी भगति रहित भगवंता विरला कोई पावै।
सोई कृपा करि देहु कृपानिधि नाम कबीरा गावै॥
अपनी भगति काज हरि आपै, निज जन आप पठाया।
नाम कबीरा सांच प्रकास्या, तहाँ पीपै कछु पाया॥
—सर्वंगी (ह० लि० प्रति, पूना विश्वविद्यालय), पृ० ३१८।

सप्तम अध्याय

नामदेव का तत्कालीन और परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

नामदेव का तत्कालीन और परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

नामदेव की पंजाब यात्रा का रहस्य

प्राय: नामदेव के संबंध में यह प्रश्न उठाया जाता है कि वे महाराष्ट्र छोड़कर पंजाब क्यों गये ? क्या वे केवल भ्रमण के लिए गये थे अथवा इस भ्रमण के पीछे उनका कोई विशेष अभिप्राय था ? इसके अनेक कारण हो सकते हैं। वास्तव में बात यह है कि नामदेव एक जागरूक संत थे। भागवत धर्म के महान् प्रचारक थे। इस भागवत धर्म के उपदेशों की निधि उनके हाथ आयी थी। अथवा उसके संदेश से वे भली भाँति परिचित हो चुके थे और अब उसका प्रचार और प्रसार करना चाहते थे।[1] उन्हें समाज के लोक तथा परलोक की चिंता थी। मेरे विचार से अपनी पहली यात्रा में जब उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि उत्तर में धर्म और संस्कृति का ह्रास हो रहा है तो उन्होंने उत्तर में जाकर वहाँ की जनता को जाग्रत करने का निश्चय किया। अन्यथा वे पंढरी के विट्ठल को छोड़कर उत्तर कभी न जाते।

पंजाब की तत्कालीन परिस्थिति

इतिहास इस बात का साक्षी है कि विदेशी आक्रमणों के आघात सब से अधिक पंजाब को ही सहने पड़े है। भ्रमण करते करते नामदेव जब पंजाब पहुँचे तब उन्होंने देखा कि विदेशों के बढ़ते प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति को धोखा निर्माण हो गया है। यदि नामदेव और उनसे प्रेरणा-प्राप्त गुरु नानक यदि पंजाब को अपना कार्य क्षेत्र न बनाते तो देश के बटवारे के बाद पंजाब का जो हिस्सा आज भारत में है उससे भी हमें हाथ धोना पड़ता।

---

१. आम्हा सापडले वर्म। करूं भागवत धर्म ॥

—श्रीनामदेवगाथा, अभंग १४०३।
(महाराष्ट्र शासन प्रकाशन)

नामदेव के समय पंजाब की परिस्थिति अत्यंत प्रतिकूल थी। ६५७ ई० में महाराज हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य की परंपरा समाप्त हो गई। देश अनेक राज्यों में बँट गया जो पारस्परिक द्वेष और संघर्ष के कारण विदेशी आक्रमणों को विफल करने में असमर्थ रहे। क्षात्र-वृत्ति, पराकोटि की कमजोर, स्वार्थपरायण और विषयासक्त हो गई थी। आपस के बैर तथा अधिकार प्राप्ति के लिए विदेशियों की सहायता लेकर वह आत्मनाश कर रही थी। १२ वीं शताब्दी के अंत में पृथ्वीराज तथा जयचंद के आपस के बैर के कारण पंजाब को इन्हीं परिस्थितियों में से गुजरना पड़ा। ऐसी विषम परिस्थितियों में अपनी प्राचीन तथा सर्वश्रेष्ठ संस्कृति की रक्षा का महान् उत्तरदायित्व निर्भय तथा त्यागी संतों का होता है।

भागवत धर्म का अर्थात् भारतीय संस्कृति के परिणत स्वरूप का उत्तर की ओर प्रचार करने वाले नामदेव पहले संत है। उनको भारतीय संस्कृति की रक्षा तथा संवर्धन करना था। यह कार्य उन्होंने नाम संकीर्तन[1] द्वारा संपन्न किया। राजनीति की अपेक्षा मानवता का पुरस्कार करने वाली संस्कृति की रक्षा उनकी दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण थी। अतः उन्होंने स्थायी रूप से पंजाब में रहने का निश्चय किया हो।

ऊपर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि भारत के अन्य स्थानों की अपेक्षा पंजाब में विदेशियों के द्वारा भारतीय धर्म और संस्कृति को अधिक खतरा था। अतः नामदेव ने पंजाब को अपना कार्य क्षेत्र बनाने का निश्चय किया हो। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा इस बात का आग्रह किया कि लोग अपना मनोबल कायम रखें तथा आडम्बर-रहित जीवन बितायें। यही कारण है कि नामदेव ने संत के नाते बहुत उच्च कोटि की मान्यता प्राप्त की तथा उनकी रचनाओं का बहुत सम्मान किया गया।

नामदेव की महत्ता और उनकी रचनाओं का प्रसार

नामदेव की महत्ता का प्रमाण इसी से मिलता है कि महाराष्ट्र के उनके समकालीन तथा परवर्ती संतों ने उनका बड़े आदर के साथ स्मरण किया है।

संत तुकाराम की शिष्या संत बहिणाबाई का निम्नलिखित अभंग बहुत प्रसिद्ध है जिसका भाव इस प्रकार है—

'ज्ञानदेव ने भागवत धर्म के मंदिर की नींव (पाया) अपनी 'ज्ञानेश्वरी' के द्वारा डाली। नामदेव ने ज्ञानेश्वर द्वारा प्रस्थापित वारकरी पंथ का अपने अभंगों द्वारा

१, नाचू कीर्तनाचे रंगी। ज्ञानदीप लावूं जगी।

—श्रीनामदेवरायांची सार्थ गाथा (भाग तीसरा)
अभंग १५६, पृ० १८६।

विस्तार किया। एकनाथ ने अपने 'भागवत' की पताका फहराई और तुकाराम ने अभंगों की रचना कर इसके ऊपर कलश स्थापन किया।'[1]

संत ज्ञानेश्वर नामदेव की काव्य-कला के विषय में लिखते हुए कहते हैं—'नामदेव में कथन मात्र नहीं कवित्व है—उसका रस अद्भुत और निरुपम है।'[2]

एक अन्य स्थल पर वे लिखते है—'हे नामदेव! तेरी रचना सागर से भी अथाह तथा सरस है। वह रस-सिक्त है। उसे सुनने के लिए मेरा मन अधीर हो रहा है। अविलम्ब मुझे अपनी कोई रचना सुना।'[3]

नामदेव के यहाँ की दासी संत जनाबाई ने नामदेव के आध्यात्मिक ऋण को सहर्ष स्वीकार किया है। वे कहती हैं कि मेरे माता-पिता नामदेव धन्य हैं। उन्होंने मुझे पंढरीराया के दर्शन कराये।[4]

नामदेव की मधुर वाणी का वर्णन करते हुए उनके शिष्य परिसा भागवत कहते हैं—'नामदेव की अमृत-मधुर वाणी दूध की मलाई के समान है। उसका वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।'[5]

---

१. संत कृपा झाली। इमारत फला आली॥
ज्ञानदेवे रचिला पाया। उभारिले देवालया॥
नामा तयाचा किंकर। तेणें केला हा विस्तार॥
जनार्दन एकनाथ। ध्वज उभारिला भागवत॥
भजन करा सावकाश। तुका झाला से कलस॥ —भागवत संप्रदाय, पृष्ठ ५७२।

२. भक्त भागवत बहुसाल ऐकिजे। बहु होउनी गेले होती पुढे॥
परी नामयाचे बोलणें नव्हे हे कवित्व। हा रस अद्भुत निरोपम॥
—सकल संत गाथा, पृष्ठ ८७, अभंग ६२७।

३. सिंधुहूनि सखोल सुरस तुझे बोल। आनंदाचो बोल नित्य नवी॥
ते मज सादर ऐकवी सत्वर। श्रवण क्षुधातुर झाले माझे॥
—सकल संत गाथा, पृष्ठ ८७, अभंग ६२५।

४. धन्य माय बाप नामदेव माझा। तेणें पंढरी राजा दाखविले॥
—सकल संत गाथा, भाग छठा, जनाबाई के अभंग, अभंग ७८।

५. कवित्वा परीस कवित्व आगळें पै आहे।
परि ते न कळे सोय नामयाची॥
दुधावरील साय तें मी वाणूं काय।
तैसे गाणे गाय नामदेव॥
—सकल संत गाथा, अभंग १, परसा भागवत के अभंग।

संत तुकाराम ने भी नामदेव को अपने काव्य का प्रेरणा स्रोत बताया है।[1]

संत निलोबा राय ने अन्य संतो के साथ नामदेव का सादर स्मरण किया।[2]

नामदेव के पदो के कवित्व के सम्बन्ध मे स्वर्गीय प्रोफेसर वासुदेव बलवन्त पटवर्धन ने बबई विश्वविद्यालय की विल्सन फायलॉलॉजिकल व्याख्यान-माला में ये विचार प्रकट किये थे—

'नामदेव की कविता में हमें उस प्रकाश के रोमांच का अनुभव होता है जो समुद्र या धरती पर कभी नही उतरा, उस स्वप्न के दर्शन होते हैं जो इस मिट्टी की धरती पर कभी नही झलका। उस प्रेम की प्रतीति होती है जिसने कभी वासना को उत्तेजित नही किया। उसमें तो करुणा, विश्वास और भक्ति का 'रोमांच' है तथा मानव-आत्मा का प्रेम तथा परमात्म शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण है। उसमें हम भक्ति अथवा आध्यात्मिक प्रेम का रोमांच, हृदय का हृदय के प्रति सगीतमय निवेदन और उद्वेलित भावातुर हृदय के उद्गार पाते है।'[3]

---

१. नामदेवें केले स्वप्नामाजी जागे। सवें पांडुरंगे येऊनियाँ ॥
सांगितले काम करावें कवित्व। वाउगे निमित्त बोलों नये ॥

—तुकारामाचा गाथा, अभंग ३७३३।

२. निवृत्ती ज्ञानेश्वर सोपान। नामा सजना जाल्हण ॥
कूर्मा विसोबा खेचर। सावता चांगा वटेश्वर ॥
कबीर सेना सूरदास। नरसी मेहेता भानुदास ॥
निला म्हणे जनार्दन एका। देवचि होउन ठेला तुका ॥

—सकल संत गाथा, संत माहात्म्य।

3 Here we have the Romance of a light that never was on sea or land, of a dream that never settled on the world of clay, of love that never stirred the passion of sex Here is the Romance of the piety, of faith and devotion of surrender of human soul in the love, the light and the life of the ultimate being It is a Romance of Bhakti or Spiritual love that we have here It is the heart's song to the heart It is the outburst of the contents of the heart under excitement when the heart is touched or stirred or thrilled or roused into passionate life'

—श्रीनामदेवचरित्र (पुनर्मुद्रण १९५२) रं० ह० भालुकर।
प्रस्तावना (पृ० ७४-७५) से उद्धृत

नामदेव की लोकप्रियता का एक प्रमाण यह भी है कि उत्तरी भारत के निम्नलिखित उनके परवर्ती संत कवियों ने बड़ी श्रद्धा के साथ उनका स्मरण किया है—

कबीर ने नामदेव का नाम शुक, ऊद्धव, शंकर आदि ज्ञानियों के साथ लिया है—

जागे सुक उधव अकूर हुणवंत जागे लै लंगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जैदेव ॥[१]

कबीर के अनुसार वास्तव में गुरु कृपा से भक्ति साधना करते समय प्रेम का रहस्य केवल नामदेव तथा जयदेव ही जान सके थे—

गुर परसादी जैदेव नामा प्रगटि कै प्रेम इन्है कै जाना।[२]

नामा कबीर सु कौन थे पुन रांका बांका।
भगति समानो सब घरनि तजि कुल काना का ॥[३]

—रज्जब

जैसे नाम कबीर जो यौं साधु कहाया।
आदि अंत लौ आइकैं राम राम समाया ॥[४]

—स्वामी सुंदरदास

नामदेव कबीर जुलाहो जन रैदास तिरै।
दादू वेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरै ॥[५]

—दादू दयाल

ध्रू प्रल्हाद कबीर नामदेव पार्थांड कोई न राख्या।
बैठि इकंत नाव निज लीया वेद भागोत यूँ भाख्या ॥[६]

—बपनाजी।

नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना, सेनु तरै।
कहि रविदास सुनहु रे संतो, हरि जीउ ते सभै सरै।[७]

—रैदास।

---

१. कबीर ग्रन्थावली (प्रस्तावना), —पृ० १५।
२. कबीर ग्रन्थावली, —पृ० ३२८।
३. संत सुधासार, —पृ० ५२०।
४. संत सुधासार, —पृ० ५६०।
५. संत सुधासार, —पृ० ४४१।
६. संत सुधासार, —पृ० ५४३।
७. संत सुधासार, —पृ० १८३।

मध्ययुगीन नवजागरण के प्रणेता नामदेव

मध्ययुगीन भक्ति साहित्य को पराजय और प्रताड़ना का साहित्य कहकर उसे बराबर छोटा करने का प्रयत्न होता रहा है। इसमें सदेह नही कि गंगा की घाटी में हिंदू शक्ति की पराजय भारतीय संस्कृति के लिए एक बडी दुर्घटना थी और उसने हिंदू धर्म चेतना पर गहरा आघात पहुँचाया। परन्तु सौभाग्य से दक्षिण भारत इस प्रहार से बचा हुआ था और वहाँ वैष्णव धर्म तथा संस्कृति के रूप में भक्तिवाद पर आधारित व्यापक हिन्दू धर्म का विकास हो चुका था। १५० वर्षों बाद हम उत्तर भारत में हिंदू धर्म को वैष्णव भक्ति के रूप में नया संस्कार प्राप्त करते पाते है और उसको जीवन शक्ति से चकित हो जाते है। भयकर दमन, अराजकता तथा जन हानि के भीतर भी हिंदू मन अपनी स्वतत्रता तथा अतरंगिता को सुरक्षित रख सका, यह सचमुच चमत्कार से कम नही।

वास्तव म स्वामी रामानद (स० १२९९ ई०) से ही इस नव जागरण (रिनेसा) को सबद्ध कर सकते है। इस जागरण की भूमिका कुछ पहले ही महाराष्ट्र में सत ज्ञानेश्वर (१२७१-१२९६ ई०) और नामदेव (१२७०-१३५० ई०) के द्वारा स्थापित हो गई थी। यह इतिहास सिद्ध है कि इन दोनो सतो ने साथ-साथ उत्तर भारत की यात्रा की थी और मुसलमानो द्वारा महानाश का ताण्डव नृत्य स्वय देखा था। नामदेव के अभगो में उनकी हृदय वेदना स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित हुई है। वे कहते है—

'पत्थर के देवताओ को मुसलमानो ने तोड़ा फोड़ा और पानी में डुबो दिया फिर भी वे न क्रोध करते है, न क्रदन करते है। हे ईश्वर ! मैं ऐसे देवताओं का दर्शन नही चाहता।'[1]

समवत यह क्राति की पहली आवाज थी जिसमें उस युग का हृदय मथन प्रतिध्वनित हुआ था। ज्ञानेश्वर के समाधि (सन् १२९६ ई०) लेने के पश्चात् नामदेव उत्तर भारत लौटे और उन्होंने अपना दीर्घ जीवन वहीं व्यतीत किया। नामदेव को इस बात का श्रेय मिलना चाहिए कि उन्होंने हिंदुओं की धार्मिक और सामाजिक त्रुटियों को पहचाना और उनको ध्यान में रखते हुए नये युग धर्म के अनुरूप एक अत्यन्त सहृष्णु, उदार तथा क्रातिकारी समाधान हिंदू-मात्र के सामने रखा।

---

१. ऐसे दव हेहि फोडिले तुरकी। घातले उदकी वाजातिना।
ऐसी ही देवतें नको दाखू देवा। नामा केशवा विनवितस॥
—सकल सत गाथा, नामदेव महाराजाचे अभग, अभग १९६७।

जाति-हीनत्व, क्षुद्र देवता, तीर्थों के अनाचार तथा शास्त्र-ज्ञान के अभिमान के विरुद्ध नामदेव की वाणी तेजस्वी हो गई। वह समझौता करना जानती ही नहीं। हिंदुत्व के अभिमान की धारणा करते हुए उन्होंने विशुद्ध हृदय-धर्म को आधार भूत सत्य माना और तत्त्व-वाद के रूप में मंदिर-मसजिद के बीच ऐसी समन्वय-भूमि की खोज की जहाँ मनुष्य अपने मानव रूप में ही गौरवान्वित हो सकता था। इसमें कोई संदेह नहीं कि नामदेव जैसे हीन वर्ण संतों के अडिग विश्वास ने ही धर्म-परिवर्तन की बाढ़ को रोका। उनकी रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका दर्शन (निर्गुणोपासना) उत्तर भारत की नई धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थिति की उपज था।

महाराष्ट्र के स्वतंत्र वातावरण में उन्होंने सगुण भक्ति के आधार पर हिन्दू धर्म के अन्तर्गत वर्णहीन सामाजिक जीवन की कल्पना की और उत्तरी भारत के इस्लामी परिवेश में उन्होंने अपने योग-भक्ति-वेदांत के समीकरण को एक ऐसा नया रूप दिया जो तत्कालीन सूफी मतवाद के निकट पड़ता था। वास्तव में निर्गुण मत दक्षिण के वैष्णव भक्तिवाद का वह परिस्थितिजन्य रूप है जिसने उत्तर भारत की १४वीं शताब्दी की हिन्दू चेतना में जन्म लिया था।

इस प्रकार नामदेव ने विदेशी संस्कृति के आघात से उत्पन्न धर्म संकोच तथा प्रतिक्रियावाद का सामना किया। सन् १३१८ ई० के पश्चात् महाराष्ट्र में मुसलमानों का शासन स्थापित हो जाने के बाद उत्तर भारत की तरह दक्षिण में भी सामाजिक और धार्मिक संकट उठ खड़ा हुआ। नामदेव के वारकरी संप्रदाय को इस नई विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा।

महाराष्ट्र में नामदेव की परम्परा परवर्ती संतों जैसे संत चोखामेला, संत भानुदास, संत निलोबा राय, जनार्दन स्वामी, दासोपंत, एकनाथ आदि में विकसित हुई और उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द के निर्गुणोपासक तथा सगुणोपासक शिष्यों में से होती हुई कबीर, नानक, दादू, रज्जब तथा तुलसीदास में पल्लवित हुई। इन कवि-साधकों में हम इस्लाम के विरुद्ध प्रतिक्रिया भावना को उत्तरोत्तर तीव्र और गहन होता देखते हैं। एकनाथ और तुलसीदास में इसकी सबसे प्रौढ़ सांस्कृतिक और साहित्यिक अभिव्यक्ति हमें मिलती है। डॉ० रामरतन भटनागर के अनुसार—'इस प्रकार १३०० ई० से १६०० ई० तक मध्ययुगीन नव जागरण का चक्र बड़ी तीव्र गति से ऊपर की ओर चढ़ता है। रामानन्द से पहले नामदेव को छोड़कर सारे उत्तर भारत में ऐसा कोई संत नहीं मिलता जो इस परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हो सके। संभवतः गोरखनाथ और

योगी भी इस प्रक्रिया में सहायक हुए परन्तु इस्लामी प्रहार की चोट को मुख्यत: नामदेव ने ही संभाला।'[१]

नामदेव का व्यक्तित्व

नामदेव का व्यक्तित्व महान् था। वे एक पहुँचे हुए तथा उच्चकोटि के संत थे। उनको साक्षात्कार हुआ था। उन्होंने, जिन दिनों उत्तर भारत में अराजकता फैली हुई थी, विदेशी आक्रमणों के कारण जनता हत-बुद्ध हो गई थी, ऐसे संक्रमण-काल में, पंजाब में निवास कर जनता को बहुदेवोपासना, कृत्रिम आचार-विचार, जातिभेद आदि के प्रति सजग किया। भारत में जो विदेशी संस्कृति अपने पैर जमा रही थी वह भारतीय जनता के इन दोषों से लाभ उठाकर अपना विस्तार कर सकती थी। नामदेव ने ढाल बनकर हिंदू धर्म तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा की। वैभव और शक्ति के आकर्षण को त्यागकर हिन्दू धर्म से चिपटे रहना बड़े साहस की बात थी परन्तु हिन्दू जनता ने तपस्या का मार्ग अपनाया। इस प्रकार की मनोदशा के लिए बड़ी तैयारी की आवश्यकता थी जिसकी पार्श्वभूमि नामदेव ने तैयार की। नामदेव ने अपने उपदेशों से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कबीर तथा अन्य परवर्ती सन्तों का मार्ग प्रशस्त किया।

नामदेव ने जहाँ उत्तर में युगानुरूप अपने क्रांतिकारी विचारों से युगान्तर उपस्थित कर दिया वहाँ उन्होंने हिंदी साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली के पद्य को विभिन्न राग-रागिनियों की पद शैली भी प्रदान की। सचमुच नामदेव ने एक युग-प्रवर्तक का कार्य किया। प्रचार तथा यातायात के साधनों का जिस काल में अभाव था, उस काल में नामदेव ने जो महान् कार्य किया उसे देखकर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इस्लाम के आक्रमण की छाया में उन्होंने उत्तर के हिन्दू-मात्र को भागवत् धर्म के झंडे के नीचे एकत्रित किया। इतिहास में इसका प्रमाण मुश्किल से मिलेगा। नामदेव की परम्परा में ही आगे चलकर रामानन्द और कबीर हुए। महाराष्ट्र के इस सन्त कवि के ऋण से पंजाब उऋण नहीं हो सकता। नामदेव ने यह कार्य स्वार्थवश नहीं बल्कि भक्ति-प्रेम तथा मानवता-प्रेम के कारण किया। परमात्मा से वे यही प्रार्थना करते हैं—'सन्त सदा सुखी हों, हरि के दास चिरंजीव हों, जिनकी जिह्वा पर पांडुरंग का नाम है उनका कल्याण हो।'[२]

---

१. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, पृष्ठ ४।

—डॉ० रामरतन भटनागर।

२. आकल्प आयुष्य व्हावे तया कुळा। माझिया सकळा हरिच्या दासा।
कल्पनेची बाधा न हो कोणे काळी। हे संत मण्डळी सुखी असो॥

आचार्य विनयमोहन शर्मा के अनुसार नामदेव हिंदी के अपने समय के (१) निर्गुण भक्ति के प्रथम प्रचारक और (२) हिंदी में गीत शैली के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं।[1]

सन्त पीपा नामदेव के कर्तृत्व का गौरव इन शब्दों में करते हैं—

जै कलि नाम कबीर न होते।
तौ लोक वेद अरु कलि जुग मिलि करि भगति रसातल देते ॥
हमसे पतित कहाँ क्या कहते, कौन प्रतीति मन धरते ॥
नाना बरन देखि सुनि स्रवनौ बहु मारग अनुसरते ॥
नृगुणी भगति रहित भगवता विरला कोई पावै ॥
सोइ कृपा करि देहु कृपानिधि नाम कबीरा गावै ॥
अपनी भगति काज हरि आपै, निज जन आप पठाया।
नाम कबीरा साँच प्रकास्या, तहाँ पीपै कछु पाया ॥[2]

सन्त पीपा का उपर्युक्त कथन सचमुच बड़े महत्त्व का है।

नामदेव की रचनाओं का प्रसार

सन्त नामदेव की मातृभाषा मराठी थी। अतः उनका अपने विचार मराठी में व्यक्त करना स्वाभाविक ही समझा जायेगा। परन्तु हिंदी में भी प्रचुर मात्रा में उनकी रचनाएं उपलब्ध हुई हैं। नामदेव की अमृत-मधुर तथा रस-सिक्त वाणी को जो लोकप्रियता मिली वह कदाचित् ही किसी संत कवि को मिली हो। उनकी भक्ति-रस परिप्लुत वाणी ने महाराष्ट्रीय ही नहीं बल्कि उत्तर भारत की जनता को भी मोह लिया है। पंजाबी भक्त-जन आज भी श्रद्धायुक्त अंतःकरण से नामदेव की हिंदी रचनाओं का पाठ करते हैं जिससे ज्ञात होता है कि मराठी के समान उनकी हिन्दी रचना भी बड़ी सरस तथा गेय है।

हिन्दी काव्य रचना का प्रयोजन

नामदेव एक भ्रमण-प्रिय सन्त थे। उन्होंने सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, पंजाब

अहंकाराचा वारा न लागो राजसा। माझ्या विष्णुदासा भाविकासी ॥
नामा म्हणे तया असावें कल्याण, ज्या मुखी निधान पांडुरंग ॥
—सकल संत गाथा, नामदेव अभंग ८८३।

१. हिंदी को मराठी सन्तों की देन, पृ० १३०।
२. सर्वंगी (ह० लि० प्रति जयकर ग्रंथालय, पूना विश्वविद्यालय) पृष्ठ ३१८।

आदि स्थानों की दो बार यात्रा की थी। पहली यात्रा उन्होंने संत ज्ञानेश्वर के साथ की जिसका उल्लेख उनके 'तीर्थावली' के अभंगों में मिलता है।

भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार को ही अपना जीवित कार्य मानकर जीवन के उत्तरार्द्ध में, लगभग बीस वर्ष, जीवन के अन्त तक वे पंजाब में रहे। संत ज्ञानेश्वर का लोकोद्धार का कार्य उन्होंने अखण्ड रूप से जारी रखा। उनका आदर्श था—'कीर्तन करते समय भावावेश में आकर मैं नाचूँगा और ज्ञानदीप प्रज्वलित कर अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करूँगा।'[1]

उत्तर भारत में भागवत धर्म की ध्वजा फहराने वाले नामदेव प्रथम सन्त हैं। पंढरपुर की भक्ति सरिता को वे सीधे पंजाब ले गये। यात्रा काल में तथा पंजाब-निवास के काल में अपने विचार उत्तर भारत की जनता को समझाने के लिए उन्होंने हिन्दी को अपनाया।

सन्त नामदेव ने मराठी में अभंगों (पदों) की रचना की है जिनकी संख्या लगभग ढाई हजार है। मराठी के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी में भी रचना की है। उनकी कुछ हिन्दी रचनाएँ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' में संग्रहीत हैं जिनकी संख्या ६१ है। इनके मराठी के अभंगों का संग्रह 'नामदेव की गाथा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस गाथा में भी नामदेव के १०२ पद हिन्दी के संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त कई प्राचीन हस्तलिखित पोथियाँ हैं जिनमें नामदेव के हिन्दी पद मिलते हैं। विभिन्न स्रोतों से कुल मिलाकर अब तक लगभग तीन सौ बीस पद प्राप्त हो चुके हैं।

श्री गुरु ग्रन्थ साहब में नामदेव के पद एक स्थान पर नहीं हैं। वे संपूर्ण ग्रन्थ में बिखरे हुए हैं। नीचे पदों की संख्या और श्री गुरु ग्रन्थ साहब के पृष्ठों की सूची दी जा रही है जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि नामदेव के पद कहाँ-कहाँ हैं—

पृष्ठ	पद संख्या
३४५	१
४८५	२ से ६ तक
५२५	७ से ८ तक
६५५-६५६	९ से ११ तक
६९१-६९२	१२ से १६ तक
७१८	१७ से १९ तक
८५७	२० से २३ तक

---

१ नाचू कीर्तनाचे रंगी। ज्ञानदीप लावू जगी।

—श्री नामदेवरायाची सार्थ गाथा (भाग तीसरा) अभंग १५९, पृ० १७६।

८७२	२४ से २९ तक
९७२	३० से ३३ तक
९९०	३४ से ३६ तक
११०३	३७
११६४	३८ से ४८ तक
११६८	४९
११९५	५० से ५२ तक
१२५१	५३ से ५५ तक
१२९१	५६ से ५७ तक
१३१८	५८
१३४९	५९ से ६१ तक

श्री गुरु ग्रन्थ साहब में पदो का विभाजन रागो, महलो और घरों में हुआ है। 'ग्रन्थ' की सूची में ही दिया है कि किस पृष्ठ पर नामदेव के पद है। गुरु नानक तथा अन्य गुरुओ के पदों के लिए सूची में नाम नही है। शेष सभी सन्तो के नाम और पृष्ठ दिये गये है। जिन रागो और पदो के लिए सूची में किसी का नाम नही है वे सभी पद गुरु नानक तथा सिक्ख गुरुओं के हैं।

यहाँ एक प्रश्न स्वभावत: उठता कि सिक्खो के धार्मिक ग्रन्थ में महाराष्ट्रीय संत नामदेव के हिन्दी पदो का संग्रह क्यो किया गया ? 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' मे गुरु नानक तथा अन्य सिक्ख गुरुओं के अतिरिक्त कबीर, नामदेव, त्रिलोचन, वेणी, जैदेव, रविदास, शेख फरीद आदि की रचनाएँ संग्रहीत है। श्री नानक और कबीर के बाद संत नामदेव के ही पद अधिक हैं, जिससे यह प्रमाणित हो जाता है कि सन्त नामदेव की हिन्दी रचनाएँ श्री गुरु ग्रन्थ साहब के संकलन के समय प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। सन्तो की परम्परा में अन्य भी अनेक सन्त हुए होगे किन्तु श्री गुरु ग्रन्थ के संकलनकर्ता ने इन्ही सन्तो के रचनाएँ संकलित की। निश्चय ही ये सन्त इस समय तक जन मानस में स्थान बना चुके थे। सन्त नामदेव यद्यपि महाराष्ट्रीय सन्त थे और उनकी रचनाएँ भी पर्याप्त नही थी फिर भी वे 'श्री गुरु ग्रन्थ' के संकलन में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने को अधिकारी हुए।

निर्गुण पन्थ के आदि प्रवर्तक संत नामदेव की रचनाओं को 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' में स्थान मिलना आश्चर्य की बात नही है क्योंकि उन्होंने अपनी भक्ति-साधना और हिंदी पदो के द्वारा तत्कालीन सन्त समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था।

यहाँ एक बात और विचारणीय है। जिस समय 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' का संकलन हुआ था उसका स्वरूप साम्प्रदायिक नही था। गुरु अर्जुनदेव ने तत्कालीन

प्रसिद्ध सन्तो की रचनाओ का सग्रह किसी विशिष्ट साम्प्रदायिक आधार पर नही किया था। यदि उनमे जरा भी साम्प्रदायिक भावना होती तो गुरु नानक तथा गुरुओ के अतिरिक्त अन्य सन्तो के पद सग्रहीत न होते।

'श्री गुरु ग्रथ साहब' के सकलन का आधार एक विशिष्ट परम्परा के सन्तो की रचनाओ का सग्रह अवश्य रहा होगा। इसलिए जयदेव के अतिरिक्त सभी सन्त निर्गुण परम्परा के ही है। सन्त नामदेव की रचनाओ के 'ग्रन्थ साहब' में सकलित होने का यही कारण हो सकता है। जयदेव का इस सग्रह मे स्थान देने का कारण भक्ति के क्षेत्र मे उनकी प्रसिद्धि हो सकती है।

इस सदर्भ म रज्जब की 'सबगी' का महत्त्व अधिक है। रज्जब ने बहुत से सन्तों तथा महात्माओ की वाणियो को विषयानुसार एकत्र कर उन्हे अपनी 'सर्वंगी' नामक बृहत् ग्रन्थ में सग्रहीत किया, जिसमे नामदेव के भी ५२ पद संग्रहीत हैं। 'सर्वंगी' का संग्रह गुरु अजु नसिंह के काल में ही अथवा कुछ वर्ष आगे पीछे हुआ होगा क्योकि रज्जब का काल ई० स० १५६७ १६८६ है। 'गुरु ग्रन्थ' में गुरु गोविंदसिंह द्वारा कुछ परिवर्तन भी किया गया है पर 'सर्वंगी' में कोई परिवर्तन नही हुआ है इससे नामदेव की हिन्दी रचनाओ का महत्त्व समझ में आता है।

सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ पथ

चौरासी सिद्धो की सूची में नाथ पथ के कुछ प्रमुख आचार्यों के नाम गिन लिए जाते है। जैसे मीनपा (बौद्ध सिद्ध), मत्स्येन्द्रनाथ (नाथ पथी), गोरख पा (बौद्ध सिद्ध), गोरखनाथ (नाथ पथी), जलन्धर पा (बौद्ध सिद्ध), जालन्धर नाथ (नाथ पथी), तारानाथ, हरप्रसाद शास्त्री जैसे विद्वानो का तो कहना है कि गोरखनाथ वस्तुत पहले बौद्ध थे और बाद में शैव हो गये। इस तरह इन दोनो सम्प्रदायो का घनिष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है।

जहाँ तक अत साधना, पाखण्ड-खण्डन, मूर्तिपूजा, तीर्थस्थान, व्रत नियम आदि बाह्याडम्बरो का विरोध, शास्त्र ज्ञान की व्यर्थता, गुरु-उपदेश का महत्त्व, नादबिंदु की चर्चा, स्वसवेद्यता तथा अनिर्वचनीयता का प्रश्न है सत नामदेव अपने पूर्ववर्ती इन सिद्धो तथा नाथो से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित दिखाई देते है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने "नाथ सिद्धो की बानियाँ" नामक सग्रह में जिन नाथ सिद्धो की ब नियाँ सग्रहीत की है उनमें से अधिकाश चौदहवी शताब्दी (ईसवी) के पूर्ववर्ती है। कुछ चौदहवी शताब्दी के है और बहुत थोड़ उसके बाद के है।

सत नामदेव का जीवन काल (स० १२७० १३५० ई०) १३वी शती का उत्तरार्द्ध तथा १४वी शती का पूर्वार्द्ध है। यहाँ उनके पूर्ववर्ती नाथ सिद्धो की रचनाओ

से जो उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है उनसे स्पष्ट होता है कि नामदेव उनसे किस प्रकार प्रभावित है। नामदेव ने भी उसी प्रकार की बातें कही हैं जिस प्रकार की इन नाथो तथा सिद्धों ने कही है। कुछ उदाहरण नामदेव के समकालीन नाथो की रचनाओ से भी प्रस्तुत किये गये है।

सिद्ध और नाथ पंथी दोनों दार्शनिक योगी थे, परम तत्त्व के अन्वेषक। दोनों ने परमात्मा को बाह्य जगत् में न ढूंढ़ा। "घट" के भीतर ही परम तत्त्व का निवास है। वहीं शून्य का साक्षात्कार हो सकता है। दोनो का यही सिद्धांत था। फलतः दोनों ने अन्तःसाधना पर जोर दिया। सरह (८वी शताब्दी) ने 'घट' के बाहर परमात्मा को ढूढ़ने वाले पंडितों को खूब फटकारा "घट" में बुद्ध है यह नहीं जानता। आवागमन को भी खण्डित नही किया। तो भी निर्लज्ज कहता है कि मैं 'पण्डित हूँ।'[1]

'मूर्ख जो वस्तु घर में है उसे बाहर ढूढता है। जैसे कोई मूढ़ नारी पति को सामने देख रही हो फिर भी पड़ोसी मे पूछ रही हो कि वह कहाँ है। अरे मूर्ख आत्मा को पहचानने की कोशिश कर क्योंकि वह ध्यान, धारण या जप से नही मिलता।'[2]

नाथ पंथियो ने भी परम तत्त्व को न हिन्दू के मन्दिर मे देखा न मुसलमानों की मस्जिद में। क्योकि योगी तो उसे वहाँ देखता है जहाँ न मन्दिर है न मस्जिद। अर्थात् अपने 'घट' मे ही उसका साक्षात्कार करता है।[3]

---

१. पंडिअ सअल सत्त नक्खाणइ।
देहहिं बुद्ध बसन्त ण जाणइ॥
अमणा गमण ण तेन बिखण्डिअ।
तोवि णिलज्ज भणइ हउं पण्डिअ॥
"सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ पंथ के पारस्परिक साम्य और वैषम्य" शीर्षक लेख
—"साहित्य सन्देश" मार्च १९५३ पृष्ठ ३६८।

२. घरे अच्छइ बाहिरे पुच्छइ।
पइ देक्खइ पडिवेसी पुच्छइ॥
सरह भणइ वढ़ जाणउ अप्पा।
णउ सो धेअण, धारण जप्पा॥

३. हिंदू ध्यावे देउरा।
मुसलमान मसीत॥
योगी ध्यावे परम पद।
जहाँ देउरा न मसीत।
—'साहित्य सन्देश' (मार्च १९५३) पृ० ३६८।

गोरखपंथी योगियो के अनुसार सारे तीर्थ काया गढ के भीतर ही है।[१]

जिस तरह अन्त साधना पर इन दोनो पंथो में जोर दिया गया है उसी तरह बाह्याडम्बरो के तीव्र विरोध पर भी क्योकि बाह्याडम्बर अन्त. साधना का प्रबल शत्रु है।

बोधिसत्वो को ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि की पूजा नही करनी चाहिए। पत्थर आदि देवताओ की भी पूजा नही करनी चाहिए। न तीर्थ जाना चाहिए। बाह्य देव-पूजा से मोक्ष नही मिलता।[२]

भिन्न भिन्न तीर्थों मे घूम कर अनेक देवताओ की पूजा वा आराधना को योगियो ने मूर्खता कहा है।[३]

वेद पुराणादि के अध्ययन से पंडित फूला नही समाता किन्तु जैसे पके बेल के चारो ओर भौंरा मँडराता ही है, कुछ पाता नही वैसे ही यह पंडित भी बाहर ही बाहर भ्रमता है, कुछ समझता नही।[४]

गोरख (६वी शताब्दी) ने शास्त्रीय ज्ञान की स्पष्ट शब्दो मे निंदा की है।[५]

"नाद" और "बिन्दु" इन दोनो तत्वो से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई है इसे सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ पंथ दोनो ही स्वीकार करते है।[६]

---

१. घट ही भीतर अठसठी तीरथ।
कहाँ भ्रमई रे भाई॥

२. ब्रह्मा विहणु महेसुर देवा।
बोहिसत्त मा करहू सेवा।
देव णे पूजहु तित्थ ण जावा।
देव पूजा ही तित्थ ण जावा॥

—साहित्य सन्देश (मार्च १९५३) पृष्ठ ३६८।

३. न्हाइबे को तीरथ न पूजिबे को देव।
भणंत गोरख अलख अभेव॥

४ आगम वेअ पुराणेहि पण्डिअ माण वहंति।
पक्क सिरीफले अलिअ जिमि बहिरिअ भमन्ति॥

५ वेदे न शास्त्रे कतेबे न पुराने।
पुस्तके न बाच्या जाई।
वेवत जानी विरला योगी।
और दुनि सब धंधे लागी॥

६. नादांशो नादो नादांश प्राण। शक्त्यंशो बिन्दु।
बिन्दोरश शरीरम्।

परम तत्व की उपलब्धि होने पर अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। नाथपंथी उस अनिर्वचनीयता को इस प्रकार व्यक्त करते है।[१]

इस सम्बन्ध में सिद्ध लुइपा (६वी शताब्दी) का कथन भी द्रष्टव्य है।[२]

इस अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति गुरु उपदेश के बिना असंभव है। सरहपा कहते है कि जिसने दौड़कर गुरु-उपदेश के अमृत रस का पान नहीं किया वह वृथा शास्त्रार्थ रूप मरुस्थल में प्यासा ही मर गया।[3]

इसी तरह नाथ पंथ में "निगुरे" की गति नहीं है।[४]

चरपटी नाथ (गोरखनाथ के थोड़े परवर्ती) बाह्याडम्बरों की निंदा करते हुए कहते हैं—"नहा धोकर अंग प्रक्षालन करता है। बाहर से तो स्वच्छ है परन्तु भीतर से मलीन। होम तथा जप भी करता है। एकादशी का व्रत भी रखता है किन्तु परब्रह्म का स्मरण नहीं करता।"[५]

नाग अरजन (१२वी शताब्दी) कहते है कि "अहकार को दूर कर गुरु को

---

१. शिवं न जानामि कथं वदामि।
शिवं च जानामि कथ वदामि॥

२. भाव न होई, अभाव न होई।
अइस संबोहे को पतिआइ।

३. गुरु-उवए से अमिअ-रस।
धावण पीअउ जेहि॥
बहु सत्यत्थ मरुत्थलहि।
तिसिए मरिअउ तेहि॥
—"सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ पन्थ के पारस्परिक साम्य और वैषम्य" शीर्षक लेख 'साहित्य सन्देश, मार्च १९५३ से उद्धृत।

४. गुरु कीजै गहिला, निगुरा न रहिला।
गुरु बिन ज्ञानं न पाइला रे भाईला॥
—"सिद्ध सम्प्रदाय और नाथ पन्थ के पारस्परिक साम्य और वैषम्य" (शीर्षक लेख) "साहित्य सन्देश" मार्च १९५३ से उद्धृत।

५. न्हावैं धोवै पखालैं अंग।
भीतरि मैला बाहरि चंग॥
होम जाप इग्यारी करैं।
पारब्रह्म के सुध न धरैं। ॥१५॥ ॥१५६॥
—नाथ सिद्धो की बानियाँ, पृष्ठ २७।

स्थान देकर, "उनमन की डोरी" से जब मन खींचा जाता है तब परम ज्योति का साक्षात्कार होता है।"[1]

हणवतजी (चौदहवीं शताब्दी के पूर्व के) "घट" के भीतर ही परम तत्त्व का साक्षात्कार कर लेने को कहते हैं—"अडसठ तीर्थ जिसके चरणों में है वही देव तुम्हारे अतःकरण में है। उसे पाने के लिए बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं।"[2]

घूघली मल (१२वीं शती का उत्तरार्द्ध) कहते हैं—' जो सोये वे नष्ट हुए। उनका जन्म व्यर्थ हो गया। काल रूपी अहेरी ने देखते-देखते काया रूपी हरिणी का तथा ससार का संहार किया।"[3]

नामदेव के समकालीन संत

सिक्खों के चौथे गुरु अर्जुनदेव ने सं० १६६१ में जिस *"आदि ग्रंथ"* का संग्रह कराया उसमें स्वामी रामानन्द और उनके शिष्यों की कविताएँ भी संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त जिन अन्य संतों की कविता का भी "आदि ग्रन्थ" में संग्रह किया गया है वे हैं जयदेव, नामदेव और त्रिलोचन। इनमें से अंतिम दो का नाम कबीर ने कई बार

---

१. आपा मेटिला सतगुर थापिला।
न करिवा जोग जुगति का हेला।
उनमन डोरी जब पैंचीला।
तब सहज जोति का मेला ॥२॥ ॥४२६॥

—नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृष्ठ ६७।

२. अटसठि तीरथ जाके चरणा।
सोई देव तुम्हारे अंतहकरना।
हणवंत कहे मन अस्थिर धरणा।
बाहरि कितहू भटकि न मरणां ॥६॥ ७४६॥

—नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृष्ठ १२७।

३. आइस जी सोवो ॥
बाबा से सूता वे घरा विगूता।
जनम गया अरु हारया ॥
काया हिरणी काल अहेडी।
हम देषत जग मार्‌या ॥६॥ ४१६॥

—नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृष्ठ ६५।

लिया है।[1]

संत जयदेव, संस्कृत के शृङ्गारी कवि जयदेव से निश्चय ही भिन्न है। उनके सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। वे जिस राजा लक्ष्मण सेन की सभा के पंच रत्नों में से एक थे उसका राजत्व काल सन् ११७० ई० से आरम्भ होता है। अतः ये नामदेव के समकालीन नहीं हो सकते। उनके दो पद "श्री गुरु ग्रंथ साहब" में संग्रहीत हैं।

त्रिलोचन : फरकुहर ने त्रिलोचन को नामदेव का समकालीन माना है। इनकी कुछ कविता "आदि ग्रन्थ" में संग्रहीत है। इनकी अन्य रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं।

यह बड़े खेद की बात है कि नामदेव का समकालीन संत साहित्य प्राप्त नहीं होता। संतों की एक परम्परा होती है। किसी संत का एकाएक आविर्भाव नहीं होता। नामदेव के समसामयिक संत अवश्य हुए होंगे, उन्होंने रचनाएँ भी की होंगी परन्तु दुर्भाग्य से वे रचनाएँ प्राप्त नहीं होतीं। जो थोड़ी बहुत फुटकर रचनाएँ प्राप्त होती हैं उनमें निर्गुण विचारधारा के बहुत से तत्व उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः ये सारे संत उसी परम्परा के थे। जैसा ये लोग लिख रहे थे वैसे नामदेव भी लिख रहे थे। दोनों एक दूसरे से प्रभाव ग्रहण कर रहे थे।

नामदेव का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव

वास्तव में ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तन और कबीर तथा उत्तरी भारत की संत परम्परा पर नामदेव का जितना प्रभाव पड़ा उतना अन्य किसी संत का नहीं। परिणाम-स्वरूप उनकी हिंदी रचनाओं की प्रवृत्तियों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। कालान्तर में ये ही प्रवृत्तियाँ निर्गुण विचारधारा के संतों और उनके काव्य का प्रेरणा-स्रोत बनीं और उसका अभिन्न अंग बन गईं।

अब हम यह सिद्ध करेंगे कि नामदेव के हिंदी पदों में निर्गुण विचारधारा की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। साथ-साथ यह दिखाने का प्रयत्न किया जायेगा परवर्ती संत नामदेव से किस प्रकार प्रभावित हुए हैं।

(१) ईश्वर की सर्वव्यापकता—परमात्मा ही एक मात्र सब कुछ है, वही सबके बाहर तथा भीतर सब कहीं व्याप्त है और उसी के प्रति एकातनिष्ठ होकर हमें रहना चाहिए। इस प्रकार के भावों से नामदेव का हृदय सदा भरा रहता है और इसी कारण,

---

१. जागे सुक उधव अक्रूर हणवंत जागे ले लंगूर।
संकर जागे चरन सेव कलि जागे नामा जैदेव॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २१६, ३८७।

सारे जगत् को वे एक उदार-चेता प्रेमी की दृष्टि से देखते हैं।

नामदेव कहते हैं— 'ईश्वर एक है जो सर्वव्यापक और सर्वपूरक है। जिधर भी देखो वही दिखलाई पड़ता है। माया के विचित्र चित्रों से संसार मुग्ध है, कोई विरला ही उसे जान पाता है।'[1]

कबीर साहब कहते हैं—"सगुण में निर्गुणत्व का आरोप एवं निर्गुण के लिए सगुणत्व की भावना स्वाभाविक है। इसे त्याग, दोनों में से किसी भी एक ओर बहना ठीक नहीं। उस अलक्ष्य के लिए अजर अमर आदि कहना भी उपयुक्त नहीं। उसका कोई रूप नहीं, कोई वर्ण नहीं। वह घट-घट वासी है, सर्वव्यापक है।[2]

गुरु नानक कहते हैं—' घट घट में वह परम तत्त्व, वह परब्रह्म छिपा हुआ है। घट-घट में उसकी ज्योति प्रकाशित है।"[3]

ब्रह्म की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए दादू कहते हैं—"मैं उस निरंजन को सदा अपने पास ही देखता हूँ। क्या भीतर क्या बाहर वह समान रूप से सारे संसार में समाया हुआ है।"[4]

संत रज्जब अपनी ब्रह्म की अनुभूति का वर्णन करते हुए कहते हैं—"वह अप्राप्य सब जगह प्राप्त होता है। सभी ठौर उसके दर्शन होते हैं। वह सब में समाया हुआ है। उसकी गति बड़ी अजीब है। वह किसी से अलग नहीं है। वह हर एक वस्तु

---

१. एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
माइआ चित्र बिचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १५०।

२. संतो धोखा कासू कहिये।
गुण में निर्गुण निरगुण में गुन है बाट छाँड़ि क्यों बहिये ॥टेक॥
अजरा अमर कथै सब कोई अलख न करणा जाई।
नाति सरप वरण नहीं जाकै, घटि-घटि रह्यौ समाई।
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १४६, पद १८०।

३. घट-घट अंतरि ब्रह्म लुकाइया, घटि-घटि जोति समाई।
बजर कपाट मुकेत गुरमती, निरभै ताडी लाई।
संत काव्य, पृष्ठ २२०।

४. निकटि निरंजन देषिहौ छिन दूरि न जाई।
बाहरि भीतरि येकसा, सब रह्या समाई॥
—संत काव्य, पृष्ठ २५३।

का अविभाज्य अंग है।'[1]

(२) प्रत्यक्ष अनुभव से सत्यान्वेषण—नामदेव स्वानुभूति पर बल देते है। उन्होंने श्रुतिप्रामाण्य अथवा शब्द-प्रमाण का विरोध किया है। वे "रिदै" (हृदय) में विचार करने पर जोर देते हैं। वे कहते है कि हृदय में विचार कर देखो तो पता चलेगा कि घट-घट में वही एक मुरारी व्याप्त है।[२]

नामदेव ने सत्य का कितना मार्मिक रूप उद्घाटित किया है। वे कहते है—'हे परमात्मा! सकल जीवों की उत्पत्ति आपसे हुई है। सकल जीवो में आप है। आप घट-घट व्यापी हैं। संसार के लोग माया से मोहित होने के कारण इस बात को जानते नही।'[3]

अपने इसी सत्यान्वेषण के आधार पर वे डंके की चोट पर यह निर्णय देते हैं कि राम की भक्ति के बिना संसार सागर को पार करने की कोई मार्ग नही है।[४]

नामदेव के परवर्ती संत कबीर ने भी कोरे पांडित्य की निंदा की है। वे पंडितों को संबोधित करते हुए कहते हैं—'मैं आँखिन देखी' अर्थात् स्वानुभव की बात कहता हूँ और तू 'कागद की लेखी' अर्थात् 'श्रुति प्रामाण्य' को लेकर चलता है। मे सुलझाने वाली बात कहता हूँ तो तू उलझानेवाली कहता है।'[५]

---

१. अमिज मिल्या सब ठौर है अकल सकल सब माँहि।
रज्जब अज्जब अगह गति काहूँ न्यारा नाहिं।
—संत काव्य, पृष्ठ ३३६।

२. कहत नामदेऊ हरि की रचना देखहु रिदै विचारी।
घट-घट अंतरि सरब निरंतरी केवल एक मुरारी॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १५०।

३. जामै सकल जीव की उतपति। सकल जीवमै आप जी।
माया मोह करि जगत भुलाया घटि घटि व्यापक बाप जी।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ४८।

४. राम भगति बिन गति न तिरण को।
कोटि उपाइ जु करहो रे नर॥
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ६२।

५. मै कहता हूँ आँखिन देखी, तूं कागद की लेखी रे।
मै कहता सुरझावनहारी, तूं राख्यो अरुझाई रे॥
—कबीर ग्रन्थावली।

कबीर ने ऐसे कोरे पाडित्य को समाप्त कर देने की शिक्षा दी है। 'चारो वेदो का अध्ययन करके भी जीवात्मा का ईश्वर से भक्ति नही हुई। भक्ति के तत्व रूपी फल (वाल) को तो कबीर ने अपना लिया अब पडित लोग तो व्यर्थ के वाद विवाद को खोज रहे है।'[१]

(३) सद्गुरु-महत्त्व प्रतिपादन—हमारे यहाँ उपनिषद् काल से ही गुरु की महिमा चली आ रही है। गुरु के महत्त्व का कारण यह है कि साधक को अपने साधना-काल में अनेक प्रकार के विघ्न आते हैं जिससे वह कभा कभी पथभ्रष्ट भी हो जाता है। ऐसी दुविधा की अवस्था में साधक अपने गुरु से अपनी शकाओं की निवृति करा सकता है।

नामदेव कहते है कि 'सद्गुरु के बिना सत्य का अनुभव भी कैसे हो सकता है ? गुरु ने अपने उपदेशो से मेरा जन्म सफल कर दिया। गुरु-कृपा से मुझे ब्रह्म ज्ञान रूपी अंजन प्राप्त हो गया है।'[२]

यह निश्चित है कि बिना गुरु-कृपा के कुछ प्राप्त नही होता।[३]

गुरु ने नामदेव को सब कुछ दिया है। गुरु ने उनको अडसठ तीर्थों का दर्शन घट के भीतर ही कराया। अत वे कहीं आना जाना नही चाहते।[४]

इस संदर्भ में नामदेव ने अपने गुरु विसोबा खेचर का सश्रद्ध स्मरण

---

१. चारिउँ वेद पढाइ करि हरि सूँ न लाया हेत।
   वालि कबीरा ले गया, पडित ढूँढे खेत॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३६।

२. सफल जनमु मोकउ गुर कीना॥
   दुख बिसारि सुख अंतरि लीना॥
   गिआन अंजनु मोकउ गुर दीना॥
   राम नाम बिनु जीवनु मन हीना॥

—सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २०४।

३. प्रणवत नामदेव गुरु प्रसादै। पाया तिनही सुकाया॥

—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ६४।

४. तीरथ जाऊँ न जल में पैसूँ जीव जंत न सताऊँगा।
   अठसठि तीरथि गुरु सपाये। घट ही भीतरि न्हाऊँगा॥

—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद ६६।

किया है।[1]

कबीर ने गुरु के महत्त्व का वर्णन मुक्त कण्ठ के किया है। उनके लिए तो गुरु तथा गोविंद दोनों में कोई अन्तर नहीं है। गुरु तो गोविन्द का दूसरा रूप ही है। इस लिए जो व्यक्ति गुरु की सेवा में अपने को मिटा देता है वही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।[2]

कबीर साहब कहते है कि मेरे समक्ष गुरु और गोविन्द दोनो खड़े है। मै किस के चरण पकड़ूँ ? हे गुरु आप धन्य है कि आपने मुझे गोविन्द से मिला दिया।[3]

गुरु नानक गुरु के महत्व का वर्णन करते हुए कहते है—गुरु के उपदेश से ब्रह्मादि देवता तथा कितने ही मुनि तरे। सनक सनंदन जैसे तपस्वी महात्मा गुरु-कृपा से पार हुए।[4]

दादू गुरु के अनुग्रह का वर्णन इस प्रकार करते—'सद्गुरु ने अंजन का प्रयोग कर मेरे नयन-पटल खोल दिये। गुरु-कृपा से बहरे कानो से सुनने लगे तथा गूँगे बोलने लगे।'[5]

अन्य एक स्थल पर कहते हैं—'समर्थ गुरु ने मुझे परम तत्व के दर्शन कराये।

---

१. मन मेरी सुई तनो मेरा धागा।
खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा ॥
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १८८।

२. गुर गोविंद तो एक है दूजा यहु आकार ॥
आपा मेट जीवत मरै तो पावै करतार ॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३।

३. गुरु गोविंद दोऊ खडे काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय ॥
—संक्षिप्त संत सुधा-सार। पृ० ५६।

४. गुर के सबदि तरे मुनि केते, इंद्रादिक ब्रह्मादि तरे।
सनक सनंदन तपसी जन केते, गुर परसादी पारि परे ॥
—संत काव्य, पृ० २१०।

५. दादू सतगुर अंजन वाहि करि नैंन पटल सब खोले।
बहरे कानौं सुणने लागे गूँगे मुख सौं बोले ॥
—संत काव्य, पृ० २५६।

मैने अपने भीतर ही ब्रह्मानन्द रूपी घृत खा लिया और हृष्ट पुष्ट हो गया।'[१]

संत रज्जब ने गुरु को 'नीर क्षीर' विवेकवाला हंस कहा है "माया रूपी पानी तथा दूध रूपी मन भली भाँति एकरूप हो गये। संत रज्जब कहते है कि गुरु रूपी हंस इन दोनों को एक दूसरे से अलग कर देता है।'[२]

(४) सुमिरन अथवा नाम स्मरण का महत्त्व—नामदेव ने 'सुमिरण' को बहुत महत्त्व दिया है। सर्वसाधारण जनता के लिए भी यह साधन सुलभ है। इस पर कुछ खर्च नही करना पडता। अत नाम स्मरण पर नामदेव का आग्रह है। वे कहते हैं—'हे परमात्मा! तुम्हारी कृपा से पत्थर समुद्र पर तैर उठे थे। फिर तुम्हारा स्मरण करने से भक्त भला भवसागर क्यो न तर जायेंगे?'[३]

'हरि नाम की महिमा अपार है। वही तो इस विश्व में सार तत्त्व है। नामदेव कहते हैं कि इसी का आधार लेकर मैं भवसागर पार हुआ।'[४]

'तुम्हारा नाम सार-स्वरूप सत्य है। सारा संसार मायाजाल है। कलियुग में *भक्तो के लिए केवल तुम्हारा नाम एकमात्र आधार है।'*[५]

नाम के इस महत्त्व का अनुभव कर नामदेव कहते हैं कि राम-नाम रूपी पूँजी म मेरी लौ लगी है।[६]

---

१. साचा समरथ गुर मिल्या, तिन तत दिया बताइ।
दादू मोट महाबली घटि घृत मथि करि पाई॥
—संत काव्य, पृ० २५६।

२. माया पानी दूध मन मिले सु मुहकम बंधि।
जन रज्जब बलि हंस गुरु सोधि लही सो संधि॥
—संत काव्य, पृ० ३३५।

३. देवा पाहन तारिअलें। राम कहत जन कस न तरे॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १४६।

४. हरि नाव सकल भुवन ततसारा।
हरि नाव नामदेव उतरे पारा॥
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद १।

५. सार तुम्हारा नांव है झूठा सब संसार।
मनसा वाचा क्रमंना कलि केवल नांव अधार॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५१।

६. राम नाम मेरे पूँजी धनां।
ता पूँजी मेरौ लागौ मना॥ टेक॥
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १२८।

कबीर साहब कहते हैं कि मैं अनेक बार कह चुका हूँ। ब्रह्मा और महेश भी कह चुके हैं कि यदि प्राणि के मोक्ष का कोई साधन है तो वह केवल तत्त्व-रूप राम का नाम है। वही प्रत्येक मनुष्य के लिए उचित उपदेश है।[1]

यदि संसार में ईश्वर भक्ति और भजन है तो वह केवल राम के नाम का स्मरण करना ही है। इसके अतिरिक्त जो अन्य उपायों से भक्ति का प्रदर्शन करते हैं वह सब दुःख का कारण है। कबीरदास कहते हैं कि इसीलिए मन, वचन और कर्म से तत्त्व-स्वरूप ब्रह्म का स्मरण करना चाहिए।[2]

संत रैदास नाम-महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—'नाना प्रकार के आख्यान, पुराण, वेद-विधि आदि वर्णमाला के चौंतीस अक्षरों के अन्तर्गत ही आते हैं। व्यास ने ठीक ही कहा है कि ये सब राम-नाम की समता नहीं कर सकते।'[3]

संत दादू 'सुमिरण' के अनन्य महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—'निरंतर नाम-स्मरण करने से एक दिन परमात्मा का साक्षात्कार होगा। 'सुमिरण' का यह सहज मार्ग सद्गुरु ने मुझे बता दिया।'[4]

गुरु नानक नाम-स्मरण पर अपना अविचल भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं—'मेरा अर्ध शरीर काट दीजिये अथवा सिर पर करवत चलाइये अथवा हिमालय में मेरे शरीर को गला दीजिये तो भी मेरा मन तुम्हारा गुण-गान करता रहेगा। मैंने यह

---

१. कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव तत सार है, सब काहू उपदेस॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५।

२. भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा क्रमनां, कबीर सुमिरण सार॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ५।

३. नाना पिआन पुरान वेद विधि चउतीस अषर माँही।
बिआस बिचारि कहिउ परमारथु राम नाम सरि नाही।

—संत काव्य, पृष्ठ १६५।

४—सासैं सास सँभालता इक दिन मिलिहै आइ।
सुमिरण पैंडा सहज का सतगुर दिया बताइ॥

—संक्षिप्त संत सुधा-सार, पृष्ठ २७६।

अच्छी तरह जाँच लिया कि रामनाम की समता अन्य कोई साधन नहीं कर सकता।'[१]

(५) बाह्याडम्बर की व्यर्थता—नामदेव के अनुसार बाह्य कर्म काण्डों से कोई लाभ नहीं होता। इनको अपना कर तो जीवन व्यर्थ ही नष्ट होता है। जब तक अंतःकरण शुद्ध नहीं है तब तक बाह्याचारों का प्रदर्शन केवल दिखावा है, ढोंग है।

'यदि कोई शरीर में लगे कीचड़ को कीचड़ से धोना चाहता है तो वह स्वच्छ न होगा और उसका यह प्रयास व्यर्थ ही होगा। जो भीतर से मैला और बाहर से स्वच्छ है वह उस ढोंगी के समान है जो केवल पानी से धोता है। नामदेव कहते हैं कि सुरभी को छोड़कर भेड़ की पूँछ पकड़कर कोई भवसागर कैसे पार कर सकता है?'[२]

बिना प्रभु पर पूर्ण विश्वास किये तीर्थ, व्रत आदि व्यर्थ हैं। बिना विश्वास के, बिना श्रद्धा के तीर्थ, व्रत आदि व्यर्थ है। नामदेव कहते हैं कि जब मैं अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा तब मैंने सीढ़ी छोड़ दी।[३]

मूर्ति पूजा और बलि का नामदेव ने बार-बार खण्डन किया है।[४]

लोगों के आडम्बर पर नामदेव को बहुत क्षोभ होता है। 'मन स्थिर हो अथवा न हो लोग दिखावा अवश्य करते हैं। अंतःकरण तो मलीन है फिर भवसागर कैसे पार हो सकता है? बिना उनका मर्म जाने रुद्राक्ष माला, छापा, तिलक आदि का प्रयोग करने से क्या लाभ? स्वयं अज्ञानी होकर दूसरों को मार्ग-दर्शन करने का दावा करते

---

१. अरध सरीरु कटाइअै सिरि करवतु धराइ।
तनु हैमंचलि गालीअै भी मन तेरो गुन गाइ।
हरि नामै तुलि न पूजई सभ फिठो ठोकि बजाइ॥

—संत काव्य, पृष्ठ २१८।

२. लागो पंक पंक से धोवै। निर्मल न होवै जनम बिगोवै।
भीतरि मैला बाहरि चोखा। पाणी पिंड पखाले धोखा।
नामदेव कहै सुरही परहरिये। भेड़ पूँछ कैसे भवजल तरिये॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २२।

३. तीरथ बरति जगत की आसा। फोकट कीजे बिन बिसवासा।
एकादसी जगत की करनी। पाया महल तब तजी निसरनी॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ५६।

४. पाहन आगे देव कटोला। वाको प्राण नहीं वाकी पूजा रचोला॥
निरजीव आगे सरजीव मारै। देषत जनम आपनों हारै॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ४७।

हैं। ऐसे कपटाचरण से मुक्ति कैसे होगी ?'[१]

कबीर ने मूर्ति पूजा का खण्डन किया है। उनके अनुसार जो लोग पत्थर का पुतला बनाकर उसे कर्तार समझ कर उसकी पूजा करते है वे पाप की धारा में डूब जाते हैं।[२]

मूर्ति पूजा ही नहीं, भक्ति से रहित जप और तप तथा तीर्थों एवं व्रतों पर विश्वास करना भी कबीर के अनुसार भ्रम है। ये सब सेंवर के फूल के समान है जो देखने में बड़ा आकर्षक पर वस्तुतः सारहीन है।[३]

संत मलूकदास कहते हैं कि अंत करण में यदि दया-भाव नहो तो मक्का, मदीना, द्वारका, बद्री-केदार आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा व्यर्थ है।[४]

स्वामी सुन्दरदास ने भी बाह्याचारों का विरोध किया है। जो मनुष्य-निर्मित मूर्ति की पूजा करते है, तीर्थस्थानों को जाते हैं, गले में माला डालते हैं, माथे पर तिलक लगाते हैं वे गुरु के बिना ईश्वर से मिलने का रास्ता कैसे पा सकते है ?'[५]

---

१. मन थिर होइ या रे न होइ। ऐसा चिन्ह करै संसार।
भीतरि मैला घूतिग फिरै। क्यूँ उतरै भव पार ॥टेक॥
रुद्राप सपा जप माला मडै। ताको मरम न जानै कोई ॥
आप न देपै और दिपावै। कपट मुक्ति क्यो होई।
—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ६४।

२. पाहण केरा पूतला करि पूजै करतार।
इही भरोसे जे रहे ते बूड़े काली धार ॥
—कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ४३।

३. जप तप दीसै थोथरा तीरथ व्रत बेसास।
सूवै सैंवल सेविया, यो जग चल्या निरास ॥
—कबीर, ग्रन्थावली, पृष्ठ ४४।

४. मक्का मदिना द्वारका बद्री केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार ॥
—संक्षिप्त संत सुधा-सार, पृष्ठ ३९५।

५. तो भक्त न भावे दूरि बतावें तीरथ जावें फिरि आवें।
जो कृत्रिम गावें पूजा लावें झूठ दिढावे बहिकावे ॥
अरु माला नावें तिलक बनावें क्यों पावे गुरु बिन गैला।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला।
—संक्षिप्त संत सुधा-सार, पृष्ठ ३४८।

संत रज्जब के अनुसार दादू पंथ में बाह्याचारो का बिलकुल महत्त्व नहीं है। जो, बाह्याचारो के साधन-स्वरूप माला, तिलक, तीरथ, मूर्ति आदि का त्याग करता है वह दादू पंथ में परम पुरुष के समान माना जाता है।[१]

(६) अनन्य प्रेम भावना—भक्त जब अपने इष्टदेव की आराधना करता है तब उसमें अनन्यता का भाव ही प्रधान होता है। संत नामदेव कहते है—'राम की वंदना कर मैं और किसी की वंदना न करूँगा। मेरा लौकिक जीवन भले ही नष्ट हो मैं अपना पारलौकिक जीवन नष्ट न होने दूँगा। मैं अन्य देवताओं से याचना न करूँगा। केवल राम रसायन का आस्वाद लूँगा।'[२]

क्योंकि उन्हे विश्वास है कि परमात्मा प्राणि-मात्र में समाया हुआ है।'[३]

और यही कारण है कि जिसके लिए उन्होंने त्रिभुवन की खाक छानी वह अलौकिक 'वस्तु' उनको अपने हृदय में ही मिली। नामदेव कहते है कि अब मुझे कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं घर बैठे अपने हृदयस्थ राम के गुण गाऊँगा।[४]

कबीर ने भी इसी अनन्य प्रेमभावना को नामदेव के ढंग पर ही अपनाया है। वे अपने मन को प्रबोधित करते हुए कहते है—'हे मन! तू अनस्थिरता या चंचलता की वृत्ति को छोड़ दे। जब तूने आत्मोपलब्धि के व्रत का अंगीकार कर लिया तो तुझे अब अपने को जला कर समाप्त कर देने में ही कुशल है।[५]

'अजी ओ गुसाँई! मैं आपका गुलाम हूँ। मुझे बेच दो। यह सारा तन मन

---

१. माला तिलक न मानई, तीरथ मूरति त्याग।
सो दिल दादू पंथ में परम पुरुष सूँ लाग॥

—संक्षिप्त संत सुधा-सार, पृष्ठ ३१३।

२. राम जुहारि न और जुहारौं। जीवनि जाइ जनम कत हारौं।
आन देव सौं दीन न भाषौं। राम रसाइन रसना चाषौं॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ३०।

३. थावर जंगम कीट पतंगा सत्य राम सबहिन के संगा॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद ३०।

४. जा कारन त्रिभुवन फिरि आये। सो निधान घटि भीतरि पाये॥
नामदेव कहै कहूँ आइये न जाइये। अपने राम घर बैठे गाइये॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २६।

५. डग मग छाँड़ि दे मन बौरा।
अब तो जरे बरे बनि आवै, लीन्हो हाथ सिंधौरा॥

—संत काव्य, पृष्ठ १६६।

धन आपका है।'[1]

'हरि मेरे प्रियतम है। मैं उनके बिना रह नहीं सकता। मैं उनकी बहुरिया हूँ। वे बहुत बड़े हैं, मैं बहुत छोटी हूँ।'[2]

संत रैदास कहते हैं कि यह अनन्य भक्ति नहीं है। जब तक मन की प्रवृत्तियाँ चंचल रहा करती हैं तब तक वह उन्हीं मे लीन रहता है। वही मन हरि से विमुख होकर कुमार्ग की ओर जाता है और काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि षड्रिपुओं को पलभर के लिए भी नहीं भूलता।[3]

दादू अपनी एकान्त निष्ठा व्यक्त करते हुए कहते हैं—'हमें राम रस का यह प्याला बहुत भाता है। रिद्धि-सिद्धि और मुक्ति आप जिसे चाहें उसे दें। मेरे मन तथा शरीर पर तेरा अधिकार है। मेरा सब कुछ तेरा है और तू मेरा है।'[4]

प्रत्येक पतिव्रता के लिए प्रियतम के रूप में कोई न कोई पुरुष अवश्य होता है। संत रज्जब कहते है कि मै राम पर अनुरक्त हूँ। मेरे अन्तःकरण में और किसी के लिए

---

१. मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाईं।
तन मन धन मेरा रामजी के ताईं॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १२४।

२. हरि मेरा पीव भाई हरि मेरा पीव।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव॥टेक॥
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १२५।

३. संतो अनिन भगति यह नाहीं।
जब लग सिरजत मन पाँचो गुन व्यापत है या माहीं॥
सोई आन अंतर करि हरिसों अपमारग को आनै।
काम क्रोध मद लोभ मोह की पल पल पूजा ठानै॥

—संत काव्य, पृष्ठ १८७।

४. प्रेम पियासा राम रस हमको भावै येह।
रिधि सिधि माँगैं मुकति फल चाहै तिनकौं देह॥
तन भी तेरा मन भी तेरा तेरा प्यंड परान।
सब कुछ तेरा तूँ है मेरा यहु दादू का ज्ञान॥

—संत काव्य, पृष्ठ २६१।

स्थान नहो ।[१]

(७) श्रम और अध्यात्म भावना का समन्वय—प्रत्येक भक्त को उत्पादक श्रम करना चाहिए। नामदेव, कबीर, रैदास, सेना आदि भक्तों ने जीवन पर्यन्त अपना पेशेवर कार्य किया। नामदेव ने स्थान स्थान पर अपने को 'सिंपी' जाति का और तदनुसार कपड़े सोने और रँगने के व्यवसाय का उल्लेख किया है। नामदेव कहते हैं—'मैं कपड़ा रँगने और सिलने का काम करता हूँ। घड़ी भर के लिए भी भगवन्नाम को विस्मृत नहीं करता हूँ। मेरी सोने की सुई और चाँदी का धागा है। नामदेव कहते हैं— मेरा चित भगवान से लगा हुआ है।'[२]

नामदेव की यह प्रवृत्ति कबीर में भी पाई जाती है। ज्ञान भक्ति की सतत् साधना करते हुए भी कबीर ने अपना घरेलू व्यवसाय नहीं छोड़ा।[३] कपड़ा बुनते समय भी उनकी लौ राम से ही लगी रहती थी।[४]

कबीर के समान सन्त रैदास की वाणी में भी यही भावना पल्लवित है।[५]

---

१. पतिव्रता के पीव बिन पुरुष न जनम्या कोइ।
   त्यू रज्जब रामहि रचे, तिनके दिल नहिं दोई॥

— संत काव्य, पृष्ठ ३३७।

२ मन मेरो गजु जिह्वा मेरी काती।
   मपि मपि काटउ जम की फांसी॥ १॥
   रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ।
   राम नाम बिनु घरीय न जीवउ॥ २॥

—संत नामदेव की हिंदी पदावली पद, १८।

३. हम घर सूत तनहि नित ताना, कंठ जनेऊ तुम्हारे।
   तुम तो वेद पढ़हु गायत्री गोविंद रिदै हमारे॥
   तू ब्राह्मन मैं कासी का जुलाहा बूझहु मोर गियाना।
   तुम तो पाचे भूपति राजे हरि सो मोर धियाना॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ३३०।

४ तनना बुनना तज्या कबीर राम नाम लिखि लिया सरीर।
   जब लग भरों नली का बेह तब लग टूटै राम सनेह॥

—गुरु ग्रंथ साहब, गुज, २।

५. मेरी संगति पोच सोच दिन राती।
   मेरा करमु कुटिलता जनमु कुभांति॥

—गुरु ग्रन्थ साहब, गउड़ी—१।

(८) भेदभाव विहीनता—जिस भेदभाव विहीनता का बीजारोपण स्वामी रामानुजाचार्य ने किया था तथा जो भागवत में भी यत्र तत्र प्रतिध्वनित मिलती है, हीन जाति के होने के कारण सन्त नामदेव ने उसका निराकरण किया। उनकी वाणी में अनेक स्थलों पर यह बात ध्वनित हुई है।

'हे यादवराय ! मेरी जाति हीन है। भला मैंने छीपे के घर जन्म क्यों लिया ? जिसके फल-स्वरूप मैं भक्ति करने से वंचित रखा गया ?'[1]

'हिंदू अंधा है और मुसलमान काणा। इन दोनों में ज्ञानी चतुर है। मैं तो ऐसे भगवान् को आराधना करता हूँ जो न मंदिर में है न मसजिद में।'[2]

नामदेव भक्ति के क्षेत्र में जाति-पाँति के झगड़े को निरर्थक समझते थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है—'मैं जाति-पाँति को लेकर क्या करूँ ? मैं तो दिन-रात राम नाम का जप करता हूँ।'[3]

अपनी गुरु परम्परा से प्राप्त इस बात का अनुसरण कबीर ने भी किया है। वे कहते हैं सभी मानवों को हरिजन होना है। उनको ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र, ईसाई या मुसलमान नहीं होनी है। मानव के ये रूप भक्त रूप से तुच्छ हैं। भक्त के समान ये नहीं है।[4]

जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवंत फिरहि अजहुँ बानारसी आसपासा।
आचार सहित विप्र करहि डडउति तिन तनै रैदास दासानुदासा॥
—गुरु ग्रन्थ साहब, रैदास रागु मलार २।

१. हीनड़ी जात मेरी जादिम राइआ।
छीपे के जनमि काहे कउ आइआ॥
—पंजाबातील नामदेव, पृ० १२६।

२. हिन्दू अंना तुरकू काणा दोहां ते गिआनी सिआणा।
हिन्दू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत।
नामैं सोई सेविआ जह देहुरा न मसीत॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २०८।

३. का करौं जाती का करौं पाती। राजाराम सेऊँ दिन राती।
—सन्त नामदेव की पदावली, पद १८।

४. अबरन बरन न गनिय रंक धनि, बिमल बास निज सोई।
बाहमन छत्रिय बैस सूद्र सब भगत समान न कोई॥
—संक्षिप्त संत सुधा-सार, पृ० ५२।

यदि सिरजनहार चार वर्णों के भेद का विचार करता तो वह जन्म से ही एक समान सबके साथ भौतिक, दैहिक और दैविक ये तीन दण्ड क्यों लगा देता ? कोई हल्का (छोटा) नहीं है। जिसके मुख में राम नाम नहीं है वह छोटा है।[१]

सन्तों की जाति नहीं पूछनी चाहिए। उनकी जाति नहीं होती। सभी जातियों में सन्त हुए हैं। सभी लोगों को सन्तों के चरित्र से शिक्षा लेनी है।[२]

कबीर ने हिंदुओं के तीर्थ व्रत और पूजा की निंदा की तो मुसलमानों के रोजा नमाज की भी खूब खबर ली। इस प्रकार उन्होंने दोनों की बुराइयों का दिग्दर्शन किया।[३]

(ε) ब्रह्म की निर्गुणता—प्रसिद्ध है कि नामदेव पहले मूर्तिपूजक और सगुणोपासक थे किन्तु बाद में कट्टर निर्गुणोपासक हो गये। वे ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप में विश्वास करते थे। ब्रह्म के इस निर्गुण रूप का वर्णन उन्होंने अनेक प्रकार से अनेक स्थलों पर किया है।

'वह निर्गुण ब्रह्म अनेक और एक सब कुछ है। सर्वत्र उसी का प्रकाश दिखाई पड़ता है।'[४]

'हे बैकुंठनाथ। तेरी लीला अगाध है। मैं तुझे प्रणाम करता हूँ। मैं प्राणिमात्र में तुझे देखता हूँ। जल, थल, काष्ट, पाषाण सबमें तू है। निगमागम तथा पुराण

---

१. जौ पै करता वरण विचारे।
तो जनमत तीनि डाँडि किन सारे ॥ टेक ॥

—कबीर ग्रन्थावली, पद ४१, पृ० १०१।

२. संतन जात न पूछो निरगुनियाँ।
हिंदू तुर्क दुइ दीन बने हैं कछु नहीं पहचनियाँ।

—संक्षिप्त सन्त सुधा-सार, पृ० ४८।

३. अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ॥

—संक्षिप्त सन्त सुधा-सार, पृ० ५४।

१. एक अनेक बिआपक रन जत देखउ तत सोई।
माइआ चित्र विचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई।
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंदु बिनु नहिं कोई ॥

—सन्त नामदेव की हिंदी पदावली, पद १५०।

तेरा गुण गाते है ।'[1]

'हे परमात्मा ! तेरी गति तू ही जानता है, अल्प मति जीव उसका क्या वर्णन कर सकेंगे ? लोग जैसा तुझे बताते हैं वैसा तू नहीं है । तू जैसा है, वैसा है ।'[2]

नामदेव कहते है कि उस निर्गुण ब्रह्म का हम वर्णन नहीं कर सकते । वैसा उसका वर्णन करने लगें तो कागज बिगड़ जाता है । ऐसे सकल भुवन पति मुझे सहज ही मिले है ।[3]

निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि उसके किसी प्रकार का रूप तथा आकार नहीं है । उसके रूप अरूप भी नहीं है । वह पुष्प की सुगन्ध से सूक्ष्म अनुपम तत्व है ।[4]

'वह गुणरहित है उसका नाम नहीं रखा जा सकता । वह 'गुन विहूंन' है ।[5]

सन्त रैदास उस परम तत्त्व का परिचय इस प्रकार देते है—'वह निर्गुण ब्रह्म अगम, अगोचर, अविनाशी तथा अतर्क्य है । वह सदा अज्ञेय है । वह जीव-मुक्त महापुरुषों के लिए काशी सदृश आधार स्थल है ।'[6]

---

१. तूं अगाध बैकुंठनाथा । तेरे चरनौ मेरा माथा ॥
सबै भूत नाना पेषूं । जत्र जाऊँ तत्र तू ही देषूं ॥
जल थल मही थल काष्ट पषाना । आगम निगम सब वेद पुराना ॥
—सन्त नामदेव की हिंदी पदावली, पद १२ ।

२. तेरी गति तू ही जाने । अल्प जीव गति कहा बखाने ॥ टेक ॥
जैसा तूं कहिये तैसा तू नाहीं । जैसा तू है तैसा आछि गुसाईं ॥ १ ॥
—सन्त नामदेव की हिंदी पदावली, पद १४ ।

३. अकथ कथ्यौ न जाइ । कागद लिख्यौ न माइ ।
सकल भुवनपति मिल्यौ है सहज माईं ॥
—सन्त नामदेव को हिंदी पदावली, पद ९ ।

४. जाके मुँह माथा नहीं नाहिं रूप अरूप ।
पुहुप वास से पातरा, ऐसा तत्व अनूप ॥ —कबीर वचनावली, पृ० १ ।

५. अवगति की गति क्या कहूँ जसकार गाँव न नाँव ।
गुन विहूं का पेखिये, काकर धरिये नाव ॥ —कबीर ग्रन्थावली, पृ० २३६ ।

६. निस्चल निराकार अज अनुपम निरभय गति गोविंदा ।
अगम अगोचर अच्छर अतरक निरगुन अंत अनंदा ॥
सदा अतीत ज्ञानघन वर्जित निरविकार अविनासी ।
कहु रैदास सहज सुन्न सत, जिवन मुक्त निधि कासी ॥
—सन्त काव्य, पृ० १९६ ।

सन्त रज्जब के अनुसार—'वह सब में समान रूप से विद्यमान है। वह सदा एक रस है। वह किसी से लिप्त नहीं है। रज्जब कहते है कि ऐसे जगपति की लीला कोई विरला ही जानता है।'[1]

(१) करनी तथा कथनी मे एकता—सतो ने व्यवहार और आदर्श के साथ विचार और आचरण में सामजस्य लाने पर बल दिया है। उन्होंने जो कुछ लिखा है अपने अनुभव के आधार पर लिखा है। उन्होंने जैसा उपदेश दिया वैसा आचरण भी किया। उनकी उक्ति तथा कृति मे कदाचित् ही कोई विरोध मिले। निर्गुण मत के सभी सन्तो में इस ढग की बात मिलती है। नामदेव ने भी करनी बिना कथनी की आलोचना की।

'जब तक अत करण शुद्ध नही है तब तक ध्यान, जप, तप आदि से क्या लाभ ? साँप केंचुली छोड़ता है परन्तु विष नही छोड़ता। पाखड पूर्ण भक्ति से राम नही रीझते, रीझते है तो आँख के अधे ही।'[2]

'व्यक्ति बातें तो बहुत बढ़ा चढाकर करता है किन्तु विरला ही कोई उनको कार्यान्वित करता है।'[3]

'पाखडपूर्ण भक्ति से राम नही रीझते, रीझते है तो आँख के अधे ही।'[4]

कबीर ने भी "करनी बिना कथनी" की निंदा की है। उनके अनुसार जब तक मनुष्य के वचन और कर्म में मेल नही होगा तब उसका सारा परिश्रम व्यर्थ है। जो लोग कहते कुछ हैं और करते कुछ वे मनुष्य नही पशु है और अत समय वे नरक

---

१. सरवगी समसरि सब ठाहर काहू लिपित न होई।
उन रज्जब जगपति की लीला, बूझै विरला कोई॥

—स त काव्य, पृ० ३३२।

२. काहे कू कीजै ध्यान जपना जो मन नाही सुध अपना॥
साँप कौंचली छाड़े विष नहीं छाडै। उदिक मैं बग ध्यान माड़े॥

—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २३।

३. कथनी बदनी सब कोई कहै।
करनी जन कोई विरला रहै।

—सत नामदेव की हिंदी पदावली, पद १७७।

४. पाखड भगति राम नही रीझै।
बाहरि आधा लोक पतीजै॥

—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, पद २१।

को प्राप्त होते है।[1]

कबीर साहब कहते है कि कथनी खाँड के समान मीठी है परन्तु करनी प्रत्यक्ष जहर का घूंट है। मनुष्य यदि लम्बी चौड़ी बातें करना छोड़ दे और कृति को महत्त्व दे तो विष का अमृत बन जाय।[2]

सहजावस्था की उपलब्धि होने पर अपनी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्णतः अपने कहने में आ जाती हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हमें स्वयं परमात्मा का ही स्पर्श अथवा प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।[3] अब कथनी और करनी मे कोई अंतर नहीं रह जाता। जैसा मुख से निकलता है वैसा ही अपना दैनिक व्यवहार भी चलता है।

संत रज्जब भी करनी तथा कथनी की एकता पर बल देते है। वे कहते है कि औषधि बिना पथ्य को तथा पथ्य बिना औषधि किस काम की ? यदि नामस्मरण और कृति में मेल न हो तो दोनो को प्रशंसा नहीं होती।[4]

(१) भक्त की भगवान के प्रति मिलन-उत्कंठा—नामदेव के पदों में भक्त की भगवान के प्रति मिलन की उत्कंठा की मधुर अभिव्यक्ति है। इसे वे "तालाबेली" शब्द से परिचित कराते है, जिसका अर्थ व्याकुलता है, ऐसी व्याकुलता जिसमें तीव्रता है—आतुरता है। यह तालाबेली उस प्रकार की है, जिस प्रकार की गाय की बछड़े के बिना होती है और मछली को पानी के बिना होती है।[5]

---

१. जैसी मुखतें नीकसै तैसी चाले नाही।
मानिष नाहिं ते स्वान गति बाध्या जमपुर जाहिं॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ३८।

२. कथनी मीठी खाडसी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष तें अमृत होय॥
—कबीर वचनावली, पृष्ठ २४।

३. जैसी मुखतें नीकसै तैसी चाले चाल।
पारब्रह्म नेडा रहै पलमें करै निहाल॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ३८।

४. औषध बिन पथ्य का करै, पथ्य बिन औषधि वादि।
यू सुमिरण सुकृत अमिल, उभै न पावहि दादि॥
—संत काव्य, पृष्ठ ३४०।

५. मोहि लागति तालाबेली॥
बछरे बिनु गाइ अकेली॥
पानीआ बिनु मीनु तलफै॥
ऐसे रामनामा बिनु बापुरो नामा॥
—पंजाबातील नामदेव, पृष्ठ १०७।

कबीर ने भी नामदेव के समान कान्ता भाव से अपने 'राम की कामना की है और विरह में बिना जल की मछली के समान तड़पने की व्यथा व्यक्त की है।[१]

दादू तो तालाबेली की कामना भी करते हैं क्योंकि उसी से "दरसन" के रस में मिठास आती है।[२]

संत रज्जब की कसक भी उसी कोटि की है। जैसे कुमुदिनी चंद्र को देखे बिना कुम्हला जाती है वही हाल भक्त रूपी विरहिणी का है।[३]

धर्मदास अपना "दरद" बुझाते हैं—"हे प्रिय! अपनी व्यथा तुझे कैसे सुनाऊँ? तन तड़पता है। दिल को कुछ नहीं सुहाता। तेरे बिना मुझसे रहा नहीं जाता।"[४]

गरीबदास भी अपनी "विपत" सुनाते हैं।[५]

---

१. जैसे जल बिन मीन तलपै।
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १६४।

२. तालाबेली प्यास बिन क्यों रस पीया जाय।
बिरहा दरसन दरद सों हमको देहु खुदाय॥
कहा करौं कैसे मिलै रे तलपै मेरा जीव।
दादू आतुर विरहनी कारण अपने पीव॥

—संत सुधासार।

३. विरहिण व्याकुल केसवा निसिदिन दुखी विहाय।
जैसे चंद कुमोदिनी बिन देखे कुम्हलाइ॥
खिन खिन दुखिया दगधिये,विरह विया बन पीर।
घरी पलक में बिनसिये ज्यूं मछली बिन नीर॥

—संत सुधासार, पृष्ठ ५१६।

४. कहौं बुझाय दरद पिया तोसे।
तन तलफै हिय कछु न सुहाय।
तोहि बिन पिय मोस रहत न जाय।

—संत सुधासार—दूसरा खण्ड, पृष्ठ ८।

५. जब जब सुरति आवती मन में तब तब विरह अनल परजारै।
नैननि देखौं बैन सुनौ कब यह वेदन जिय मारै॥
सुनि री सखी यह विपत हमारी बिन दरसन अति विरहा वारै।
गरीबदास सुख तबही लेखौं जबही ज्योतिहि ज्योति निहारै॥

—संत वाणी, पृष्ठ ४१०।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि नामदेव ने कबीर आदि अपने परवर्ती संतो को किस तरह प्रभावित किया। क्योंकि नामदेव की विचार-धारा और इन संतो की विचारधारा में बहुत साम्य है। नामदेव कबीर आदि संतों से पूर्व हुए हैं। उन्होंने उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का वर्षों प्रचार किया। अतः उन्हें निर्गुण मत का आद्य प्रवर्तक मानने में विद्वानों को झिझक नहीं होनी चाहिए।

□□

उपसंहार

निखिल ब्रह्माण्ड मानो एक बृहत् संगठन है। इस संगठन को देखकर उसके संचालक के विषय में मन में विचार आता है। इस विश्व का संचालन अपने आप हो रहा है अथवा उसके पीछे कोई शक्ति काम कर रही है ? इस सृष्टि में जो विधान पाया जाता है वह नियम-नियन्त्रणविहीन नहीं है, उसमें एक क्रम है, सूत्रता है। इसके मूल में एक चेतन सत्ता का हाथ दिखाई देता है। इस सर्वोपरि चेतन सत्ता अथवा नियामक तत्त्व को ही ब्रह्म कहते हैं।

महर्षि व्यास ने 'ब्रह्म सूत्र' के प्रारम्भ में ही 'जन्माद्यस्य यतः' कहते हुए ब्रह्म विषयक जिज्ञासा व्यक्त की है। आचार्य ने ब्रह्म के वास्तव स्वरूप के निर्णय के लिए उसके 'स्वरूप' तथा 'तटस्थ' लक्षणों की कल्पना की है।

ब्रह्म के दो रूप माने गये है—एक सगुण तथा दूसरा निर्गुण। दोनों एक ही हैं परन्तु दृष्टिकोण की भिन्नता से दो रूपों में गृहीत किये जाते हैं। सगुण ब्रह्म की कल्पना उपासना के निमित्त व्यावहारिक दृष्टि से की गई है। पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म निर्गुण है। ब्रह्म के सम्बन्ध में सभी संत कवियों ने प्रायः एक सा विचार प्रकट किया है। संत, सूफी तथा भक्त आदि सभी कवियों ने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अगम तथा अगोचर कहा है।

हिन्दी निर्गुण काव्य धारा का प्रारम्भ रूढ़िवादी अंधविश्वास-प्रधान धार्मिक सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। निर्गुणिया संत निर्गुणोपासक थे। उनमें निर्गुण शब्द का प्रयोग अधिकतर द्वैताद्वैत विलक्षण हृदयस्थ यौगिक ब्रह्म के लिए हुआ है। बुद्धिवादिता, सदाचरणप्रियता, सामाजिक और आध्यात्मिक साम्यवाद, विचारात्मकता आदि उनकी प्रमुख उल्लेखनीय प्रवृत्तियाँ हैं। उनकी इन्हीं विशेषताओं ने उन्हें एक सूत्र में बाँध रखा है। इसीलिए उनकी परम्परा अन्य भक्ति-परम्पराओं से विलक्षण दिखाई देती है।

इस परम्परा के सर्वप्रथम हिन्दी कवि संत नामदेव हैं। नामदेव का जन्मकाल भी एक विवादपूर्ण समस्या है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर २६ अक्तूबर १२७० ई०

ही नामदेव की प्रामाणिक जन्मतिथि ठहरती है। नामदेव के जन्मस्थान के विषय में भी अभी तक कोई एक धारणा नही बनाई जा सकी है। अधिकांश विद्वानो का रुझान मराठवाड़ा के परभणी जिले की नरसी को नामदेव का जन्मस्थान मानने के पक्ष मे है। नामदेव के अयोनिज होने तथा उनके डाकू होने की बात का भी निराकरण किया गया है। नाथपंथी संत विसोबा खेचर से उपदेश ग्रहण करने पर उनमे जो महान् परिवर्तन हुआ उस पर भी प्रकाश डाला गया है। सगुणोपासक नामदेव अब निर्गुणोपासक हो गये।

नामदेव के समाधि स्थान के बारे में भी विद्वान् सहमत नही हैं। उनकी दो समाधियाँ बताई जाती है। एक पंढरपुर के विठ्ठल मंदिर के महाद्वार पर तथा दूसरी घोमान मे। ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव मे डॉ० भगीरथ मिश्र का यह निष्कर्ष समीचीन जान पड़ता है कि उन्होने घोमान में ही समाधि ली। नामदेव ने प्रचुर मात्रा में मराठी, में अभंगो की रचना की। उनके अभंगो की जो चार गाथाएँ मिलती है उनमें ढाई हजार के लगभग अभंग मिलते हैं उनमेंसे छः सात सौ अभंग ही नामदेव के हैं, शेष प्रक्षिप्त हैं। 'गुरु ग्रन्थ साहब' में समाविष्ट उनके ६१ हिंदी पदो के अतिरिक्त विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में कुल २३४ हिंदी पदो के पद नामदेव के नाम पर मिलते है जो पूना विश्व-विद्यालय द्वारा प्रकाशित 'संत नामदेव की हिंदी पदावली' में संग्रहीत किये गये है।

नामदेव का व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे व्युत्पन्न ही नही अपितु बहुश्रुत थे। वे परम भावुक तथा उदार अंत.करण के थे। जब उन्होने देखा कि सगुण भक्ति बहुत उपयोगी नही है तो उन्होने उसका त्याग कर दिया और निर्गुणोपासना में लग गये। इस प्रकार के परिवर्तन से पता चलता है कि वे दुराग्रही नही बल्कि एक विचारशील भक्त थे। प्रामाणिक और तर्कसंगत बात को स्वीकार करने में उनको हिचक नही थी। अपने जीवन के अन्त तक उन्होने लोकोद्धार का कार्य किया है।

निर्गुण विचारधारा के सिद्धान्तो का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और आचार्यों का प्रभाव पड़ता है। सिद्धो तथा हठयोगियों से संत पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित हैं। इन दोनो ने बाह्याडम्बर, जाति-पाँति, तीर्थाटन आदि की निःसारता बताई है और पंडितों को खूब फटकारा है। यही परंपरा संतो ने अपने ढंग पर अपनाई। बहि.साधना के विपरीत अंत.साधना पर जोर तथा 'घट' के भीतर ही परम तत्व के दर्शन करने की बात सन्तो ने नाथो से सीखी। संतों पर इस्लाम का प्रभाव मूर्ति पूजा के खंडन के रूप मे मिलता है। संतो द्वारा सूफियो के 'प्रेम तत्व' के ग्रहण से ही संत मत में रमणीयता आ गई और जनता का ध्यान

उसकी ओर आकर्षित हुआ। शंकराचार्य की अद्वैत भावना का भी संतों पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

वैष्णव धर्म की सदाचार—प्रियता से संत बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने वैष्णव धर्म के अनुकरण पर भक्ति को अन्य साधनों की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ ठहराया। प्रेम-भगति और भाव-भगति का उपदेश तो संतों ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र दिया है। व्यक्तिगत ईश्वर की भावना तथा इष्टदेव के प्रति रति की भावना इन दो वैष्णव भावनाओं का प्रभाव संतों पर दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार निर्गुण विचारधारा अपने पूर्व प्रचलित कई मतमतान्तरों, दर्शनों और धार्मिक परम्पराओं का सार रूप है।

निर्गुण भावना, गुरु-महिमा, मूर्तिपूजा तथा बाह्याडम्बर का खंडन, एकेश्वरवाद का प्रतिपादन, कथनी तथा करनी में एकरूपता, भक्ति और ऐहिक कार्य में एकता, सत्संग की प्रधानता, हठयोग आदि निर्गुण मत की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। ये पहले नामदेव की रचनाओं में प्राप्त होती हैं और बाद में कबीर आदि परवर्ती संतों की रचनाओं में। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नामदेव के पश्चात् हिंदी संत काव्य की जो प्रवृत्तियाँ हैं वे सब नामदेव की हिन्दी रचनाओं में पहले से ही मिलती हैं।

सभी भारतीय दर्शनों ने यही निष्कर्ष दिया है कि ब्रह्म का साक्षात्कार करने का सबसे बड़ा उपाय आत्मा को पहचानना और उसका साक्षात्कार करना है। अत. आत्मा का ज्ञान कराना हर एक दर्शन का लक्ष्य है।

विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धांतों तथा अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का नामदेव पर प्रभाव है। संत नामदेव महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय के प्रभावशाली प्रचारकों में से थे। अत. उनके द्वारा वारकरी संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन स्वाभाविक ही है।

नामदेव जीव को ब्रह्म का अंश मानते है। उनके अनुसार सभी जीवों की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है। वह सब जीवों में समाया हुआ है। मोहिनी माया अज्ञानी जीव को भुला-भुलाकर अपने पाश में जकड़ लेती है। माया से आबद्ध आत्मा ही जीव के नाम से प्रसिद्ध है। हम माया के कारण आत्मा और ब्रह्म की अद्वैतता पहचान नहीं पाते। माया के दो रूप हैं—एक अविद्या माया तथा दूसरी विद्या माया। अविद्या माया के वशीभूत होकर जीव संसार के मोहजाल में फँस जाता है। विद्या माया जीव को संसार के मोहजाल से छुड़ाकर ब्रह्म की भक्ति की ओर ले जाती है।

व्यक्ति अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करे इस विषय में नामदेव ने जो विचार व्यक्त किये है उन्हें एक पारमार्थिक का प्रकट चिंतन समझना समीचीन होगा। भौतिक जीवन का केवल सुखोपभोग का पक्ष ही उसमें व्यक्त नहीं है। संसार की विभीषिका से आतंकित होकर नामदेव ने कहीं भी ऐसा उपदेश नहीं दिया कि इस दुःख

पूर्ण संसार से विमुख होकर संन्यास लिया जाय। उन्होंने ऐहिक तथा पारमार्थिक जीवन में संतुलन बनाये रखने का परामर्श दिया है। विट्ठल के सगुण रूप की भक्ति करते हुए उसके मूल निर्गुण स्वरूप को उनका मन यत्किंचित नहीं भूला। पंढरपुर के पांडुरंग की मूर्ति की यह विशेषता है कि वह परात्पर निर्गुण परब्रह्म की प्रतीक है, किसी एक साम्प्रदायिक देवता की नहीं।

संतों ने काव्य के महत्त्व को वहीं तक स्वीकार किया है जहाँ तक वह ब्रह्म के स्मरण में सहायक हो सके, अन्यथा उसकी कोई उपयोगिता नहीं। उन्होंने आध्यात्मिक जीवन की प्रगति एवं विकास के लिए काव्य के महत्त्व को स्वीकार किया है। प्रतिभा, व्युत्पन्नता तथा परिश्रम की अपेक्षा कविता के लिए महत्त्वपूर्ण प्रेरक भावात्मकता है। नामदेव की कविता में स्थान-स्थान पर विरह वेदना, व्याकुलता, भावुकता तथा भावोत्कटता के दर्शन होते हैं। उन्होंने निर्गुण निराकार के साक्षात्कार के लिए साकार प्रतिमा का ध्यान करते हुए भावोत्कट मनःस्थिति में काव्यरचना की। नामदेव परम भावुक थे। उनके आत्मीयता से ओतप्रोत अभंगों में अनुभूति की घनता पाई जाती है। नामदेव की प्रेमाभक्ति तथा समाज की अभिरुचि में एक प्रकार का भावात्मक संतुलन है। अनुभूति से रँगे हुए नामदेव के अभंग 'पारमार्थिक भावगीत' है।

संतों के लिए काव्य रचना एक साधन था, साध्य नहीं। फिर भी नामदेव के काव्य का कला पक्ष पुष्ट है। उनके काव्य में अनुप्रास का बाहुल्य है। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को बोधगम्य बनाने के लिए दृष्टांतों का प्रचुर उपयोग किया है। उनकी उपमाओं की भाँति उनके दृष्टांत भी जन-जीवन से संग्रहीत है। नामदेव का दूसरा प्रिय अलंकार रूपक है। विभावना के भी सुन्दर तथा प्रभावशाली उदाहरण उनके यहाँ मिलते हैं। नामदेव की कविता में भक्ति तथा शांत रस प्रधान है।

विद्वानों ने व्रजभाषा का निर्माण काल १५ वीं शताब्दी माना है। किन्तु यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नामदेव ने १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही व्रजभाषा में पदों की रचना की है। नामदेव की भाषा में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग बहुत अधिक संख्या में हुआ है। उनकी हिंदी में कुछ प्रयोग ऐसे हैं जो रूप और अर्थ दोनों में विशिष्ट हैं। कुछ विशिष्ट व्याकरणिक रूपों का प्रयोग भी मिलता है। कई मूल हिंदी शब्दों में मराठी का प्रत्यय जोड़ा गया है। नामदेव की भाषा में तत्सम शब्द कम हैं, तद्भव अधिक। उनकी हिंदी में अरबी, फारसी, राजस्थानी और पंजाबी के शब्द पाये जाते हैं जो उनकी घुमक्कड़ी वृत्ति का ही परिणाम है।

संत साहित्य से सम्बन्धित अधिकतर ग्रन्थ कबीर को निर्गुण काव्य का प्रवर्तक मानकर लिखे गये है किन्तु उनके अन्तर्गत निर्गुण साहित्य के विकास का पूरा विवेचन मिलता है। डॉ० श्यामसुंदरदास, आचार्य शुक्ल, डॉ० गोविंद त्रिगुणायत, डॉ० राम-

कुमार वर्मा, डॉ० बडथ्वाल आदि विद्वानो ने कबीर को सत मत का प्रवर्तक मानते हुए भी उसका प्रारम नामदेव से स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल, डॉ० मोहनसिंह, आचार्य विनयमोहन शर्मा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डा० बड़थ्वाल, डॉ० सरनामसिंह आदि विद्वानो की रचनाओ मे इस बात का सकेत मिलता है कि नामदेव कबीर से पहले हो गये थे और उनकी रचना निर्गुण पंथ जैसी है।

सत नामदेव के सत मत के प्रवर्तक न माने जाने के दो कारण हो सकते हैं—(१) नामदेव की रचनाओ का हिंदी में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होना (२) कबीर का प्रखर व्यक्तित्व और उनके विचारो का प्रभाव। पर्याप्त काल तक बहुतो को यह विदित न था कि नामदेव ने हिंदी में भी रचना की है। जिनको उनकी हिंदी रचनाओं का ज्ञान था वे 'गुरु ग्रन्थ साहब' में सग्रहीत ६१ पदों तक ही उनको सीमित समझते थे। परन्तु अब नई खोज से कुल मिलाकर ऐसे २५० पद प्राप्त हो चुके है। हिंदी जगत् में इन पदो का प्रचार पर्याप्त मात्रा में नही था।

कबीर के व्यक्तित्व, उनके धार्मिक आदर्श, समाज के प्रति उनका पक्षपात-रहित दृष्टिकोण तथा उनकी कथन शैली पर नाभादास के प्रसिद्ध छप्पय में सम्यक् प्रकाश डाला गया है। कबीर स्वाधीन-चिंता के पुरुष थे। उन्होंने समय का प्रवाह देखकर धर्म और देश के लिए जो बातें उचित और उपयोगी समझी उनको निर्भीक चित्त से कहा। उनके इन उपदेशो स लोग प्रभावित हुए बिना न रह सके। इन तथ्यों पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि नामदेव को वह प्रधानता क्यों न मिल सकी जो कबीर को मिली। फिर भी नामदेव और कबीर के कालक्रम को कोई इनकार नहीं सकता। नामदेव का जन्मकाल स० १२७० ई० तथा मृत्युकाल स० १३५० ई० है। कबीर का जन्मकाल स० १३६८ ई० तथा उनका मृत्युकाल स० १५१८ ई० है। इस प्रकार नामदेव का जन्म कबीर से १२८ वर्ष पूर्व हुआ था। इतना ही नही नामदेव के मृत्यु काल और कबीर के जन्मकाल में भी ४८ वर्षो का अतर है। अत यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि नामदेव का काल कबीर के काल स एक शताब्दी पूर्व था। परवर्ती सतो ने भी सश्रद्ध नामदेव का स्मरण किया है। उनके कथनो से यह स्पष्ट हो जाता है कि सत मत का बीजारोपण नामदेव के द्वारा हुआ। सत नामदेव की लगाई इस बेली को कबीर ने सीचा, विकसित और पुष्ट किया।

वास्तव में नामदेव ही मध्ययुगीन नवजागरण के प्रणेता हैं। उन्होंने सत ज्ञानेश्वर के साथ उत्तर भारत की यात्रा में मुसलमानों द्वारा महानाश का जो ताण्डव नृत्य देखा उसकी प्रतिक्रिया उनके अभगो में स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित हुई है। अतः नामदेव को इस बात का श्रेय मिलना चाहिए कि उन्होंने हिंदुओं की धार्मिक त्रुटियो को ध्यान में रखते हुए नये युग धर्म के अनुरूप एक अत्यत सहिष्णु, उदार तथा क्रान्तिकारी समा-

धान हिंदुओं के सामने रखा।

नामदेव के समकालीन तथा परवर्ती महाराष्ट्रीय तथा उत्तर भारत के उनके परवर्ती संतो ने बड़ी श्रद्धा के साथ उनका स्मरण किया है। इससे प्रतीत होता है कि एक संत के नाते नामदेव कितने महान् थे। नामदेव का व्यक्तित्व वास्तव में महान् था। उन्होंने उत्तर भारत में युगानुरूप अपने क्रांतिकारी विचारो से जहाँ युगान्तर उपस्थित किया वहीं हिंदी साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली के पद्य को विभिन्न राग-रागिनियो की पदशैली भी प्रदान की। सचमुच नामदेव युग प्रवर्तक थे। भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार को ही अपना जीवित कार्य मानकर नामदेव अपने जीवन के अंत तक पंजाब में रहे और संत ज्ञानेश्वर का लोकोद्धार का कार्य उन्होंने अखण्ड रूप से जारी रखा। अपने विचार उत्तर भारत की जनता को समझाने के लिए उन्होंने हिन्दी को अपनाया।

नामदेव अपने पूर्ववर्ती नाथ सिद्धो की बानियो से प्रभावित है। उन्होंने उसी प्रकार की बातें कही है जिस प्रकार की इन नाथो तथा सिद्धो ने कही है। यह बड़े खेद की बात है कि नामदेव का समकालीन संत साहित्य प्राप्त नहीं होता। जो थोड़ी बहुत फुटकर रचनाएँ प्राप्त होती हैं उनमें निर्गुण विचारधारा के बहुत से तत्त्व उपलब्ध होते हैं। कालान्तर में ये ही प्रवृत्तियाँ निर्गुण विचारधारा के संतों और उनके काव्य का प्रेरणा-स्रोत बनी और उसका अभिन्न अंग बन गईं।

हिंदी निर्गुण काव्य का अध्ययन और मनन करने के पश्चात् नामदेव के संबंध मे प्रमुख रूप से तीन बातें कही जा सकती है। सर्वप्रथम यह कि नामदेव का व्यक्तित्व एक क्रांतिकारी चिंतक का व्यक्तित्व था जिसने समाज को परिस्थितियो के अनुसार अपने को बदल कर समाज को जाग्रत किया। महाराष्ट्र को छोड़कर पंजाब में जाना, हिंदी भाषा में काव्य रचना करना, सगुण की भावना-विह्वल भक्ति को छोडकर निर्गुण भक्ति को अपनाना आदि उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व के लक्षण है। दूसरी बात यह कि अन्य भाषा-भाषी होते हुए भी नामदेव ने जिस हिंदी भाषा मे काव्य रचना की वह तत्कालीन संतो या साहित्यकारो में बहु-प्रचलित नही थी। लेकिन नामदेव में भाषा की शक्ति और उसके विकास के लक्षण को पहचानने की सामर्थ्य थी जिसके कारण उन्होंने ऐसी भाषा अपनायी जिसमें आगे तीन चार सौ वर्षों तक संत काव्य लिखा जाता रहा। तीसरी बात हिंदी निर्गुण काव्य के प्रवर्तन से संबंधित है। इसका उल्लेख किया जा चुका है और इसमे कोई संदेह नहीं कि संत नामदेव ही हिंदी निर्गुण काव्य के प्रवर्तक है। निर्गुण काव्य के संदर्भ में संत नामदेव संबंधी यही मेरे निष्कर्ष है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिन्दी

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉ॰ दीनदयाल गुप्त

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

उत्तरी भारत की संत परम्परा—पं॰ परशुराम चतुर्वेदी

भारती भंडार, लीडर प्रेस, सं॰ २००८।

ऊँच ते ऊँच नामदेव समदर्शी—बाबा बलवंतराय

कबीर ग्रन्थावली—(संपादक डॉ॰ श्यामसुंदरदास)

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। सं॰ २०११।

कबीर वचनावली—संपादक अयोध्यासिंह उपाध्याय

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। सं॰ १९९६

कबीर की विचार-धारा—डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत

साहित्य निकेतन कानपुर। सं॰ २०१४।

कबीर दर्शन—ले॰ डॉ॰ रामजीलाल 'सहायक'

हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं॰ १९६२

कबीर एक विवेचन—डॉ॰ सरनामसिंह

कबीर साहित्य का अध्ययन—पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव

कबीर—डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्रा॰ लि॰ बंबई। सं॰ १९६० ई॰

कबीर और कबीर पंथ—डॉ॰ केदारनाथ द्विवेदी

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

कबीर ग्रन्थावली—डॉ॰ पारसनाथ तिवारी

हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, सं॰ १९६१ ई॰

कबीर साहित्य की परख—पं॰ परशुराम चतुर्वेदी

भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। सं॰ २०२१।

गुरु ग्रन्थ साहब (नागरी लिपि में)—सर्व हिंद सिक्ख मिशन
अमृतसर। स० १९३७ ई०
गोरखनाथ और उनका युग—डॉ० रांगेय राघव
गोरखनबानी संग्रह—डॉ० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल
हिंदी साहित्य सम्मेलन सं० १९९९।
दादू दयाल की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
दरिया सागर—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।
नाथ संप्रदाय—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद। स० १९५० ई०
नाथ सिद्धों की बानियाँ—संपादक : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। स० २०१४।
नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य—डॉ० कोमलसिंह सोलंकी
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा। स० १९६६ ई०
नाथ और संत साहित्य—डॉ० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय
विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी।
निर्गुण साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डॉ० मोतीसिंह
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
परिचयी साहित्य—डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ। स० १९५० ई०
भक्ति का विकास—डॉ० मुंशीराम शर्मा
ग्रंथम, रामबाग, कानपुर।
श्री भक्तमाल—(रूपकला विरचित)
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ। स० १९६२ ई०
भक्त शिरोमणि नामदेव की नई जीवनी, नई पदावली—डॉ० मोहनसिंह
अतरचंद कपूर एण्ड सन्स, देहली स० १९४९ ई०
भागवत संप्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। सं० २०१०।
भारतीय दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय
शारदा मन्दिर वाराणसी, स० १९५७ ई०
मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास—डॉ० रामरतन भटनागर
हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली। स० १९६२ ई०

मराठी का भक्ति साहित्य—डॉ० भी० गो० देशपांडे
चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी।

मध्यकालीन धर्मसाधना—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्य भवन (प्रा०) लि० इलाहाबाद। स० १९५६ ई०

मलूकदास की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
मिश्रबंधु विनोद—भाग १—मिश्रबंधु
गंगा पुस्तक माला, लखनऊ।

योग प्रवाह—डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिंदी साहित्य पर उसका प्रभाव—
डॉ० बदरीनारायण श्रीवास्तव
हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, स० १९५७ ई०

शिवसिंह सरोज—स्व० ठाकुर शिवसिंह सेंगर
तेजकुमार बुक डिपो लखनऊ। स० १९६६ ई०

संत नामदेव की हिंदी पदावली—संपादक : डॉ० भगीरथ मिश्र तथा
डॉ० राजनारायण मौर्य
पूना विश्वविद्यालय, पूना। स० १९६४ ई०

संत काव्य—पं० परशुराम चतुर्वेदी
किताब महल, इलाहाबाद। स० २०१७।

संत कबीर—डॉ० रामकुमार वर्मा
साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद। स० १९६६ ई०।

संत साहित्य—डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
ग्रंथम्, रामबाग, कानपुर

संत नामदेव और हिंदी पद साहित्य—डॉ० रामचंद्र मिश्र
शैलेन्द्र साहित्य सदन, फर्रुखाबाद (उ० प्र०) स० १९६९ ई०

संत दर्शन—डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
संत साहित्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डॉ० सावित्री शुक्ल
संत साहित्य—भुवनेश्वर मिश्र
संक्षिप्त संत सुधा-सार—संपादक : वियोगी हरि
सस्ता साहित्य मण्डल, स० १९५८ ई०

हिंदी और मराठी का निर्गुण संत काव्य—डॉ० प्रभाकर माचवे
चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, स० १९६२ ई०

सिद्ध साहित्य—डॉ॰ धर्मवीर भारती
किताब महल, इलाहाबाद। स॰ १९६८ ई॰
संत बानी संग्रह—भाग २—वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
हिंदी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। स॰ १९५७ ई॰
हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय—डॉ॰ पीताबंरदत्त बड़थ्वाल
अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ। सं॰ २००७
हिंदी संत साहित्य—डॉ॰ त्रिलोकीनारायण दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
हिंदी साहित्य (द्वितीय खण्ड)—संपादक। डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा
भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग। स॰ १९५९ ई॰
हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि—
डॉ॰ गोविंद त्रिगुणायत
साहित्य निकेतन, कानपुर, स॰ १९५१ ई॰
हिंदी साहित्य की भूमिका—डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा॰) लि॰ बंबई—४। स॰ १९५९
हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। सं॰ २०१५।
हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—
डॉ॰ रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, प्रयाग। स॰ १९५८ ई॰
हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (चतुर्थ भाग)—संपादक : परशुराम चतुर्वेदी
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। स॰ २०२५।
हिंदुई साहित्य का इतिहास—गार्सां द तासी
हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास—ग्रियर्सन अनुवादक किशोरीलाल गुप्त
हिंदी साहित्य—डॉ॰ श्यामसुंदरदास
हिंदी काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद।

मराठी

कवि चरित्र—जनार्दन रामचंद्र
गणपत कृष्णाजी याचा छापखाना, मुंबई, सन् १८६०
गाथा पंचक (सकल संत गाथा)—त्र्यंबक हरी आवटे
इंदिरा प्रेस, पुणे, सन् १९२४ ई॰
चिद्विलास आणि भक्ति तत्त्व—डॉ॰ वा॰ ना॰ पंडित
जोशी आणि लोखंडे प्रकाशन, पुणे, सन् १९६६

नामदेव आध्यात्मिक चरित्र व ज्ञानदीप—ग० वि० तुलपुले
गुरुदेव रानडे आश्रम, निंबाल, सन् १९५६
नामयाची अमृतवाणी—ह० श्र० दोणोलीकर व्हीनस प्रकाशन, पुणे सन् १९६६
नामदेव महाराज आणि त्याचे समकालीन संत—
लेखक व प्रकाशक जगन्नाथ रघुनाथ आजगांवकर (१९२७)
नामदेवाची गाथा— संपादक विष्णु नरहरि जोग
चित्रशाला प्रेस, पुणे शके १८४७
नामदेवाची आणि त्याचे कुटुम्बाची व समकालीन साधूचे अभंगाची गाथा—
तुकाराम तात्या घरत
तत्वविवेचक प्रेस, मुंबई, शक १८६४
पंजाबातील नामदेव—शंकर पुरुषोत्तम जोशी
केशव भिकाजी ढवले, मुंबई, सन् १९४०
पाँच संत कवी—डॉ० श० गो० तुलपुले, व्हीनस प्रकाशन, पुणे सन् १९६२
भक्त विजय—महीपति,
निर्णयसागर छापाखाना, मुंबई, सन् १९५०
भक्त लीलामृत—महीपति
गोपाल नारायण आणि कंपनी, मुंबई, सन् १९०४
भक्तीचा मला—डॉ० श० गो० तुलपुले कॉण्टिनेण्टल प्रकाशन, पुणे
भारतीय परंपरा आणि कबीर—सौ० पद्मिनी राजे पटवर्धन
कॉण्टिनेण्टल प्रकाशन, पुणे, सन् १९६६
महाराष्ट्र सारस्वत (पुरवणी सह)—विनायक लक्ष्मण भावे
पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, सन् १९६३
मराठी वाङ्मयाचा इतिहास—(खंड पहला) लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर
'मुमुक्षु' प्रेस, नाशीक, सन् १९३२
महाराष्ट्रीय संत मंडलाचे ऐतिहासिक कार्य—बालकृष्ण रंगराव सुठणकर
लीला चरित—हरि नारायण नेने
सुविचार प्रकाशन मंडल, नागपूर, सन् १९६७
विष्णुदास नाम्याच्या महाभारताचा विवेचनात्मक अभ्यास
(अप्रकाशित प्रबंध)—सरोजिनी शेंडे
मुंबई विद्यापीठ, ग्रंथालय, सन् १९६०
शिखांच्या आदि ग्रंथातील नामदेव—अनंत काकबा प्रियोलकर
मुंबई, सन् १९३८

संत नामदेव—डॉ० हे० वि० इमानदार, केसरी प्रकाशन, पुणे, सन् १९७०
संत वाङ्मयाची सामाजि फलश्रुति—गंगाधर बालकृष्ण सरदार
महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, पुणे, सन् १९६२
संत वचनामृत—डॉ० रा० द० रानडे ह्लीनस प्रकाशन, पुणे, सन् १९६२
संत काव्य समालोचन—डॉ० गं० बा० ग्रामोपाध्ये
संत नामदेव—प्रा० ल० ग० जोग,प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सन् १९७०
श्री नामदेव गाथा—प्रसिद्धी सचालक, महाराष्ट्र शासन सन् १९७०
श्री सत नामदेवांची सार्थ हिन्दी पदें—माधव गोविंद बारटक्के
श्री नामदेव अभंग प्रकाशन समिति, पुणे, सन् १९६८
श्री महासाधु ज्ञानेश्वर महाराज यांचा काल निर्णय व संक्षिप्त चरित्र—
श्री पतिबुवा भिंगारकर
आर्यभूषण छापखाना, पुणे, सन् १९००
श्री गुरु गोरखनाथ—रा० चिं० ढेरे
ज्ञानदेव आणि नामदेव—डॉ० शं० दा० पेंडसे
कॉण्टिनेण्टल प्रकाशन, पुणे, सन् १९६९
ज्ञानदेव व ज्ञानेश्वर—'भारद्वाज', चित्रशाला प्रेस, पुणे, सन् १९३१

अंग्रेजी

An Outline of Religious Literature of India : Farquhar
Constructive Basis for Theology : James Ten Brooke
India's Past : A. A. Macdonal
Kabir and Kabir Panth : Wescot
Kabir and the Bhakti Movement : Dr. Mohansingh
Kabir and His Followers : Dr. F. E. Kee
Mediaeval Mysticism of India : Kshiti Mohan Sen
Mysticism in Maharashtra Vol VII : Dr. R. D. Ranade
Pathway to God in Hindi Literature : Dr. R. D Ranade
Prophets of India : Manmath Nath Gupta
Source Book of Pathway to God in Hindi Literature :
Dr. R. D. Ranade
Siddha Siddhant Paddhati and other Works of Nath Yogis :
Dr Kalyani Malik

The Idea of God — Pringle Pattison
The Nature of the Physical World — Eddington
The Descriptive Analysis of the Hindi Language of Namdev — Dr Raj Narayan Maurya
The Sikh Religion Vol VI (Oxford 1909) — Ma auliffe
Vaishnavism Shaivism and Other Minor Religious Systems — Dr R C Bhandakar
Wilson Philological Lectures — Prof V B Patwardhan

उर्दू

कबीर साहब — मनोहरलाल जुत्शी
कबीर पंथ — शिवव्रतलाल
कबीर और उनकी तालीम — शिवव्रतलाल
कबीर मन्सूर — परमानन्द कृत उर्दू अनुवाद
सम्प्रदाय — प्रोफेसर बी० बी० रॉय

पत्रिकाएँ

हिंदुस्तानी (प्रयाग)
सम्मेलन पत्रिका (प्रयाग)
नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वाराणसी)
कल्याण (गोरखपुर)
माध्यम (इलाहाबाद)
वीणा (इंदौर)
परिषद निबंधावली (प्रयाग)
साहित्य संदेश (आगरा)
राष्ट्रवाणी (पूना)

□□